# बालकृष्ण भट्ट

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 23 जून, 1844 । |
| निधन | : | 20 जुलाई 1914 । |
| निवास-स्थान | : | इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश । |
| माता-पिता | : | पार्वती देवी एवं बेनी प्रसाद भट्ट । पिता एक व्यापारी थे और माता एक सुसंस्कृत महिला जिन्होंने बालकृष्ण भट्ट के मन में अध्ययन की रुचि एवं लालसा जगाई । |
| शिक्षा | : | प्रारंभ में संस्कृत का अध्ययन, 1867 में प्रयाग के मिशन स्कूल से एंट्रेंस की परीक्षा दी । |
| वृत्ति | : | 1869 से 1875 तक प्रयाग के मिशन स्कूल में अध्यापन । 1885 में प्रयाग के सी० ए० वी० स्कूल में संस्कृत का अध्यापन । 1888 में प्रयाग की कायस्थ पाठशाला इंटर कॉलेज में अध्यापक नियुक्त, किंतु उग्र स्वभाव के कारण नौकरी छोड़नी पड़ी और उसके बाद से लेखन कार्य पर ही निर्भर । |
| विशेष परिस्थिति | : | पिता के निधनोपरांत पैतृक व्यापार सँभालने के नाम पर गृहकलह का सामना । पैतृक घर छोड़कर घोर आर्थिक संकट से जूझते हुए हिम्मत से काम लिया और साहित्य के प्रति समर्पित रहे । |
| रचनात्मक सक्रियता | : | भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रेरणा से 'हिंदी वर्द्धिनी सभा' प्रयाग की ओर से 1877 में 'हिंदी प्रदीप' नामक मासिक पत्र निकालना प्रारंभ किया । इसे वे 33 वर्षों तक चलाते रहे । इसमें नियमित रूप से सामाजिक-साहित्यिक-नैतिक-राजनीतिक विषयों पर निबंध लिखते रहे । 1881 में वेदों की युक्तिपूर्ण समीक्षा की । 1886 में लाला श्रीनिवास दास के 'संयोगिता स्वयंवर' की कठोर आलोचना की । जीवन के अंतिम दिनों में 'हिंदी शब्दकोश' के संपादन के लिए श्याम सुंदर दास द्वारा काशी आमंत्रित, किंतु अच्छा व्यवहार न होने पर अलग हो गए । |
| रचनाएँ | : | उपन्यास - रहस्य कथा, नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान, गुप्त वैरी, रसातल यात्रा, उचित दक्षिणा, हमारी घड़ी, सद्भाव का अभाव ।<br>नाटक - पद्मावती, किरातार्जुनीय, वेणी संहार, शिशुपाल वध, नल दमयंती या दमयंती स्वयंवर, शिक्षादान, चंद्रसेन, सीता वनवास, पतित पंचम, मेघनाद वध, कट्टर सूम की एक नकल, बृहन्नला, इंगलैंडेश्वरी और भारत जननी, भारतवर्ष और कलि, दो दूरदेशी, एक रोगी और एक वैद्य, रेल का विकट खेल, बालविवाह आदि ।<br>प्रहसन - जैसा काम वैसा परिणाम, नई रोशनी का विष, आचार विडंबन आदि ।<br>निबंध - 1000 के आस-पास निबंध जिनमें सौ से ऊपर बहुत महत्त्वपूर्ण । 'भट्ट निबंधमाला' नाम से दो खंडों में एक संग्रह प्रकाशित । |

बालकृष्ण भट्ट आधुनिक हिंदी गद्य के आदि निर्माताओं और उन्नायक रचनाकारों में एक हैं । वे भारतेंदु युग के प्रमुख साहित्यकारों में से हैं । वे हिंदी के प्रारंभिक युग के प्रमुख और महान पत्रकार, निबंधकार तथा हिंदी की आधुनिक आलोचना के प्रवर्तकों में अग्रगण्य हैं । उन्होंने आधुनिक हिंदी साहित्य को अपने प्रतिभाशाली जनधर्मी

व्यक्तित्व और लेखन से एक नवीन धरातल, नवीन दिशा और नया रूप-रंग और मानस दिया । निश्चय ही इस महत्तर युगांतरकारी कार्य में वे एकाकी नहीं थे, स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी जैसे अनेक महान साहित्यकार उनके साथ थे । किंतु यह एक सर्वसम्मत स्थापित मान्यता है कि अपने युग के सर्वाधिक सक्रिय, मुखर और प्रदीर्घ समय तक सुदृढ़ निष्ठा के साथ तेजस्वी लेखन द्वारा साहित्य सेवा करते रहने वाले समर्पित साहित्यकार थे बालकृष्ण भट्ट । भारतेंदु युग के दो-तीन प्रमुख साहित्यकारों में एक, जिनके अनवरत लेखन से भारतेंदु युग का रचनात्मक युग-व्यक्तित्व निर्मित हुआ तथा आगे के द्विवेदी युग का मूलाधार निर्मित हो सका । साहित्य केवल कल्पना-विलास और मनोरंजन की वस्तु नहीं है, अपितु वह 'जन समूह के चित्त के विकास का संवाहक' और जन संस्कृति के विकास प्रवाह का मूर्त वाङ्मय उपादान है जो गहन लोक संपृक्ति से उपजता और दिशा पाता है – यह बोधपूर्ण प्रधान मान्यता भारतेंदु युग के साहित्य से बनती है और इसके द्रष्टाओं में बालकृष्ण भट्ट प्रमुख हैं । आधुनिक हिंदी नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में नए सिरे से अपनी भाषा और साहित्य की मौलिक लोकवादी प्रकृति एवं जातीय निष्ठा की पहचान करते हुए तदनुरूप दिशा और प्रवाह देने का कार्य जिन महान लेखकों ने अपनी रचनात्मक गतिविधियों द्वारा संपन्न किया उनमें भट्ट जी विशेष रूप से स्मरणीय हैं ।

बालकृष्ण भट्ट गद्यकार थे । अपनी अभिरुचि, मानस और प्रतिभा से, परिवेश और यथार्थ से संपूर्ण सरोकार रखनेवाले लेखक-पत्रकार । उनके गद्य की भाषा और कला की जड़ें भी परिवेश और यथार्थ में ही थीं । लोक व्यवहार में, बोलचाल-बातचीत और अभिव्यक्ति में मूर्त भाषा और कला ही उनके गद्य का कलेवर बन जाती है । वह नवजागरण और स्वाधीनता संघर्ष का दौर था जिसमें भीतरी और बाहरी, स्वदेशी और विदेशी शक्तियों से टकराव और संघर्ष ही जागरूक गद्य लेखक की नियति थी । यह टकराव और संघर्ष भट्ट जी के लेखन में आंतरिक दृढ़ता, तेज और तेवर बनकर उभरता है । भट्ट जी ने 'हिंदी प्रदीप' में पूरे-अधूरे अनेक उपन्यास लिखे, नाटक और प्रहसन लिखे, किंतु निबंध ही उनकी वह अपनी विधा है जिसमें उनका अभिप्रायपूर्ण सोद्देश्य लेखन पूरी शक्ति-सामर्थ्य और वैभव के साथ प्रकट हुआ है । सामयिक समस्याओं पर उन्होंने जमकर लिखा है । बाल विवाह, स्त्री शिक्षा, महिला स्वातंत्र्य, राजा-प्रजा, कृषकों की दुरवस्था, अंग्रेजी शिक्षा, सुशिक्षितों में परिवर्तन, देश सेवा, अंधविश्वास आदि विषयों पर उन्होंने खूब लिखा । विविध मनोभावों और भाषा-साहित्य के विषयों पर भी खुलकर लिखा । व्यक्तित्व व्यंजक, आत्मपरक, कलात्मक निबंध भी उन्होंने इतने लिखे कि उनकी संख्या सैकड़ों में है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंधकार के रूप में उन्हें अंग्रेजी साहित्य के एडीसन और स्टील की श्रेणी में रखा है ।

यहाँ प्रस्तुत 'बातचीत' शीर्षक निबंध उनके निबंधकार व्यक्तित्व और निबंधकला के साथ-साथ भाषा-शैली का भी प्रतिनिधित्व करता है । प्रस्तुत निबंध भट्ट जी के बारे में ऊपर कही गई बातों को सहज ही पुष्ट और प्रमाणित करता है ।

◆ ◆ ◆

> **"उनकी वास्तविक प्रतिभा एक अध्ययनशील विद्वान और तीक्ष्ण बुद्धि आलोचक की है । उन्हें आधुनिक हिंदी आलोचना का जन्मदाता कहना अनुचित न होगा । धर्म और दर्शन को सामाजिक विकास की कसौटी पर कसकर बालकृष्ण भट्ट ने प्रगतिशील आलोचना की नींव डाली थी ।"**
>
> **–रामविलास शर्मा**

# बातचीत

इसे तो सभी स्वीकार करेंगे कि अनेक प्रकार की शक्तियाँ जो वरदान की भाँति ईश्वर ने मनुष्य को दी हैं, उनमें वाक्शक्ति भी एक है । यदि मनुष्य की और इंद्रियाँ अपनी-अपनी शक्तियों में अविकल रहतीं और वाक्शक्ति मनुष्यों में न होती तो हम नहीं जानते कि इस गूँगी सृष्टि का क्या हाल होता । सब लोग लुंज-पुंज से हो मानो कोने में बैठा दिए गए होते और जो कुछ सुख-दुख का अनुभव हम अपनी दूसरी-दूसरी इंद्रियों के द्वारा करते, उसे अवाक् होने के कारण, आपस में एक-दूसरे से कुछ न कह-सुन सकते । इस वाक्शक्ति के अनेक फायदों में 'स्पीच' वक्तृता और बातचीत दोनों हैं । किंतु स्पीच से बातचीत का ढंग ही निराला है । बातचीत में वक्ता को नाज-नखरा जाहिर करने का मौका नहीं दिया जाता है कि वह बड़े अंदाज से गिन-गिनकर पाँव रखता हुआ पुलपिट पर जा खड़ा हो और पुण्याहवाचन या नांदीपाठ की भाँति घड़ियों तक साहबान मजलिस, चेयरमैन, लेडीज एंड जेंटिलमेन की बहुत सी स्तुति करे-करावे और तब किसी तरह वक्तृता का आरंभ करे । जहाँ कोई मर्म या नोक की चुटीली बात वक्ता महाशय के मुख से निकली कि ताली-ध्वनि से कमरा गूँज उठा । इसलिए वक्ता को खामख्वाह ढूँढ़कर कोई ऐसा मौका अपनी वक्तृता में लाना ही पड़ता है जिसमें करतलध्वनि अवश्य हो ।

वहीं हमारी साधारण बातचीत का कुछ ऐसा घरेलू ढंग है कि उसमें न करतलध्वनि का कोई मौका है, न लोगों के कहकहे उड़ाने की कोई बात ही रहती है । हम दो आदमी प्रेमपूर्वक संलाप कर रहे हैं। कोई चुटीली बात आ गई, हँस पड़े । मुसकराहट से होंठों का केवल फड़क उठना ही इस हँसी की अंतिम सीमा है । स्पीच का उद्देश्य सुननेवालों के मन में जोश और उत्साह पैदा कर देना है । घरेलू बातचीत मन रमाने का ढंग है । उसमें स्पीच की वह संजीदगी बेकदर हो धक्के खाती फिरती है ।

जहाँ आदमी की अपनी जिंदगी मजेदार बनाने के लिए खाने, पीने, चलने, फिरने आदि की जरूरत है, वहाँ बातचीत की भी उसको अत्यंत आवश्यकता है । जो कुछ मवाद या धुआँ जमा रहता है, वह बातचीत के जरिए भाप बनकर बाहर निकल पड़ता है । चित्त हल्का और स्वच्छ हो परम आनंद में मग्न हो जाता है । बातचीत का भी एक खास तरह का मजा होता है । जिनको बातचीत करने की लत पड़ जाती है, वे इसके पीछे खाना-पीना भी छोड़ बैठते हैं । अपना बड़ा हर्ज कर देना उन्हें पसंद आता है, पर वे बातचीत का मजा नहीं खोना चाहते । राबिंसन क्रूसो का किस्सा बहुधा लोगों ने पढ़ा होगा जिसे 16 वर्ष तक मनुष्य-मुख देखने को भी नहीं मिला । कुत्ता, बिल्ली आदि जानवरों के बीच में रह 16 वर्ष के उपरांत उसने फ्राइडे के मुख से एक बात सुनी । यद्यपि उसने अपनी जंगली बोली में कहा था, पर उस समय

रॉबिंसन को ऐसा आनंद हुआ मानो उसने नए सिरे से फिर से आदमी का चोला पाया । इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य की वाक्शक्ति में कहाँ तक लुभा लेने की ताकत है । जिनसे केवल 'पत्र-व्यवहार' है, कभी एक बार भी साक्षात्कार नहीं हुआ, उन्हें अपने प्रेमी से बातें करने की कितनी लालसा रहती है । अपना आभ्यंतरिक भाव दूसरे पर प्रकट करना और उसका आशय आप ग्रहण कर लेना शब्दों के ही द्वारा हो सकता है । सच है, जब तक मनुष्य बोलता नहीं तब तक उसका गुण-दोष प्रकट नहीं होता । बेन जानसन का यह कहना कि बोलने से ही मनुष्य के रूप का साक्षात्कार होता है, बहुत ही उचित जान पड़ता है।

इस बातचीत की सीमा दो से लेकर वहाँ तक रखी जा सकती है, जहाँ तक उनकी जमात मीटिंग या सभा न समझ ली जाए । एडीसन का मत है कि असल बातचीत सिर्फ दो व्यक्तियों में हो सकती है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि जब दो आदमी होते हैं तभी अपना दिल एक दूसरे के सामने खोलते हैं । जब तीन हुए तब वह दो की बात कोसों दूर गई । कहा भी है कि छह कानों में पड़ी बात खुल जाती है । दूसरे यह कि किसी तीसरे आदमी के आ जाते ही या तो वे दोनों अपनी बातचीत से निरस्त हो बैठेंगे या उसे निपट मूर्ख अज्ञानी समझ बनाने लगेंगे ।

जैसे गरम दूध और ठंढे पानी के दो बर्तन पास-पास साट के रखे जाएँ तो एक का असर दूसरे में पहुँच जाता है, अर्थात दूध ठंढा हो जाता है और पानी गरम, वैसे ही दो आदमी पास बैठे हों तो एक का गुप्त असर दूसरे पर पहुँच जाता है, चाहे एक दूसरे को देखें भी नहीं, तब बोलने को कौन कहे, एक के शरीर की विद्युत दूसरे में प्रवेश करने लगती है । जब पास बैठने का इतना असर होता है तब बातचीत में कितना अधिक असर होगा, इसे कौन न स्वीकार करेगा । अस्तु, अब इस बात को तीन आदमियों के साथ देखना चाहिए । मानो एक त्रिकोण सा बन जाता है । तीनों चित्त मानो तीन कोण हैं और तीनों की मनोवृत्ति के प्रसरण की धारा मानो उस त्रिकोण की तीन रेखाएँ हैं । गुप-चुप असर तो उन तीनों में परस्पर होता ही है । जो बातचीत तीन में की गई, वह मानो अँगूठी में नग सी जड़ जाती है । उपरांत जब चार आदमी हुए तब बेतकल्लुफी को बिलकुल स्थान नहीं रहता । खुल के बातें न होंगी । जो कुछ बातचीत की जाएगी वह 'फॉर्मैलिटी' गौरव और संजीदगी के लच्छे में सनी हुई होगी । चार से अधिक की बातचीत तो केवल राम-रमौवल कहलाएगी । उसे हम संलाप नहीं कह सकते । इस बातचीत के अनेक भेद हैं । दो बुड्ढों की बातचीत प्रायः जमाने की शिकायत पर हुआ करती है । वे बाबा आदम के समय की ऐसी दास्तान शुरू करते हैं; जिसमें चार सच तो दस झूठ । एक बार उनकी बातचीत का घोड़ा छूट जाना चाहिए, पहरों बीत जाने पर भी अंत न होगा । प्रायः अंग्रेजी राज्य, परदेश और पुराने समय की रीति-नीति का अनुमोदन और इस समय के सब भाँति लायक नौजवानों की निंदा उनकी बातचीत का मुख्य प्रकरण होगा । पढ़े-लिखे हुए के लिए तो शेक्सपियर, मिल्टन, मिल और स्पेंसर जीभ पर नाचा करेंगे । अपनी लियाकत के नशे में चूर 'हमचुनी दीगरे नेस्त' अक्खड़पन की चर्चा छेड़ेंगे । दो हम सहेलियों की बातचीत का कुछ जायका ही निराला है । रस का समुद्र मानो उमड़ा चला आ रहा है । इसका पूरा स्वाद उन्हीं से पूछना चाहिए जिन्हें ऐसों की रस सनी बात सुनने को कभी भाग्य लड़ा है ।

दो बुढ़ियों की बातचीत का मुख्य प्रकरण, बहू-बेटी वाली हुई तो, अपनी बहुओं या बेटों का गिला शिकवा होगा । या वे बिरादराने का कोई ऐसा रमरसरा छेड़ बैठेंगी कि बात करते-करते अंत में खोढ़े दाँत

निकाल लड़ने लगेंगी । लड़कों की बातचीत, खिलाड़ी हुए तो, अपनी-अपनी तारीफ करने के बाद वे कोई सलाह गाँठेंगे जिससे उनको अपनी शैतानी जाहिर करने का पूरा मौका मिले । स्कूल के लड़कों की बातचीत का उद्देश्य अपने उस्ताद की शिकायत या तारीफ या अपने सहपाठियों में किसी के गुन-औगुन का कथोपकथन होता है । पढ़ने में कोई लड़का तेज हुआ तो कभी अपने सामने दूसरे को कुछ न गिनेगा । सुस्त और बोदा हुआ तो दबी बिल्ली का सा स्कूल भर को अपना गुरु ही मानेगा । इसके अलावा बातचीत की और बहुत सी किस्में हैं । राजकाज की बात, व्यापार संबंधी बातचीत, दो मित्रों में प्रेमालाप इत्यादि । हमारे देश में अशिक्षित लोगों में बतकही होती है । लड़की लड़केवालों की ओर से एक-एक आदमी बिचवई होकर दोनों में विवाह संबंध की कुछ बातचीत करते हैं । उस दिन से बिरादरीवालों को जाहिर कर दिया जाता है कि अमुक की लड़की का अमुक के लड़के के साथ विवाह पक्का हो गया और यह रसम बड़े उत्सव के साथ की जाती है । चंडूखाने की बातचीत भी निराली होती है । निदान, बात करने के अनेक प्रकार और ढंग हैं ।

योरप के लोगों में बात करने का हुनर है । 'आर्ट ऑफ कनवरसेशन' यहाँ तक बढ़ा है कि स्पीच और लेख दोनों इसे नहीं पाते । इसकी पूर्ण शोभा काव्यकला प्रवीण विद्वन्मंडली में है । ऐसे चतुराई के प्रसंग छेड़े जाते हैं कि जिन्हें सुन कान को अत्यंत सुख मिलता है । सुहृद गोष्ठी इसी का नाम है । सुहृद गोष्ठी की बातचीत की यह तारीफ है कि बात करनेवालों की लियाकत अथवा पंडिताई का अभिमान या कपट कहीं एक बात में भी प्रकट न हो, वरन् क्रम में रसाभास पैदा करनेवाले शब्दों को बरकते हुए चतुर सयाने अपनी बातचीत को सरस रखते हैं । वह रस हमारे आधुनिक शुष्क पंडित की बातचीत में, जिसे शास्त्रार्थ कहते हैं, कभी आवेगा ही नहीं । मुर्ग और बटेर की लड़ाइयों की झपटा-झपटी के समान उनकी नीरस काँव-काँव में सरस संलाप की चर्चा ही चलाना व्यर्थ है, वरन् कपट और एक दूसरे को अपने पांडित्य के प्रकाश से बाद में परास्त करने का संघर्ष आदि रसाभास की सामग्री वहाँ बहुतायत के साथ आपको मिलेगी । घंटे भर तक काँव-काँव करते रहेंगे तो कुछ न होगा । बड़ी-बड़ी कंपनी और कारखाने आदि बड़े से बड़े काम इसी तरह पहले दो-चार दिली दोस्तों की बातचीत से शुरू किए गए । उपरांत बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़े कि हजारों मनुष्यों को उनसे जीविका चलने लगी और साल में लाखों की आमदनी होने लगी । पच्चीस वर्ष के ऊपरवालों की बातचीत अवश्य ही कुछ न कुछ सारगर्भित होती होगी, अनुभव और दूरंदेशी से खाली न होगी और पच्चीस से नीचे की बातचीत में यद्यपि अनुभव, दूरदर्शिता और गौरव नहीं पाया जाता, पर इसमें एक प्रकार का ऐसा दिलबहलाव और ताजगी रहती है जिसकी मिठास उससे दस गुनी चढ़ी-बढ़ी है ।

यहाँ तक हमने बाहरी बातचीत का हाल लिखा है जिसमें दूसरे फरीक के होने की बहुत आवश्यकता है, बिना किसी दूसरे मनुष्य के हुए जो किसी तरह संभव नहीं है और जो दो ही तरह पर हो सकता है–या तो कोई हमारे यहाँ कृपा करे या हमीं जाकर दूसरे को कृतार्थ करें। पर यह सब तो दुनियादारी है जिसमें कभी-कभी रसाभास होते देर नहीं लगती । क्योंकि जो महाशय अपने यहाँ पधारें उनकी पूरी दिलजोई न हो सकती तो शिष्टाचार में त्रुटि हुई । अगर हमीं उनके यहाँ गए तो पहले तो बिना बुलाए जाना ही अनादर का मूल है और जाने पर अपने मन माफिक बर्ताव न किया गया तो मानो दूसरे प्रकार का नया घाव हुआ । इसलिए सबसे उत्तम प्रकार बातचीत करने का हम यही समझते हैं कि हम

वह शक्ति अपने में पैदा कर सकें कि अपने आप बात कर लिया करें । हमारी भीतरी मनोवृत्ति प्रतिक्षण नए-नए रंग दिखाया करती है, वह प्रपंचात्मक संसार का एक बड़ा भारी आईना है, जिसमें जैसी चाहो वैसी सूरत देख लेना कुछ दुर्घट बात नहीं है और जो एक ऐसा चमनिस्तान है जिसमें हर किस्म के बेल-बूटे खिले हुए हैं, ऐसे चमनिस्तान की सैर में क्या कम दिलबहलाव है ? मित्रों का प्रेमालाप कभी इसकी सोलहवीं कला तक भी न पहुँच सका । इसी सैर का नाम ध्यान या मनोयोग या चित्त को एकाग्र करना है जिसका साधन एक-दो दिन का काम नहीं । बरसों के अभ्यास के उपरांत यदि हम थोड़ी भी अपनी मनोवृत्ति स्थिर कर अवाक् हो अपने मन के साथ बातचीत कर सकें तो मानो अहोभाग्य ! एक वाक्शक्ति मात्र के दमन से न जाने कितने प्रकार का दमन हो गया । हमारी जिह्वा कतरनी के समान सदा स्वच्छंद चला करती है, उसे यदि हमने काबू में कर लिया तो क्रोधादिक बड़े-बड़े अजेय शत्रुओं को बिना प्रयास जीत अपने वश में कर डाला । इसलिए अवाक् रह अपने बातचीत करने का यह साधन यावत् साधनों का मूल है, शक्ति परम पूज्य मंदिर है, परमार्थ का एकमात्र सोपान है ।

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. अगर हममें वाक्शक्ति न होती, तो क्या होता ?
2. बातचीत के संबंध में बेन जॉनसन और एडीसन के क्या विचार हैं ?
3. 'आर्ट ऑफ कनवरसेशन' क्या है ?
4. मनुष्य की बातचीत का उत्तम तरीका क्या हो सकता है ? इसके द्वारा वह कैसे अपने लिए सर्वथा नवीन संसार की रचना कर सकता है ?
5. व्याख्या करें :

   (क) हमारी भीतरी मनोवृत्ति प्रतिक्षण नए-नए रंग दिखाया करती है, वह प्रपंचात्मक संसार का एक बड़ा भारी आईना है, जिसमें जैसी चाहो वैसी सूरत देख लेना कोई दुर्घट बात नहीं है ।

   (ख) सच है, जब तक मनुष्य बोलता नहीं तब तक उसका गुण-दोष प्रकट नहीं होता ।
6. इस निबंध की क्या विशेषताएँ हैं ?

**पाठ के आस-पास**

1. बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु युग के प्रमुख रचनाकार हैं । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें हिंदी का 'एडीसन' कहा है । भट्ट जी के अन्य निबंधों को उपलब्ध कर उन्हें पढ़ें ।
2. भारतेंदु युग निबंध लेखन की दृष्टि से अत्यंत उर्वर युग था । इस युग के निबंधकारों की एक सूची बनाएँ एवं उनके निबंधों की केंद्रीय वस्तु का विवरण दें ।

3. आप किनसे बातचीत करना सर्वाधिक पसंद करते हैं, उनसे बातचीत का कल्पित रूप अपनी डायरी में नोट करें।
4. निबंध क्या है ? ये कितने प्रकार के होते हैं ? प्रस्तुत निबंध किस कोटि का निबंध है ?
5. किसी निबंध को लिखने में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?
6. आपके सर्वप्रिय निबंधकार कौन हैं, अपने सर्वाधिक प्रिय निबंध को विद्यालय की गोष्ठी में प्रस्तुत करें।

**भाषा की बात**

1. 'राम-रमौवल' का क्या अर्थ है ? इसका वाक्य में प्रयोग करें।
2. नीचे दिए गए वाक्यों से सर्वनाम छाँटें और बताएँ कि वे सर्वनाम के किन भेदों के अंतर्गत हैं –
   (क) कोई चुटीली बात आ गई हँस पड़े।
   (ख) इसे कौन न स्वीकार करेगा।
   (ग) इसकी पूर्ण शोभा काव्यकला प्रवीण विद्वन्मंडली में है।
   (घ) वह प्रपंचात्मक संसार का एक बड़ा भारी आईना है।
   (ङ) हम दो आदमी प्रेमपूर्वक संलाप कर रहे हैं।
3. निम्नलिखित शब्द संज्ञा के किन भेदों के अंतर्गत हैं –
   धुआँ, आदमी, त्रिकोण, कान, शेक्सपियर, देश, मीटिंग, पत्र, संसार, मुर्गा, मंदिर
4. वाक्य-प्रयोग द्वारा लिंग-निर्णय करें –
   शक्ति, उद्देश्य, बात, लत, नग, अनुभव, प्रकाश, रंग, विवाह, दाँत
5. निम्नलिखित वाक्यों से विशेषण चुनें –
   (क) हम दो आदमी प्रेमपूर्वक संलाप कर रहे हैं।
   (ख) इसकी पूर्ण शोभा काव्यकला प्रवीण विद्वन्मंडली में है।
   (ग) सुस्त और बोदा हुआ तो दबी बिल्ली का सा स्कूल भर को अपना गुरु ही मानेगा।

**शब्द निधि :**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| वक्तृता | : | बोलने की कला, भाषण देने की कला | हमचुनी दीगरे नेस्त | : | हम ही सब कुछ हैं दूसरा कुछ भी नहीं, एकोहं द्वितीयो नास्ति |
| पुलपिट | : | पायदान | बिचवई | : | मध्यस्थता |
| पुण्याहवाचन | : | धार्मिक कर्मकांड में मांगलिक श्लोक पढ़ना | चंडूखाने | : | अफीम खानेवाले लोगों की मंडली के लिए सुरक्षित स्थान |
| नांदीपाठ | : | नाटक के प्रारंभ में मंगल पाठ | दिलजोई | : | मनबहलाव |
| खामख्वाह | : | बेमतलब, बर्बस | सारगर्भित | : | जिसमें कुछ सार या तत्त्व हो |
| संलाप | : | हार्दिक बातचीत | प्रपंचात्मक | : | उलझा हुआ, पहेलीनुमा |
| संजीदगी | : | गंभीरता | दुर्घट | : | ऐसा कुछ जिसके घटित होने की आशा न हो |
| बेकदर | : | सम्मानहीन | | | |
| आभ्यंतरिक | : | हार्दिक, आंतरिक | चमनिस्तान | : | हरे-भरे बागों का इलाका |
| निरस्त | : | बंद कर देना, स्थगित कर देना | कतरनी | : | कैंची |
| फॉर्मेलिटी | : | औपचारिकता | सोपान | : | सीढ़ी |
| लियाकत | : | योग्यता | बरकते हुए | : | बरतते हुए |

# चंद्रधर शर्मा गुलेरी

जन्म : 7 जुलाई, 1883 ।
निधन : 12 सितंबर, 1922 ।
जन्म-स्थान : जयपुर, राजस्थान ।
मूल निवास : 'गुलेर' नामक ग्राम, जिला - कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश ।
पिता : पं० शिवराम ।
शिक्षा : बचपन में संस्कृत की शिक्षा, 1899 में इलाहाबाद तथा कोलकाता विश्वविद्यालयों से क्रमशः एंट्रेंस तथा मैट्रिक, 1901 में कोलकाता विश्वविद्यालय से इंटरमीडिएट, 1903 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० ।
वृत्ति : 1904 में जयपुर दरबार की ओर से खेतड़ी के नाबालिग राजा जयसिंह के अभिभावक बनकर मेयो कॉलेज, अजमेर में आ गए । जयपुर भवन छात्रावास के अधीक्षक । 1916 में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष । अंतिम दिनों में मदन मोहन मालवीय के निमंत्रण पर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में प्राच्य विभाग के कार्यवाहक प्राचार्य तथा मनींद्र चंद्र नंदी पीठ के प्रोफेसर ।
संपादन : समालोचक, काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका ।
रचनाएँ : कहानियाँ : सुखमय जीवन (1911), बुद्धू का काँटा (1911) और उसने कहा था (1915) । प्राच्यविद्या, इतिहास, पुरातत्त्व, भाषा विज्ञान और समसामयिक विषयों पर निबंध लेखन । कछुआ धरम, मारेसि मोहिं कुठाँव, पुरानी हिंदी, भारतवर्ष, डिंगल, संस्कृत की टिपरारी, देवानां प्रिय आदि प्रमुख निबंध । इनके अतिरिक्त अनुवादों की बाढ़, खोज की खाज, क्रियाहीन हिंदी, वैदिक भाषा में प्राकृतपन आदि टिप्पणियाँ भी प्रकाशित । अंग्रेजी में 'ए पोयम बाय भास, ए कमेंटरी ऑन वात्स्यायंस कामसूत्र, दि लिटरेरी क्रिटिसिज्म आदि निबंध । देशप्रेम को लेकर कुछ कविताएँ भी लिखीं ।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी बीसवीं शती के प्रथम चरण में हिंदी गद्य साहित्य के एक प्रमुख लेखक थे । वे अपने समय में हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं के प्रकांड विद्वान थे । प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में भी उनकी गहरी गति थी । पुरातत्त्व, इतिहास, भाषाशास्त्र आदि विषयों का उनका ज्ञान अपने समय में अद्यतन और तलस्पर्शी माना जाता था । साहित्य के अतिरिक्त अपनी अभिरुचि के अन्य विषयों पर उन्होंने हिंदी में निबंध, लेख, टिप्पणियाँ बराबर लिखीं । वे द्विवेदी युग के एक प्रमुख निबंधकार और बहुमान्य विद्वान थे । गूढ़ और विदग्ध हास-परिहास तथा व्यंग्य से परिपूर्ण अपनी कलात्मक भाषा-शैली को देखते हुए वे अपने समय से बहुत आगे दिखाई पड़ते हैं । वस्तुतः वे अपने युग के अत्यंत प्रतिभाशाली और समर्थ लेखक थे ।

गुलेरी जी ने कुल तीन ही कहानियाँ लिखीं और उन्हीं के बल पर कहानीकार के रूप में हिंदी में अमर हो गए । उनकी कहानियाँ विषयवस्तु, भाषा-शैली और शिल्प के कारण अपने समय से बहुत आगे की रचनाएँ प्रतीत होती

है और हिंदी कहानी के विकास में इनका प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ा है। संस्कृत का इतना बड़ा पंडित और शास्त्र निष्णात, गंभीर प्रकृति का विद्वान ऐसी सर्जनात्मक भाषा-शैली में, कल्पना और यथार्थ के ऐसे संतुलित संधान के साथ, आधुनिक कथ्यों वाली ये कहानियाँ लिख सका; यह सचमुच चमत्कृत कर देने वाली, आश्चर्य से भर देने वाली रचनात्मक घटना है। ये कहानियाँ अपनी भाषा-शैली और शिल्प को लेकर आज भी उतनी ही तरोताजा और रचनात्मक कौतुक-सरीखी प्रतीत होती हैं। कौतुक का अभिप्राय कतई यह नहीं कि इनकी विषयवस्तु या कथ्य कम महत्त्वपूर्ण अथवा अगंभीर हैं। सचाई इसके विपरीत है। इनकी विषयवस्तु और कथ्य अधिक गंभीर, महत्त्वपूर्ण तथा समय से आगे के हैं।

यहाँ प्रस्तुत कहानी 'उसने कहा था' उनकी अमर रचना है। यह हिंदी कहानी के विकास में 'मील का पत्थर' मानी जाती है। यह एक कालजयी रचना है। प्रसिद्ध फिल्मकार विमल राय ने इस कहानी पर फिल्म भी बनाई थी और इसके अनेक नाट्य रूपांतर हो चुके हैं। शुद्ध प्रेम की आध्यात्मिक अनुभूति और उसकी स्वाभाविक उत्सर्गमय अभिव्यक्ति इस कहानी का कथ्य है। कहानी अमृतसर के भीड़ भरे बाजार में शुरू होती है जहाँ बारह वर्ष का लड़का (लहना सिंह) आठ वर्ष की एक लड़की को ताँगे के नीचे आने से बचाता है। लड़का लड़की को यह पूछते हुए छेड़ता है : "तेरी कुड़माई (मँगनी) हो गई ?" लड़की 'धत्' कहकर भाग जाती है। एक दिन वह 'धत्' कहकर भागने की बजाय कहती है "हाँ, कल हो गई। देखते नहीं, यह रेशम के फूलों वाला सालू ?" लहना सिंह हतप्रभ रह जाता है। इसके बाद लहना सिंह से भेंट प्रथम विश्वयुद्ध के मोर्चे पर होती है। वह याद करता है कि छुट्टी के बाद घर से लाम पर जाते समय वह सूबेदार हजारा सिंह के घर गया था। वहाँ सूबेदारनी ने उसे एकांत में बुलाकर कहा था कि मेरे पति और बेटे (बोधा) का ख्याल रखना। यह सूबेदारनी बचपन में अमृतसर में मिली वही लड़की थी। लहना सिंह सूबेदारनी के प्यार की उस किरण को दुनिया से बचाकर अपने हृदय में सँजोए रहा और युद्ध में अपने प्राणों की बलि देकर भी हजारा सिंह और बोधा की रक्षा की। कहानी की घटनाओं में स्वाभाविक नाटकीयता है जो मन पर अपने उत्कर्ष की ओर संचरण करती हुई गतिशीलता के कारण जबर्दस्त असर डालती है। इस तरह प्रभावान्विति जो कहानी का प्राण मानी जाती है, उसका अद्भुत रचाव है। वातावरण की सृष्टि करने में लेखक को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई। आरंभ से ही एक कुतूहल पाठक को अपने प्रभाव में बाँध लेता है और कहानी को उत्कर्ष बिंदु पर पहुँचाकर ही विराम लेता है। किंतु तब कहानी का प्रभाव मन में गूँजता रह जाता है।

◆ ◆ ◆

> "उसने कहा था में पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुटित है। घटना इसकी ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसमें भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है- केवल झाँक रहा है। निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में कहीं प्रेमी की निर्लज्जता, प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विवृति नहीं है। सुरुचि के सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।"
>
> \- रामचंद्र शुक्ल

# उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें । जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट संबंध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चींथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले तंग चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसाजी' 'हटो भाईजी' 'ठहरना भाई' 'आने दो लालाजी' 'हटो बाछा' करते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जंगल में राह खेते हैं । क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े । यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं; चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है । यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं - 'हट जा, जीणे जोगिए; हट जा, करमा वालिए ; हट जा, पुत्ताँ प्यारिए; बच जा, लंबी वालिए ।' समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लंबी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ? –बच जा ।

ऐसे बंबूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले । उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं । वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ । दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था ।

"तेरे घर कहाँ है ?"

"मगरे में – और तेरे ।"

"माँझे में ; यहाँ कहाँ रहती है ?"

"अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं ।"

"मैं भी मामा के यहाँ हूँ, उनका घर गुरुबाजार में है ।"

इतने में दूकानदार निबटा और इनका सौदे देने लगा । सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले । कुछ

दूर जाकर लड़के ने मुसकुराकर पूछा –

"तेरी कुड़माई हो गई ?" इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया ।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ, अकस्मात् दोनों मिल जाते । महीना भर यही हाल रहा । दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई ?" और उत्तर में वही 'धत्' मिला । एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तब लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली – "हाँ हो गई ।"

"कब ?"

"कल – देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू !" लड़की भाग गई । लड़के ने घर की राह ली । रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ीवाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते को पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया । सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाई । तब कहीं घर पहुँचा ।

**( 2 )**

"राम राम, यह भी कोई लड़ाई है ! दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं । लुधियाने से दस गुना जाड़ा, और मेंह और बरफ ऊपर से । पिंडलियों तक कीच में धँसे हुए हैं । गनीम कहीं दिखता ही नहीं–घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है ! इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े । नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं । जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है । न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं ।"

"लहनासिंह, और तीन दिन हैं । चार तो खंदक में बिता ही दिए । परसों 'रिलीफ' आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी । अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे । उसी फिरंगी मेम के बाग में–मखमल की सी हरी घास है । फल और दूध की वर्षा कर देती है । लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती । कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो ।"

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी । बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही । मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो । पाजी कहीं के, कलों के घोड़े संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं । यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं । उस दिन धावा किया था–चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था ! पीछे जनरल ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो–"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते ! क्यों ?" सूबेदार हजारासिंह ने मुसकुराकर कहा, "लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते । बड़े अफसर दूर की सोचते हैं । तीन सौ मील का सामना है । एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा ?"

"सूबेदारजी, सच है," लहनासिंह बोला, "पर करें क्या ? हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है । सूर्य

निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के-से सोते झड़ रहे हैं । एक धावा हो जाए तो गरमी आ जाए ।''

''उदमी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल । वजीरा, तुम चार जन बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको । महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दे ।'' यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे ।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था । बाल्टी में गँदला पानी लेकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला–''मैं पाधा बन गया हूँ । करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण !'' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए ।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर उसके हाथ में देकर कहा–''अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो । ऐसा खाद-पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा ।''

''हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है । मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा ।''

''लाड़ीहोराँ को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलानेवाली फिरंगी मेम -''

''चुप कर । यहाँ वालों को शरम नहीं ।''

''देस-देस की चाल है । आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नहीं पीते । वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं ।''

''अच्छा अब बोधासिंह कैसा है ?''

''अच्छा है ।''

''जैसे मैं जानता ही न होऊँ । रात भर तुम अपने दोनों कंबल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो ! उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो । अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो और आप कीचड़ में पड़े रहते हो । कहीं तुम न माँदे पड़ जाना । जाड़ा क्या है, मौत है और 'निमोनिया' से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते ।''

''मेरा डर मत करो । मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा । भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी ।''

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा–''क्या मरने-मरने की लगाई है ! मरे जर्मनी और तुरक ! हाँ भाइयो, कुछ गाओ । हाँ कैसे -

''दिल्ली शहर ते पिशौर नूँ जाँदिए,
कर लेणा लौंगाँ दा व्यौपार मंडिए;
कर लेणा नाड़ेदा सौदा अड़िए–
(ओय) लाणा चटाका कदुए नूँ ।

कद्दू बण्याए मजेदार गोरिए,

हुण लागा चटाका कदुए नूँ ।।''

('ऐ दिल्ली शहर से पेशावर को जाने वाली ! मंडी में लौंगों का व्यापार कर लेना । अरी ! नाड़े [illegible] भी कर लेना । ओय अब हमें कद्दू चखना है । ऐ गोरे वर्णवाली ! कद्दू अत्यंत स्वादिष्ट पका है ! अब हमें कद्दू चखना है ।)

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चे का गीत गाएँगे, पर सारी खंदक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों ।

(3)

दो पहर रात गई है । अँधेरा है । सन्नाटा हुआ है । बोधासिंह खाली बिस्किटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कंबल बिछाकर लहनासिंह के दो कंबल और एक बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है । लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है । एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर । बोधासिंह कराहा ।

''क्यों बोधा भाई, क्या है ?''

''पानी पिला दो ।''

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा–''कहो, कैसे हो ?'' पानी पीकर बोधा बोला–''कँपनी छूट रही है । रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं । दाँत बज रहे हैं ।''

''अच्छा, मेरी जरसी पहन लो ।''

''और तुम ?''

''मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है । पसीना आ रहा है ।''

''ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए–''

''हाँ, याद आई । मेरे पास दूसरी गरम जरसी है । आज सबेरे ही आई है । विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं । गुरु उनका भला करें ।'' यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा ।

''सच कहते हो ?''

''और नहीं झूठ ?'' यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट जीन का कुरता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ । मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी ।

आधा घंटा बीता । इतने में खाई के मुँह से आवाज आई –''सूबेदार हजारासिंह !''

''कौन लपटन साहब ? हुकुम हुजूर,'' कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ ।

''देखो, इसी दम धावा करना होगा । मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है ।

उसमें पचास से जियादह जर्मन नहीं हैं । इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है । तीन-चार घुमाव हैं । जहाँ मोड़ है वहाँ पंद्रह जवान खड़े कर आया हूँ । तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो । खंदक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो । हम यहाँ रहेगा ।''

'' जो हुक्म ।''

चुपचाप सब तैयार हो गए । बोधा भी कंबल उतारकर चलने लगा । तब लहनासिंह ने उसे रोका । लहनासिंह आगे हुआ, तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया । लहनासिंह समझकर चुप हो गया । पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई । कोई रहना न चाहता था । समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया । लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे । दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा--

''लो तुम भी पियो ।''

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया । मुँह का भाव छिपाकर बोला--''लाओ, साहब ।'' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा । बाल देखे । तब उसका माथा ठनका । लपटन साहब के पट्टियोंवाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों के-से कटे हुए बाल कहाँ से आ गए ?

शायद साहब शराब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटाने का मौका मिल गया है ! लहनासिंह ने जाँचना चाहा । लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रैजिमेंट में थे ।

'क्यों साहब, हमलोग हिंदुस्तान कब जाएँगे ?''

''लड़ाई खत्म होने पर । क्यों, क्या यह देश पसंद नहीं ?''

''नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम-आप जगाधरी जिले में शिकार करने गए थे ।...हाँ, हाँ--वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था । ...बेशक, पाजी कहीं का । ...सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी । और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली । ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है । क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मैस में लगाएँगे ।

''हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया ।''

''ऐसे बड़े-बड़े सींग ! दो-दो फुट के तो होंगे !''

''हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे । तुमने सिगरेट नहीं पिया ?''

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ ।' -- कहकर लहनासिंह खंदक में घुसा । अब उसे संदेह नहीं रहा था और उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए ।

अँधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया ।

''कौन ? वजीरासिंह ?''

''हाँ, क्यों लहना ? क्या कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगने दी होती ?''

(4)

''होश में आओ । कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है ।''

''क्या ?''

लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं । उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है । सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा । मैंने देखा और बातें की हैं । सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू । और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ।''

''तो अब ?''

''अब मारे गए । धोखा है । सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा । उधर उन पर खुले में धावा होगा । उठो, एक काम करो । पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ । अभी बहुत दूर न गए होंगे । सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आएँ ! खंदक की बात झूठ है । चले जाओ, खंदक के पीछे से निकल जाओ । पत्ता तक न खड़के । देर मत करो ।''

''हुकुम तो यह है कि यहीं–''

''ऐसी-तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम–जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है । मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ ।''

''पर यहाँ तो तुम आठ ही हो !''

''आठ नहीं, दस लाख । एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है ! चले जाओ ।''

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया । उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले । तीनों को जगह-जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बाँध दिया । तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी जिसे सिगड़ी के पास रखा । बाहर की तरफ कर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने...

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बंदूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा । धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी । लहनासिंह ने एक कुंदा साहब की गर्दन पर मारा और साहब आँख ! मीन गौट्ट (ओ ! माइ गॉड) कहते हुए चित हो गए । लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया । जेबों की तलाशी ली । तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया ।

साहब की मूर्च्छा हटी । लहनासिंह हँसकर बोला –''क्यों लपटन साहब ! मिजाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं । यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं । यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं । यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं । पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आए ? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे ।''

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी । साहब ने मानो जाड़े से बचाने के लिए दोनों हाथ जेबों में डाले ।

लहनासिंह कहता गया –''चालाक तो बड़े हो, पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है । उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए । तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था । औरतों को बच्चे होने की ताबीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था । चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था जर्मनीवाले बड़े पंडित हैं । वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं । गौ को नहीं मारते । हिंदुस्तान में आ जाएँगे तो गौ-हत्या बंद कर देंगे । मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपए निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है । डाक बाबू पोल्हूराम भी डर गया था । मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूँड़ दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था जो मेरे गाँव में अब्र पैर रखा तो–''

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी । इधर लहना की हैनरी-मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल क्रिया कर दी । धड़ाका सुनकर सब दौड़ आए ।

बोधा चिल्लाया–''क्या है ?''

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि ''एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया'' और औरों से सब हाल कह दिया । सब बंदूकें लेकर तैयार हो गए । लहना ने साफा फाड़कर घाव की दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधी । घाव मांस में ही था । पट्टियों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया ।

उतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े । सिखों की बंदूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका । दूसरे को रोका । पर यहाँ थे आठ (लहना सिंह तक-तककर मार रहा था–वह खड़ा था, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर । अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे । थोड़े से मिनटों में वे...

अचानक आवाज आई–'वाह गुरुजी की फतह ! वाह गुरुजी का खालसा !' और धड़ाधड़ बंदूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे । ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए । पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे । और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे । पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया ।

एक किलकारी और–''अकाल सिक्खाँ दी फौज आई । वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा !! सत् सिरी अकाल पुरुष !!!'' और लड़ाई खतम हो गई । तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे या कराह रहे थे । सिखों में पंद्रह के प्राण गए । सूबेदार के दाहिने कंधे में से गोली आर-पार निकल गई । लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी । उसने घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबंद की तरह लपेट लिया । किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव–भारी घाव लगा है ।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था । ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है । और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में

'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती । वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्राँस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था । सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर, उसकी तुरंत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते ।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी । उन्होंने पीछे से टेलीफोन कर दिया था । वहाँ से झटपट दो डॉक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घंटे के अंदर आ पहुँचीं । फील्ड अस्पताल नजदीक था । सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जाएँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रखी गईं । सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही । पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जाएगा । बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था । वह गाड़ी में लिटाया गया । लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे । यह देख लहना ने कहा-"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी की सौगंध जो इस गाड़ी में न चले जाओ ।"

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना । और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी । मेरा हाल बुरा नहीं है । देखते नहीं मैं खड़ा हूँ ? वजीरासिंह मेरे पास है ही ।"

"अच्छा पर..."

"बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला । आप भी चढ़ जाओ । सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना । और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया ।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं । सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा-"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं । लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे । अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना । उसने क्या कहा था ?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ । मैंने जो कहा है वह लिख देना और कह भी देना ।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया । "वजीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबंद खोल दे । तर हो रहा है ।

## ( 5 )

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है । जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं । सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुंध बिलकुल उन पर से हट जाती है !

लहनासिंह बारह वर्ष का है । अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है । दहीवाले के यहाँ सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है । जब वह पूछता है तेरी कुड़माई हो गई ? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है । एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा-"हाँ, कल हो गई, देखते नहीं, यह रेशम के फूलोंवाला सालू ?" सुनते ही लहनासिंह को दुख हुआ । क्रोध हुआ । क्यों हुआ ?

"वजीरासिंह, पानी पिला दे ।"

पच्चीस वर्ष बीत गए । अब लहनासिंह नं० 77 राइफल्स में जमादार हो गया है । उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा । न मालूम वह कभी मिली थी या नहीं । सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमें की पैरवी करने वह अपने घर गया । वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है । फौरन चले आओ । साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं, लौटते समय हमारे घर होते जाना । साथ चलेंगे । सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था । लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा ।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया । बोला–"लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है । बुलाती है । जा मिल आ ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा । सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से ? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं । दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा । असीस सुनी । लहनासिंह चुप ।

"मुझे पहचाना ?"

"नहीं"

"तेरी कुड़माई हो गई ? 'धत्'–कंल हो गई–देखते नहीं रेशमी बूटोंवाला सालू–अमृतसर में–"

भावों की टकराहट से मूर्च्छा खुली । करवट बदली । पसली का घाव बह निकला ।

"वजीरा पानी पिला !"–उसने कहा था ।

स्वप्न चल रहा है । सूबेदारनी कह रही है–"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया । एक काम कहती हूँ । मेरे तो भाग फूट गए । सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है । पर सरकार ने हम तीमियों की घघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है । फौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ । उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया ।" सूबेदारनी रोने लगी–"अब दोनों जाते हैं । मेरे भाग ! तुम्हें याद है एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था । तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे । आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना । यह मेरी भिक्षा है । तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ ।"

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई । लहना भी आँसू पोछता हुआ बाहर आया ।

"वजीरासिंह पानी पिला !" – उसने कहा था ।

X X X

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वजीरासिंह बैठा है । जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला–

"कौन कीरत सिंह ?"

वजीरा ने कुछ समझकर कहा–"हाँ ।"

"भईया, मुझे और ऊँचा कर ले । अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले ।"

वजीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है । पानी पिला दे । बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा । चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना । जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है । जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने मैंने इसे लगाया था ।"

वजीरासिंह के आँसू टप्टप् टपक रहे थे ।

X X X

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा–

फ्राँस और बेल्जियम–68वीं सूची–मैदान में घावों से मरा–नं॰ 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह ।

❑❑❑

# अभ्यास

### पाठ के साथ

1. 'उसने कहा था' कहानी कितने भागों में बँटी हुई है ? कहानी के कितने भागों में युद्ध का वर्णन है ?
2. कहानी के पात्रों की एक सूची तैयार करें ।
3. लहनासिंह का परिचय अपने शब्दों में दें ।
4. पाठ से लहना और सूबेदारनी के संवादों को एकत्र करें ।
5. "कल, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू ।" यह सुनते ही लहना की क्या प्रतिक्रिया हुई ?
6. "जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते", वजीरासिंह के इस कथन का क्या आशय है ?
7. 'कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो ।' वजीरा के इस कथन में किसकी ओर संकेत है ?
8. लहना के गाँव में आया तुर्की मौलवी क्या कहता था ?
9. 'लहना सिंह का दायित्व बोध और उसकी बुद्धि दोनों ही स्पृहणीय हैं ।' इस कथन की पुष्टि करें ।
10. प्रसंग एवं अभिप्राय बताएँ –

    'मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है । जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं । सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं; समय की धुंध बिलकुल उनपर से हट जाती है ।'
11. मर्म स्पष्ट करें –

(क) 'अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा । चाचा भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना । जितना बड़ा भतीजा है उतना ही यह आम है । जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था ।'

(ख) 'और अब घर जाओ तो कह देना कि मुझे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया ।'

12. कहानी का शीर्षक 'उसने कहा था' क्या सबसे सटीक शीर्षक है ? अगर हाँ तो क्यों, या आप इसके लिए कोई दूसरा शीर्षक सुझाना चाहेंगे, अपना पक्ष रखें ।
13. 'उसने कहा था' कहानी का केंद्रीय भाव क्या है ? वर्णन करें ।

**पाठ के आस-पास**

1. 'उसने कहा था' कहानी आचार्य महावीर प्र० द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका में जून 1915 में प्रकाशित हुई थी । गुलेरी जी की इस कहानी की पृष्ठभूमि प्रथम विश्वयुद्ध (1914-1918) की है । इस युद्ध में एक ओर जर्मनी, ऑस्ट्रिया, हंगरी, बुल्गारिया और तुर्की थे । दूसरी ओर ब्रिटेन, फ्राँस, रूस, जापान और इटली । प्रत्यक्षतः, भारत इस युद्ध में कहीं नहीं था, फिर भी भारतीय सिपाही इस युद्ध में लड़े और अपनी जान दी । इस दृष्टि से विचार करते हुए भारतीय सिपाहियों की जीवन-स्थितियों का मूल्यांकन आप किस तरह करेंगे ।
2. गुलेरी जी की दूसरी कहानियों जैसे 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' को भी उपलब्ध कर पढ़ें ।
3. गुलेरी जी हिंदी के आरंभिक कहानीकारों में हैं । उनके समकालीन हिंदी के आरंभिक कथाकारों की सूची बनाएँ और उनकी प्रमुख कहानियों के नाम भी लिखें ।
4. इस कहानी में 'फ्लैश बैक' पद्धति का प्रयोग हुआ है, आप कुछ ऐसी फिल्मों के नाम बताइए जिसमें इस तकनीक का प्रयोग हुआ हो ।
5. इस कहानी का नाट्य रूपांतरण अपने विद्यालय में प्रस्तुत करें ।

**भाषा की बात**

1. निम्नलिखित शब्दों से विशेषण बनाएँ और उनका वाक्य में प्रयोग करें –
   जल, धर्म, नमक, विलायत, फौज, किताब
2. दिए गए शब्दों के समानार्थी शब्द लिखें –
   मुर्दा, लहू, घाव, झूठ, चकमा, चिट्ठी, घर, राजा, रचना
3. रचना के आधार पर इन वाक्यों की प्रकृति बताएँ –
   (क) राम राम, यह भी कोई लड़ाई है ।
   (ख) परसों 'रिलीफ' आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी ।
   (ग) कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो ।
   (घ) इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया ।
   (ङ) हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है ।
   (च) मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा ।
4. उत्पत्ति की दृष्टि से इन शब्दों की प्रकृति बताएँ –
   आवाज, कयामत, आँसू, दही, बिजली, क्षयी, बेईमान, सोते, बावलियों, खाद, सिगड़ी, बादल ।

**शब्द निधि :**

| | | |
|---|---|---|
| लड्ढीवाले | : | गाड़ीवाले |
| कुड़माई | : | सगाई |
| सालू | : | दुपट्टा |
| छाबड़ीवाले | : | खोमचेवाले |

| | | |
|---|---|---|
| गनीम | : | दुश्मन |
| गैबी | : | आसमानी, दैवी |
| जलजला | : | भूकंप |
| उदमी | : | उद्यमी . |
| विदूषक | : | जोकर |
| पाधा | : | पुरोहित |
| लाड़ी होराँ | : | स्त्री के लिए आदरसूचक शब्द |
| माँदे | : | ठंढे |
| मुरब्बे | : | नहरों के पास की जमीन |
| खानसामा | : | रसोइया |
| सौहरा | : | एक प्रकार की गाली |
| खोते | : | गधा |
| क्षयी | : | क्षीण होता |
| दंतवीणोपदेशाचार्य | : | दाँतों से वीणा बजाने का उपदेश देने वाली |
| तीमियों | : | स्त्रियों |
| ओबरी | : | घर के अंदर की कोठरी |
| पट्ट | : | जाँघ |
| हाड़ | : | आषाढ़ |
| सिगड़ी | : | अँगीठी, बोरसी |

# जयप्रकाश नारायण

जन्म : 11 अक्टूबर 1902 ।

निधन : 8 अक्टूबर 1979 ।

जन्म-स्थान : सिताब दियारा गाँव (उत्तर प्रदेश के बलिया और बिहार के सारण जिले में फैला)

पुकार का नाम : बचपन में बाउल । बड़े होने पर जेपी नाम से प्रसिद्ध, अपनी जनपक्षधरता के लिए 'लोकनायक' के रूप में प्रसिद्ध ।

माता-पिता : फूलरानी एवं हरसूदयाल ।

पत्नी : प्रभावती देवी (प्रसिद्ध गाँधीवादी ब्रजकिशोर प्रसाद की पुत्री) ।

शिक्षा : आरंभिक शिक्षा घर पर ही, फिर पटना कॉलेजिएट, पटना में दाखिल हुए, यहीं 'बिहार में हिंदी की वर्तमान स्थिति' विषय पर लेख के लिए सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त किया । इसके बाद पटना कॉलेज, पटना में प्रवेश । असहयोग आंदोलन के दौरान शिक्षा अधूरी छोड़ी । 1922 में शिक्षा प्राप्ति के लिए अमेरिका गए । वहाँ कैलिफोर्निया, बर्कले, विस्कंसिन-मैडिसन आदि कई विश्वविद्यालयों में अध्ययन । मार्क्सवाद और समाजवाद की शिक्षा यहीं ग्रहण की । माँ की अस्वस्थता के कारण पीएच० डी० न कर सके और देश लौट आए ।

राजनीतिक जीवन : 1929 में काँग्रेस में शामिल, 1932 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान जेल गए । जेल से बाहर निकलकर काँग्रेस के अंदर ही 'काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी' के गठन में अहम भूमिका निभाई । 1939, 1943 में भी जेल गए, 1942 के आंदोलन से विशेष प्रसिद्धि मिली । आजादी के बाद 1952 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के गठन में योगदान । धीरे-धीरे सक्रिय राजनीति से स्वयं को अलग कर लिया । 1954 में विनोबा भावे के सर्वोदय आंदोलन से जुड़े । 1974 में छात्र आंदोलन का नेतृत्व किया और आपातकाल के दौरान जेल गए । इनके मार्गदर्शन में ही जनता पार्टी का गठन हुआ ।

कृतियाँ : 'रिकंस्ट्रक्शन ऑफ इंडियन पॉलिटी' । कुछ कविताएँ भी लिखीं । डायरी एवं निबंध भी प्रकाशित ।

सम्मान : 1965 में समाज सेवा के लिए मैग्सेसे सम्मान । 1998 में भारत रत्न ।

जयप्रकाश नारायण बीसवीं शती में भारत के एक प्रमुख समाजवादी विचारक, क्रांतदर्शी नेता, समर्पित समाजकर्मी तथा विद्रोही स्वाधीनता सेनानी थे । उनका अध्ययन विशाल और वैविध्यपूर्ण था; राजनीति, संगठन कर्म और लोकसेवा का अनुभव व्यापक और गहन था । भारतीय जनता में उनकी स्थाई विश्वसनीयता और प्रतिष्ठा थी । निष्ठा और अध्यवसाय से परिपूर्ण अपने सक्रिय, रचनात्मक, सार्वजनिक जीवन में उन्होंने अंतरराष्ट्रीय पहचान और प्रतिष्ठा कमाई । वे अपने समय में विश्व के कुछ चुने हुए लोकतांत्रिक नेताओं में से एक थे ।

विदेश से अपनी शिक्षा पूरी कर लौटने के बाद उन्होंने स्वाधीनता संघर्ष में अपने को झोंक दिया । स्वाधीनता संघर्ष में उनकी भूमिका क्रांतिधर्मी थी । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उन्होंने सत्ताकेंद्रित राजनीति के बदले अपने लिए

लोककेंद्रित रचनात्मक राजनीति और समाज सेवा का मार्ग चुना । उन्होंने समता, न्याय, सामाजिक परिवर्तन और लोकतंत्र के पक्ष में पत्रकारिता की तथा लोकसेवा के अनेक कार्यक्रम और अभियान चलाए । पड़ोसी देश नेपाल में लोकशाही के लिए हुए संघर्ष में भी उनका योग रहा । गाँधीवाद के संसर्ग में आकर उन्होंने अपनी लोकनिष्ठा अधिक सुदृढ़ की तथा विनोबा भावे के भूदान आंदोलन में उल्लेखनीय रचनात्मक भूमिका निभाई । साठ के दशक में अपनी ईमानदारी, त्याग और निःस्वार्थ लोकसेवा के कारण जनता के बीच अर्जित अपनी विश्वसनीयता के चलते उन्होंने डाकुओं के हृदय परिवर्तन और पुनर्वास को लेकर उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल कीं । आगे जब देश में आपातकाल लागू हुआ और जनतांत्रिक अधिकारों का क्रूरतापूर्वक दमन किया जाने लगा तब बिहार, गुजरात सहित समूचे देश में छात्रों और युवाओं का आक्रोश फूट पड़ा । छात्रों और युवाओं के ही अनुरोध पर बुढ़ापा और बीमारी के बावजूद जयप्रकाश नारायण ने आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार किया । तब आंदोलन ने देखते ही देखते राष्ट्रव्यापी संगठित रूप धारण किया । जयप्रकाश नारायण 'लोकनायक' कहकर पुकारे गए और वे युवाशक्ति के प्रतीक तथा युवाओं के हृदय सम्राट बन गए । उन्होंने 'संपूर्ण क्रांति' का नारा दिया और सुविचारित राजनीतिक-सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए उनपर अमल करने की व्यापक अपील की । उसका जबर्दस्त असर पड़ा । देश में सत्ता परिवर्तन हो गया । किंतु 'संपूर्ण क्रांति' का लक्ष्य अभी दूर था । सत्ता परिवर्तन उसका प्रारंभिक चरण भर था । आगे व्यापक सामाजिक कार्यक्रम थे जिन्हें अनवरत संगठित प्रयासों द्वारा ही पूरा किया जा सकता था । जयप्रकाश नारायण बुरी तरह अस्वस्थ हो चुके थे । शीघ्र ही पटना में उनका अवसान हो गया । सत्ता बदल गई थी किंतु संपूर्ण क्रांति का लक्ष्य सत्ताधारी नेताओं और दलों के आपसी कलह और खींचतान में दूर हुआ चला जा रहा था । कुछ लोककर्मी संगठनों और शक्तियों द्वारा अथक रूप से आज भी इस दिशा में आगे बढ़ते हुए कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं । जरूरत है इस दिशा में बड़े पैमाने पर जनसंरक्षण के साथ अभियान चलाने की ।

यहाँ 5 जून 1974 के पटना के गाँधी मैदान में दिए गए जयप्रकाश नारायण के 'संपूर्ण क्रांति' वाले ऐतिहासिक भाषण का एक अंश प्रस्तुत है । संपूर्ण भाषण स्वतंत्र पुस्तिका के रूप में 'जनमुक्ति' पटना से प्रकाशित है । इस संकलित अंश से उसकी एक छोटी सी झलक भर मिलती है किंतु लाखों लाख की संख्या में संपूर्ण प्रदेश और देश के विविध क्षेत्रों से आए लोगों, विशेषकर युवा वर्ग, के उस ऐतिहासिक जन-सम्मर्द के बीच लोकनायक ने अस्वस्थ दशा में भी शांतिपूर्वक अपनी बातें कहीं और संपूर्ण जनता मंत्रमुग्ध होकर सुनती रही । भाषण के बाद लोगों के हृदय में क्रांतिकारी विचार धधक उठे और आंदोलन ने विराट् रूप धारण कर लिया । पटना के गाँधी मैदान में फिर न वैसी भीड़ इकट्ठी हुई और न वैसा कोई प्रेरक भाषण और पुरअसर जनसंवाद कायम हो सका ।

◆ ◆ ◆

> "है जयप्रकाश वह नाम जिसे,
> इतिहास समादर देता है
> बढ़कर जिसके पदचिह्नों को,
> उर पर अंकित कर लेता है ।"
>
> –राष्ट्रकवि दिनकर

# संपूर्ण क्रांति

बिहार प्रदेश 'छात्र संघर्ष समिति' के मेरे युवक साथियो, बिहार प्रदेश के असंख्य नागरिक भाइयो और बहनो !

अभी-अभी रेणु जी ने जो कविता पढ़ी, अनुरोध तो वास्तव में उनका था, सुनाना तो वह चाहते थे; मुझसे पूछा गया कि वह कविता सुना दें या नहीं; मैं ने स्वीकार किया । लेकिन उसने बहुत सारी स्मृतियाँ, और अभी हाल की बहुत दुखद स्मृति को जाग्रत कर दिया है । इससे हृदय भर उठा है । आपको शायद मालूम न होगा कि जब मैं वेल्लोर अस्पताल के लिए रवाना हुआ था, तो जाते समय मद्रास में दो दिन अपने मित्र श्री ईश्वर अय्यर के साथ रुका था । वहाँ दिनकर जी, गंगाबाबू मिलने आए थे । बल्कि, गंगाबाबू तो साथ ही रहते थे; और दिनकर जी बड़े प्रसन्न दिखे । उन्होंने अभी हाल की अपनी कुछ कविताएँ सुनाईं और मुझसे कहा कि आपने जो आंदोलन शुरू किया है, जितनी मेरी आशाएँ आपसे लगी थीं उन सबकी पूर्ति, आपके इस आंदोलन में, इस नए आवाहन में, देश के तरुणों का आपने जो किया है, मैं देखता हूँ। (तालियाँ) तालियाँ हरगिज न बजाइए, मेरी बात चुपचाप सुनिए ।

अब मेरे मुँह से आप हुंकार नहीं सुनेंगे । लेकिन जो कुछ विचार मैं आपसे कहूँगा वे विचार हुंकारों से भरे होंगे । क्रांतिकारी वे विचार होंगे, जिन पर अमल करना आसान नहीं होगा । अमल करने के लिए बलिदान करना होगा, कष्ट सहना होगा, गोली और लाठियों का सामना करना होगा, जेलों को भरना होगा । जमीनों की कुर्कियाँ होंगी । यह सब होगा । यह क्रांति है मित्रो, और संपूर्ण क्रांति है । यह कोई विधानसभा के विघटन का ही आंदोलन नहीं है । वह तो एक मंजिल है, जो रास्ते में है । दूर जाना है, दूर जाना है । जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में–अभी न जाने कितने मीलों इस देश की जनता को जाना है उस स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए, जिसके लिए देश के हजारों-लाखों जवानों ने कुर्बानियाँ दी हैं; जिसके लिए सरदार भगतसिंह, उनके साथी, बंगाल के सारे क्रांतिकारी साथी, महाराष्ट्र के साथी, देशभर के क्रांतिकारी सभी गोली का निशाना बने, या तो फाँसी पर लटकाए गए; जिस स्वराज्य के लिए लाखों-लाख देश की जनता बार-बार जेलों को भरती रही है । लेकिन आज सत्ताइस-अट्ठाइस वर्ष के बाद का जो स्वराज्य है, उसमें जनता कराह रही है ! भूख है, महँगाई है, भ्रष्टाचार है, कोई काम नहीं जनता का निकलता है बगैर रिश्वत दिए । सरकारी दफ्तरों में, बैंकों में, हर जगह; टिकट लेना है उसमें, जहाँ भी हो, रिश्वत के बगैर काम नहीं जनता का होता । हर प्रकार के अन्याय के नीचे जनता दब रही है । शिक्षा-संस्थाएँ भ्रष्ट हो रही हैं । हजारों नौजवानों का भविष्य अँधेरे में पड़ा हुआ है । जीवन उनका नष्ट हो रहा है । शिक्षा दी जाती है–गुलामी की शिक्षा ।

शिक्षा पाकर दर-दर ठोकरें खाना नौकरी के लिए । नौकरियाँ मिलती ही नहीं । दिन पर दिन बेरोजगारी बढ़ती जाती है । गरीब की बेरोजगारी बढ़ती जाती है । 'गरीबी हटाओ' के नारे जरूर लगते हैं, लेकिन गरीबी बढ़ी है पिछले वर्षों में ।

तो मित्रो ! आज की स्थिति यह है । और इस स्थिति में वहाँ दिनकर जी ने कुछ हमें अपने शब्द सुनाए, बड़े हृदयग्राही थे । और उसी रात जब विदा हुए–उसी रात को–हमारे मित्र रामनाथ जी गोयनका ('इंडियन एक्सप्रेस' के मालिक) के घर पर वह मेहमान थे । रात को दिल का दौरा पड़ा, तीन मिनट में उनको अस्पताल पहुँचाया गोयनका जी ने, तीन मिनट में । 'विलिंगडन नर्सिंग होम' शायद उसे कहते हैं । सारा इंतजाम था वहाँ पर । पटना का अस्पताल तो ...... पता नहीं तीन घंटे में भी तैयार न हो पाता । सभी डॉक्टर सब तरह के औजार लेकर तैयार थे। लेकिन दिनकर जी का हार्ट फिर से जिंदा नहीं हो पाया। उसी रात उनका निधन हो गया । ऐसी चोट लगी, उनकी यह कविता सुनके; उनका वह सुंदर, सौम्य, जोशीला चेहरा याद आ गया । आज लगता है, हमारे दो मित्रों की कितनी कमी है । आज भाई बेनीपुरी जी होते, उनकी लेखनी में जो ताकत थी, आज के जुलूस का, आज की इस सभा का जो वर्णन वह देते, एक-एक शब्द में अंगार होते ! आज दिनकर जी जो कविता लिखते, नए भारत के नवनिर्माण के लिए, जो देश के युवकों और छात्रों और देश के साधारण व्यक्तियों, नर और नारियों के द्वारा आज से हो रहा है शुरू, प्रारंभ हो गया है, वह कविता शायद इस नवीन क्रांति का एक अमर साहित्य बन जाती । लेकिन आज दोनों ही नहीं हैं; न दिनकर जी हैं, न बेनीपुरी जी ।

तो मित्रो ! ये स्मृतियाँ जगी हैं और इनका भार हृदय पर है । मैं तो थक गया हूँ लेकिन आज बड़ी भारी जिम्मेदारी हमारे कंधों पर आई है और मैंने इस जिम्मेदारी को अपनी तरफ से माँग करके नहीं लिया है । तरुणों से, छात्रों से बराबर कहता रहा हूँ–जब पहला हमने आवाहन किया था 'यूथ फॉर डिमॉक्रेसी' का; लोकतंत्र में युवकों का क्या रोल है, यह हमने जो बताया था, उसमें लिखा था और उसके बाद बराबर कहता रहा हूँ, संचालन समिति में बहस करता रहा हूँ–'हम बूढ़े हो गए, हमारी सलाह ले लीजिए । हम दूसरी पीढ़ी के हो गए । आप नई पीढ़ी के लोग हैं । देश का भविष्य आपके हाथों में है। उत्साह है आपके अंदर, शक्ति है आपके अंदर, जवानी है आपके अंदर; आप नेता बनिए । मैं आपको सलाह दूँगा । तो छात्रों ने कहा–जयप्रकाश जी, मार्गदर्शन से काम नहीं चलेगा, आपको नेतृत्व स्वीकार करना पड़ेगा । मैं टालता रहा, टालता रहा; लेकिन अंत में वेल्लोर जाते समय मैंने उनके आग्रह को स्वीकार किया। स्वीकार करते समय मैंने अनुभव किया अपनी अयोग्यता का, और नम्रतापूर्वक यह स्वीकार किया। परंतु छात्रों से भी, आप सबसे भी यह अनुरोध है कि नाम के लिए मुझे नेता नहीं बनना है । मुझे सामने खड़ा करके और कोई हमें 'डिक्टेट' करे पीछे से कि क्या करना है जयप्रकाश नारायण तुम्हें, तो इस नेतृत्व को कल मैं छोड़ देना चाहूँगा । मैं सबकी सलाह लूँगा–तालियाँ नहीं, बात सुनिए, बात समझिए–सबकी बात सुनूँगा । छात्रों की बात, जितना भी ज्यादा होगा, जितना भी समय मेरे पास होगा, उनसे बहस करूँगा, समझूँगा और अधिक से अधिक उनकी बात मैं स्वीकार करूँगा । आपकी बात स्वीकार करूँगा, जन संघर्ष समितियों की; लेकिन फैसला मेरा होगा । इस फैसले को इनको मानना होगा और आपको मानना होगा । तब तो इस नेतृत्व का कोई मतलब है, तब यह क्रांति सफल हो सकती है। और नहीं, तो आपस के झगड़ों में, बहसों में, पता नहीं कि हम किधर बिखर जाएँगे और क्या नतीजा निकलेगा ।

बहुत दिनों से सार्वजनिक जीवन में हूँ । 1921 में, जनवरी के महीने में, इसी पटना कॉलेज में आई० एससी० का विद्यार्थी था । हमारे साथ, हमारे निकट के साथी थे; वे सब छात्रवृत्ति पानेवाले थे । मुझे भी छात्रवृत्ति मिलती थी । सब अव्वल दर्जे के, 'क्रीम' थे उस समय के विद्यार्थियों में । और हम सबने एक साथ गाँधीजी के आवाहन पर असहयोग किया । असहयोग करने के बाद करीब डेढ़ वर्ष यों ही मेरा जीवन बीता । चूँकि मैं साइंस का विद्यार्थी था, तो राजेंद्र बाबू के सचिव या मंत्री या मित्र या जो कहिए–मथुराबाबू–उनके जामाता बाबू फूलदेवसहाय वर्मा थे, उनके पास भेज दिया गया कि फूलदेव बाबू के साथ रहो और उनकी लैबोरेटरी में, उनकी प्रयोगशाला में कुछ प्रयोग करो और उनसे कुछ सीखो । महामना मदन मोहन मालवीय जी के लिए मेरे ह्रदय में पूजा का भाव है, परंतु हिंदू विश्वविद्यालय में भी दाखिल होने के लिए मैं तैयार नहीं था, क्योंकि सरकारी रुपया, सरकारी एड, मदद विश्वविद्यालय को मिलती थी। स्वतंत्र नहीं था वह, पूर्ण रूप से राष्ट्रीय विद्यालय नहीं था । तो मैं किसी विद्यालय में नहीं गया । बिहार विद्यापीठ में मैंने परीक्षा दी–आई० एससी० की । पास तो करना ही था, पास कर गया । उसके बाद बचपन में–जब हाईस्कूल में था–मैंने स्वामी सत्यदेव के भाषण सुने थे अमेरिका के बारे में । कोई धनी घर का नहीं हूँ । थोड़ी सी खेती और पिताजी नहर विभाग में जिलादार, बाद में रेवेन्यू असिस्टेंट हुए। नॉन-गजटेड अफसर थे । उनकी हैसियत नहीं थी कि वह मुझे अमेरिका भेजें । तो मैंने सुना था कि अमेरिका में मजदूरी करके लड़के पढ़ सकते हैं । मेरी इच्छा थी कि आगे पढ़ना है मुझे; आंदोलन तो गिराव पर आ गया है; चढ़ाव पर था, उतर चुका है; इस बीच अमेरिका से कुछ शिक्षा प्राप्त करके आ जाऊँ । इसीलिए अमेरिका गया–अमेरिका गया । कुछ लोग हैं जो हमारे–पता नहीं कि उन्हें किस नाम से पुकारूँ–मुझे आज वर्षों से गालियाँ देते रहे हैं । कितनी गालियाँ मुझे दी गई हैं । चूँकि अमेरिका में मैंने पढ़ा, इसलिए मैं अमेरिका का दलाल बना हूँ । 'निक्सन को दे दो तार, जयप्रकाश की हो गई हार', ये नारे लगाए।

मित्रो, अमेरिका में बागानों में मैंने काम किया, कारखानों में काम किया-लोहे के कारखानों में । जहाँ जानवर मारे जाते हैं, उन कारखानों में काम किया । जब यूनिवर्सिटी में पढ़ता था, छुट्टियों में काम करके इतना कमा लेता था कि कुछ खाना हम तीन-चार विद्यार्थी मिलकर पकाते थे, और सस्ते में हम लोग खा-पी लेते थे । एक कोठरी में कई आदमी मिलकर रह लेते थे, रुपया बचा लेते थे, कुछ कपड़े खरीदने, कुछ फीस के लिए । और बाकी हर दिन–रविवार को भी छुट्टी नहीं ..... एक घंटा रेस्त्राँ में, होटल में या तो बर्तन धोया या वेटर का काम किया, तो शाम को रात का खाना मिल गया, दिन का खाना मिल गया। किराया कहाँ से मकान का हमको आया ? बराबर दो-तीन लड़के–कितने वर्षों तक दो चारपाई नहीं थी कमरे में - एक चारपाई पर मैं और कोई न कोई अमेरिकन लड़का रहता था । हम दोनों साथ सोते थे, एक रजाई हमारी होती थी । इस गरीबी में मैं पढ़ा हूँ । इतवार के दिन या कुछ 'ऑड टाइम' में, यह जो होटल का काम है–उसको छोड़ करके, जूते साफ करने का काम 'शू शाइन पार्लर' में, उससे ले करके कमोड साफ करने का काम होटलों में करता था । वहाँ जब बी० ए० पास कर लिया, स्कॉलरशिप मिल गई; तीन महीने के बाद असिस्टेंट हो गया डिपार्टमेंट का, 'ट्यूटोरियल क्लास' लेने लगा, तो कुछ आराम से रहा इस बीच में । इन लोगों से पूछिए । मेरा इतिहास ये जानते हैं और जानकर भी मुझे गालियाँ देते हैं ।

अमेरिका में विस्कांसिन में, मैडिसन में, मैं घोर कम्युनिस्ट था । वह लेनिन का जमाना था, वह ट्राटस्की का जमाना था । 1924 में लेनिन मरे थे, और 1924 में मैं मार्क्सवादी बना था; और दावे के साथ कह सकता हूँ कि उस समय तक जो भी मार्क्सवाद के ग्रंथ छपे थे अंग्रेजी में, हम लोगों ने पढ़ डाले थे। रात-रात को रोज एक रशियन टेलर था, दर्जी था, उसके यहाँ हमारे क्लास लगते थे । और वहाँ से जब भारत लौटा था, घोर कम्युनिस्ट बनकर लौटा था; लेकिन मैं काँग्रेस में दाखिल हुआ । कम्युनिस्ट पार्टी में क्यों नहीं दाखिल हुआ ? मैंने जो लेनिन से सीखा था, वह यह सीखा था कि जो गुलाम देश हैं, वहाँ के जो कम्युनिस्ट हैं, उनको हरगिज वहाँ की आजादी की लड़ाई से अपने को अलग नहीं रखना चाहिए- यद्यपि उस लड़ाई का नेतृत्व, जिसको मार्क्सवादी भाषा में 'बुर्जुआ क्लास' कहते हैं, उस क्लास के हाथ में हो; पूँजीपतियों के हाथ में उसका नेतृत्व हो, फिर भी कम्युनिस्टों को अलग नहीं रहना चाहिए । अपने को आइसोलेट नहीं करना चाहिए ।

पहली बात जो मैंने नोट की है, आपसे कहने के लिए वह इस सरकार के बारे में है, आज से तीन दिन हुए । गफूर साहब मिलने आए थे, बहुत प्रेम से मिले । उसके दो दिन के बाद चंद्रशेखर बाबू मिलने आए, बहुत प्रेम से मिले । लेकिन प्रधानमंत्री से ले करके, दीक्षित जी से नीचे .... सब लोग मुझे डिमॉक्रेसी का सबक सिखाते हैं । इनमें से किसी को कोई अधिकार नहीं है कि जयप्रकाश नारायण को लोकतंत्र की शिक्षा दें; लेकिन वे जयप्रकाश नारायण को शिक्षा देने की हिम्मत करते हैं और इनकी ... हरकत देखिए - शांतिमय प्रदर्शन, शांतिमय जुलूस के लिए हजारों लोग आ रहे हैं । प्रदेश के कोने-कोने से, छात्र आ रहे हैं, किसान आ रहे हैं, मजदूर आ रहे हैं, मध्यम वर्ग के लोग आ रहे हैं, कहीं पैदल आ रहे हैं, कुछ बस से आ रहे हैं, कहीं रेलों से आ रहे हैं, कोई ट्रक भाड़े पर ले करके, डीजल अपना खरीद करके, ले करके आ रहे हैं । जहाँ-तहाँ रोका है इनको, लड़कों को पीटा है, गिरफ्तार किया है-अनायास, कोई कारण नहीं है । और यहाँ हमसे आकर के सब मीठी-मीठी बातें करते हैं । इन्होंने जिद की कि इस रास्ते से जुलूस नहीं जाएगा, इसमें यह खतरा है, वह खतरा है । मुझे कोई खतरा दिखाई नहीं दिया । लेकिन जब उन्होंने कहा कि शायद जेल तोड़ने की कोशिश हो और शायद उन्हें गोली चलानी पड़े तो मैंने कहा, इसकी जिम्मेदारी मैं नहीं लेता हूँ । आंदोलन हमारा किसी दूसरे उद्देश्य से हो रहा है, बीच में यह 'डाइवर्शन' हो जाए, रास्ता ही भटक जाएँ हम लोग, यह नहीं चाहते । तो चलिए, जो आप कहते हैं, वही मान लेता हूँ । तो ये बिगड़े भी होंगे छात्र लोग । उधर से जाना था आप इधर से क्यों आए ? हालाँकि वे उन लड़कों को ले आए और एक दूसरी बिल्डिंग में खड़ा करके-जो लड़के हमारी छात्र संघर्ष समिति के वहाँ जेल में हैं-उनको जुलूस दिखाने के लिए ले आए । मैं नहीं जानता हूँ कि अंग्रेजी सरकार के जमाने में भी इस प्रकार का व्यवहार कभी हुआ हो । लोग रेलों से उतार दिए गए, बसों से उतार दिए गए । टिकट था उनके पास । बेटिकट लोग थे, उनको उतार दिया अलग । मुजफ्फरपुर की रिपोर्ट आपने अखबारों में पढ़ी होगी। सारे डिवीजन में क्या-क्या नहीं हुआ है । शर्म नहीं आती इन लोगों को ? डिमॉक्रेसी की बात करते हैं ! लोकतंत्र में, डिमॉक्रेसी में जनता को अधिकार नहीं है कि जहाँ भी चाहें शांतिपूर्ण सभा करें अपनी ? जहाँ भी चाहें शांतिपूर्ण प्रदर्शन करें वे ? राज्यपाल के यहाँ जाना हुआ तो लाखों की तादाद में जाएँ ? असेंबली के सामने जाएँ ? उनको पूरा अधिकार है । हिंसा करे कोई, तो दूसरी बात है ।

हमसे मिलने आए पुलिस के एक उच्च अधिकारी ने कहा, बड़े उच्चाधिकारी ने कहा-नाम लेना

यहाँ ठीक नहीं होगा–कि मैंने दीक्षित जी के मुँह से सुना है कि 'जयप्रकाश नारायण नहीं होते तो बिहार जल गया होता ।' जब जयप्रकाश नारायण के बारे में ऐसा आप सोचते हैं, तो जयप्रकाश नारायण के लिए यह सारा क्यों होता है ? तो, उनके नेतृत्व में यह प्रदर्शन और यह सभा होने वाली है, क्यों लोगों को रोकते हैं आप ? जनता से घबड़ाते हैं आप ? जनता के आप प्रतिनिधि हैं ? किसकी तरफ से शासन करने बैठे हैं आप ? आपकी हिम्मत कि लोगों को पटना आने से रोक लें ? उनकी राजधानी है । आपकी राजधानी है ? यह पुलिसवालों का देश है ? यह जनता का देश है । डूब जाना चाहिए इन लोगों को । ऐसी नीचता का व्यवहार ! बहुत कठोर शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, मैं कठोर शब्द का प्रयोग नहीं करता, लेकिन यह नीचता का व्यवहार है । अगर कोई डिमॉक्रेसी का दुश्मन है, तो वे लोग दुश्मन हैं, जो जनता के शांतिमय कार्यक्रमों में बाधा डालते हैं, उनकी गिरफ्तारियाँ करते हैं । उन पर लाठी चलाते हैं, गोलियाँ चलाते हैं । यह डिमॉक्रेसी है ? इसे बदलना चाहती है जनता–जयप्रकाश नारायण, छात्र, युवक; क्योंकि जो भी आंदोलन इस देश में आज उठेगा उसका नेता युवक रहेगा, छात्र रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है हमको ।

मित्रो, एक बात तो यह कहनी थी । मैं जानता हूँ कि डॉक्टर रहमान यहाँ बैठे होंगे, तो वे कुछ चिंता में पड़े होंगे, कि इस जोर से बोलने का असर मेरे हृदय पर बुरा होगा । मैं भी समझता हूँ । अब जरा अपने को बाँध के बोलूँगा ।

अभी हाल में मैं वेल्लोर में था, तो हमारे परम मित्र और स्नेही उमाशंकर जो दीक्षित पटना आए थे । उन्होंने मेरे संबंध में कुछ अच्छी बातें कहीं । साथ-साथ कई प्रश्न उन्होंने उठाए । मेरा उनका बहुत पुराना संबंध है । 32-33 का आंदोलन जो चला था, उसमें वह 'अंडरग्राउंड' बंबई के–बंबई में वह रहते ही थे–अंडरग्राउंड नेता थे । और सदानंद जी ने, जो फ्री प्रेस के मालिक भी थे–उसकी स्थापना की थी उन्होंने–उनको 'ब्रेन ऑफ बांबे' कहा था । मुझे भी कोई बड़ी पदवी दी थी, पर मैं अपनी प्रशंसा नहीं करूँगा । उस समय दीक्षित जी से हमारा परिचय और हमारी घनिष्ठता, मित्रता हुई । और 'अंडरग्राउंड' जमाने की जो मित्रता होती है, वह ठोस होती है–चाहे हम कहीं रहें, वह कहीं रहें–ठोस रहती है । उसके बाद हम एक दूसरे के मित्र आज तक बने हुए हैं ।

कुछ ऐसे मित्र हैं, जिनके भाव अच्छे हैं । हमारे पुराने मित्र, जो सोशलिस्ट पार्टी में थे या जो नहीं भी थे, ...चाहते हैं कि जयप्रकाश नारायण और इंदिरा जी में कुछ मेल-मिलाप हो । तो मित्रो, मेरा किसी व्यक्ति से झगड़ा नहीं है । किसी व्यक्ति से झगड़ा नहीं है–चाहे वे इंदिरा जी हों या कोई हों । हमें तो नीतियों से झगड़ा है, सिद्धांतों से झगड़ा है, कार्यों से झगड़ा है । जो कार्य गलत होंगे, जो नीति गलत होगी, जो सिद्धांत-प्रिंसिपल्स गलत होंगे, जो पॉलिसी गलत होगी–चाहे वह कोई भी करे–मैं विरोध करूँगा, अपनी अकल के मुताबिक । हम लोग इनकी तरह नौजवान थे उस जमाने में, लेकिन यह जुर्रत होती थी हम लोगों की कि बापू के सामने हम कहते थे कि "हम नहीं मानते हैं बापू यह बात । और बापू में इतनी महत्ता थी, इतनी महानता थी कि बुरा नहीं मानते थे । फिर भी बुलाकर हमें प्रेम से समझाना चाहते थे, समझाते थे । तो, उनकी भी आलोचना की है मैंने । उस जमाने में तो मैं घोर मार्क्सवादी था । बाद में लोकतांत्रिक समाजवादी बना । किंतु बापू की मृत्यु के बाद, कई वर्षों के बाद–1954 में–मैं सर्वोदय में आया, गया (बिहार) में । जवाहरलाल जी थे, एक बड़े भाई थे; मैं उनको 'भाई' कहता ही था । उनका बड़ा स्नेह

था हमारे ऊपर । पता नहीं, क्यों मुझे वह मानते थे बहुत । मैं उनका बड़ा आदर और प्रेम करता था, लेकिन उनकी कटु आलोचना करता था । उनमें भी बड़प्पन था । अक्सर तो उन्होंने हमारी आलोचनाओं का बुरा नहीं माना, लेकिन पटना फायरिंग पर जो मैंने बयान दिया था–मैं मानता हूँ कि बहुत सख्त भाषा का मैंने प्रयोग किया था–उस पर वह बहुत नाराज हुए । लालबहादुर जी ने–कश्मीर के मामले में कुछ किया उन्होंने, मैंने उनकी भी आलोचना की । उनको तार भी दिया कि यह बहुत गलत काम आपने किया है; इससे कश्मीर के सवाल को हल करने में आपको दिक्कत होगी । थोड़े ही दिनों में, 18 महीनों में वह चल बसे । देश का दुर्भाग्य है ।

इंदिरा जी से जो मेरे मतभेद हैं, वे जवाहरलाल जी के साथ जो मतभेद थे, उनसे कहीं ज्यादा गंभीर और 'सीरियस' हैं । जवाहरलाल जी से परराष्ट्र नीतियों के संबंध में–स्वराष्ट्र के संबंध में अधिक उनसे हमारा मतभेद नहीं था–तिब्बत के मामले में मतभेद था, चीन के मामले में था, हंगरी के मामले में था। और मैं कोई गर्व नहीं करता हूँ, मैंने उस समय जो आलोचना की, हंगरी के मामले में जो कुछ कहा, जवाहरलाल जी को बाद में मानना पड़ा । तिब्बत के बारे में मेरी बात तो नहीं मानी उन्होंने । लेकिन जब चीन ने उनको धोखा दिया, तो उस धोखे के कारण उनके हृदय को ऐसी चोट लगी कि दो बरस में चले गए, सँभल नहीं सके । ऐसा घाव लगा जब चीन ने आक्रमण कर दिया । वह कभी उम्मीद नहीं करते थे, आशा नहीं करते थे कि चीन ऐसा करेगा, थोड़ी इनकी भी गलती थी । तो, परराष्ट्र नीतियों के संबंध में मतभेद था उनसे; अंतर्देशीय प्रश्नों में नहीं था उतना मतभेद ।

अब एक बात ले लीजिए, जिसके चलते बहुत ज्यादा करप्शन राजनीति में है । वह क्या है ? इलेक्शन का खर्चा, चुनाव का खर्चा । करोड़ों रुपए वे चुनाव पर खर्च करेंगे । एक तरफ 'गरीबी हटाओ' का नारा लगाएँगे, समाजवाद का नारा लगाएँगे, और यह सब रुपया ब्लैक-मार्केटियर लोगों से आप इकट्ठा करेंगे–'अनअकाउंटेड मनी', करोड़ों रुपए, जिसका कोई हिसाब नहीं, कोई किताब नहीं ।

आज से नहीं, बरसों से मैं पुकार रहा हूँ कि भाई, इस चुनाव की पद्धति में आमूल परिवर्तन होना चाहिए, चुनाव का खर्च कम करना चाहिए–अगर चाहते हैं आप कि गरीब उम्मीदवार खड़ा हो सके, मजदूर उम्मीदवार खड़ा हो सके; किसान उम्मीदवार खड़ा हो सके । गरीब पार्टी–जो गरीब की पार्टी है, वह अपने उम्मीदवार खड़ा कर सके । सुनता है कोई ?

प्रेस रिपोर्टों से पता चलता है कि इस आंदोलन के द्वारा मैं दलविहीन लोकतंत्र की स्थापना करना चाहता हूँ । दलविहीन लोकतंत्र सर्वोदय विचार का मुख्य राजनीतिक सिद्धांत है और उस विचार का प्रचार पिछले वर्षों में मैं करता रहा हूँ, और ग्रामसभाओं के आधार पर दलविहीन प्रतिनिधित्व स्थापित हो सके, इसका प्रयत्न भी करता रहा हूँ । परंतु वर्तमान आंदोलन के संदर्भ में मैंने दलविहीन लोकतंत्र का जिक्र कतई नहीं किया है । फिर भी मेरे पुराने विचार को लेकर जनता में, विशेषकर बुद्धिजीवियों में, काफी भ्रम फैलाया गया है । केवल अपने कम्युनिस्ट भाइयों के भ्रामक प्रचार की सफाई के लिए इतना ही कहूँगा कि दलविहीन लोकतंत्र तो मार्क्सवाद तथा लेनिनवाद के मूल उद्देश्यों में से है, यद्यपि वह उद्देश्य दूर का है। मार्क्सवाद के अनुसार समाज जैसे-जैसे साम्यवाद की ओर बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे राज्य-स्टेट का क्षय होता जाएगा और अंत में एक स्टेटलेस सोसाइटी कायम होगी । वह समाज अवश्य ही लोकतांत्रिक होगा, बल्कि

उसी समाज में लोकतंत्र का सच्चा स्वरूप प्रकट होगा और वह लोकतंत्र निश्चय ही दलविहीन होगा । जब स्टेटलेस सोसाइटी–शासन-मुक्त समाज–बनता जाता है, तो वह शायद ही दलयुक्त होगा । आश्चर्य है कि कम्युनिस्ट बंधुओं को अपने इस मूल सिद्धांत का विस्मरण हो गया है ।

जहाँ तक वर्तमान आंदोलन का प्रश्न है, मेरी या अन्य किसी की–न छात्रों की, न विपक्षी राजनीतिक दलों की, न सर्वोदय सेवकों की–यह कल्पना है कि इसमें से दलविहीन लोकतंत्र पैदा होगा । विधानसभा का विघटन हो जाएगा, तो छह महीने या वर्षभर में फिर चुनाव होंगे, जो वर्तमान कानून या चुनाव प्रणाली के अनुसार होंगे ।

विधानसभा के विघटन से संभावना तो यही है कि वर्तमान कानून तथा नियम आदि के अंतर्गत ही पुनर्निर्वाचन होगा । इसलिए प्रश्न उठता है, जैसा कि पिछले सप्ताहों में कई बार उठा भी है, कि उस हालत में विधानसभा के विघटन से क्या लाभ होगा ? मुझे खेद है कि इसका उत्तर पिछले दिनों मैंने बार-बार दिया है, पर उसको समझने की कोशिश थोड़े ही लोगों ने की है । इसलिए बार-बार मुझसे यह सवाल होता है कि जयप्रकाश नारायण वर्तमान चुनाव पद्धति और विधानसभा के चुनाव का कौन सा विकल्प पेश कर रहे हैं ? मेरा अपना विकल्प चूँकि नए ढंग का है, जो घिसे-पिटे राजनीतिक चिंतन से भिन्न है, इसलिए वह लोगों की समझ में नहीं आता । अगर मैं यह कह दूँ कि मेरा विकल्प यह है कि मैं इस आंदोलन और संघर्ष में से एक नई पार्टी का निर्माण करूँगा, तो सब लोग मेरी बात आसानी से समझ लेंगे और उसके बाद मेरी आलोचना शुरू हो जाएगी कि यह आदमी केवल अपनी सत्ता के लिए छात्रों और जनता के आंदोलन का दुरुपयोग कर रहा है । लेकिन जब मैं कोई नई बात कहता हूँ तो उसको समझने की कोशिश कम होती है, या नहीं होती है । तो, क्या है मेरा कहना ? संक्षेप में यह है कि आज की परिस्थिति में आम जनता को, आम मतदाता को केवल इतना ही अधिकार प्राप्त है कि वह चुनाव में अपना मतदान करें; परंतु मतदान प्रक्रिया न तो स्वच्छ और स्वतंत्र होती है, न उम्मीदवारों के चयन में मतदाताओं का हाथ होता है, और न चुनाव के बाद अपने प्रतिनिधियों पर उनका कोई अंकुश ही रहता है । मैं इन दोनों कमियों को दूर करने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।

अपना देश पिछड़ा हुआ है, इसलिए बावजूद इसके कि हमने लोकतंत्र की स्थापना की है, विकसित देशों के लोकतांत्रिक समाज में जो प्रतिप्रभावी शक्तियाँ, यानी परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करने वाली शक्तियाँ होती हैं, जनमत का जो प्रबल प्रभाव प्रतिनिधियों पर निरंतर पड़ता है, जो स्वतंत्र और साहसी प्रेस, पत्र-पत्रिकाओं के रोल होते हैं, शिक्षित समुदाय का जो वैचारिक और नैतिक असर होता है, इस सारे इंफ्रास्ट्रक्चर का, यानी जनता और शासन के बीच की संरचना का, यहाँ नितांत अभाव है । ऐसी स्थिति में हमारा लोकतंत्र केवल नाममात्र का रह जाता है । इस पूरी अंतरिम संरचना का–इंफ्रास्ट्रक्चर का निर्माण तो एक दिन में नहीं हो सकता; परंतु उसके अभाव में आम जनता या मतदाता मतदान के सिवा कोई भी पार्ट अदा नहीं कर सकता, जिसके परिणामस्वरूप मंत्री तथा विधायक निरंकुश और स्वच्छंद हो जाते हैं, और जनता का किसी प्रकार का अंकुश उन पर नहीं रहता, सिवा इस भय के कि अगले चुनाव में जनता यदि चाहे तो उनको वोट नहीं दे; परंतु यह भय भी रुपया, जाति, बल-प्रयोग, मिथ्याचरण आदि के कारण निष्प्रभ हो जाता है । अब चूँकि प्रदेश के छात्र, युवक और सर्वसाधारण जनता जाग्रत हो गई है, वह आगे

बढ़ रही है और कुछ नया चाहती है, वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन चाहती है । अतः इस परिस्थिति का लाभ उठाकर मैं चाहूँगा कि आज जो असंगठित जनता है, उसमें ऐसी शक्ति आ जाए कि वह सही आदमी का चुनाव कर सके तथा चुनाव के बाद अपने प्रतिनिधियों के आचरण पर यथासंभव अंकुश रख सके । इस संबंध में मेरे कुछ सुझाव हैं । एक तो यह है कि जब विधानसभा का अगला चुनाव हो, तो हमारी छात्र-संघर्ष तथा जन-संघर्ष समितियाँ मिल करके आम राय से अपना उम्मीदवार खड़ा करें, अथवा जो उम्मीदवार खड़े किए जाएँ, उनमें से किसी को मान्य करें । यदि इन समितियों के बीच आम राय नहीं होती है, तो हम कोई ऐसा रास्ता बनाएँगे, जिससे आपस में फूट हुए बगैर ये समितियाँ अपना उम्मीदवार खड़ा कर सकेंगी, या किसी एक उम्मीदवार को अपनी मान्यता दे सकेंगी । इस प्रकार के चुनाव में जनता का एक बहुत बड़ा पार्ट होगा, यानी जनता और छात्रों की संघर्ष समितियाँ उम्मीदवार के चयन में अपना महत्त्वपूर्ण रोल अदा करेंगी । दूसरी बात यह है कि जो भी उम्मीदवार अमुक चुनाव क्षेत्र से जीतेगा, उसके भावी कार्यक्रमों पर कड़ी निगरानी रखने का काम ये संघर्ष समितियाँ करेंगी, और अगर उस क्षेत्र का प्रतिनिधि गलत रास्ता पकड़ता है, तो उनको इस्तीफा देने को बाध्य करेंगी । इस प्रकार से जनता का अंकुश इन लोगों के ऊपर होगा और आज की तरह उच्छृंखल, आज की तरह निरंकुश और स्वच्छंद वे नहीं रह पाएँगे ।

इस सिलसिले में एक और बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि जो संघर्ष समितियाँ छात्रों की या जनता की बन गई हैं या बन रही हैं, उनका काम केवल शासन से संघर्ष करना नहीं है, बल्कि उनका काम तो समाज के हर अन्याय और अनीति के विरुद्ध संघर्ष करने का होगा, और इस प्रकार से इन समितियों के लिए बराबर एक महत्त्वपूर्ण कार्य रहेगा । गाँव में छोटे अफसरों या कर्मचारियों की–चाहे वे पुलिस के हों या अन्य किसी प्रकार के–जो घूसखोरी चलती है, उसके खिलाफ तो संघर्ष रहेगा ही। साथ-साथ जिन बड़े किसानों ने बेनामी या फर्जी बंदोबस्तियाँ की हैं, उनका भी विरोध ये समितियाँ करेंगी और उनको दुरुस्त करने के लिए संघर्ष करेंगी । गाँव में तरह-तरह के अन्याय होते हैं, मेरी कल्पना है कि ये समितियाँ उन अन्यायों को भी रोकेंगी । इस प्रकार से जनता की या छात्रों की ये निर्दलीय संघर्ष समितियाँ स्थाई रूप से कायम रहेंगी और केवल लोकतंत्र के लिए ही नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, नैतिक क्रांति के लिए अथवा संपूर्ण क्रांति के लिए एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करेंगी ।

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. आंदोलन के नेतृत्व के संबंध में जयप्रकाश नारायण के क्या विचार थे, आंदोलन का नेतृत्व वे किस शर्त पर स्वीकार करते हैं ?

2. जयप्रकाश नारायण के छात्र जीवन और अमेरिका प्रवास का परिचय दें। इस अवधि की कौन सी बातें आपको प्रभावित करती हैं ?
3. जयप्रकाश नारायण कम्युनिस्ट पार्टी में क्यों नहीं शामिल हुए ?
4. पाठ के आधार पर प्रसंग स्पष्ट करें –
   (क) अगर कोई डिमॉक्रेसी का दुश्मन है, तो वे लोग दुश्मन हैं, जो जनता के शांतिमय कार्यक्रमों में बाधा डालते हैं, उनकी गिरफ्तारियाँ करते हैं, उन पर लाठी चलाते हैं, गोलियाँ चलाते हैं।
   (ख) व्यक्ति से नहीं हमें तो नीतियों से झगड़ा है, सिद्धांतों से झगड़ा है, कार्यों से झगड़ा है।
5. बापू और नेहरू की किस विशेषता का उल्लेख जेपी ने अपने भाषण में किया है ?
6. भ्रष्टाचार की जड़ क्या है ? क्या आप जेपी से सहमत हैं, इसे दूर करने के लिए क्या सुझाव देंगे ?
7. दलविहीन लोकतंत्र और साम्यवाद में कैसा संबंध है ?
8. संघर्ष समितियों से जयप्रकाश नारायण की क्या अपेक्षाएँ हैं ?
9. जयप्रकाश नारायण के इस भाषण से आप अपना सबसे प्रिय अंश चुनें और बताएँ कि वह सबसे अधिक प्रभावी क्यों लगा ?
10. चुनाव सुधार के बारे में जयप्रकाश जी के प्रमुख सुझाव क्या हैं ? उन सुझावों से आप कितना सहमत हैं ?
11. दिनकर जी का निधन कहाँ और किन परिस्थितियों में हुआ था ?

**पाठ के आस-पास**

1. स्वतंत्रता आंदोलन में जयप्रकाश नारायण की भूमिका पर अपने शिक्षक से चर्चा करें एवं इस पर एक लेख लिखें।
2. 'बुर्जुआ वर्ग' क्या है ? इस वर्ग के बारे में मार्क्स के क्या विचार थे ? इस संबंध में पुस्तकालय का सहयोग लें और शिक्षक से भी जानकारी प्राप्त करें।
3. जयप्रकाश नारायण ने 'लेनिन' का उल्लेख अपने भाषण में किया है, वे एक महान रूसी नेता थे जिनका प्रभाव समूचे विश्व पर पड़ा, लेनिन के नेतृत्व में ही रूस में 1917 में बोल्शेविक क्रांति हुई थी, उनके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करने के लिए पुस्तकालय एवं इंटरनेट की मदद लें।
4. जयप्रकाश नारायण ने अपने भाषण में हिंदी के जिन रचनाकारों का नामोल्लेख किया है, वे रचनाकार किन-किन विधाओं में सक्रिय रहे हैं, उनकी प्रमुख रचनाओं की एक सूची बनाएँ।
5. रामवृक्ष बेनीपुरी ने जयप्रकाश की जीवनी लिखी है, हालाँकि उसमें उनका संपूर्ण जीवन नहीं आ पाया है किंतु वह प्रेरक और महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। उसे उपलब्ध करें और पढ़ें।
6. जयप्रकाश नारायण पर लिखी धर्मवीर भारती की प्रसिद्ध कविता 'मुनादी' की आरंभिक पंक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं। आप इस पूरी कविता को उपलब्ध करें एवं कक्षा में उसका वाचन करें –

मुनादी

**खलक खुदा का, मुलुक बाश्शा का**
**हुकुम शहर कोतवाल का........**
**हर खासो आम को आगाह किया जाता है**
**कि खबरदार रहें**
**और अपने-अपने किवाड़ों को अंदर से**
**कुंडी चढ़ा कर बंद कर लें**

गिरा लें खिड़कियों के पर्दे
और बच्चों को बाहर सड़क पर न भेजें
क्योंकि
एक बहत्तर बरस का बूढ़ा आदमी
अपनी काँपती कमजोर आवाज में
सड़कों पर सच बोलता हुआ निकल पड़ा है !

**भाषा की बात**

1. जयप्रकाश नारायण के इस भाषण से अंग्रेजी के शब्दों को चुनें और उनका हिंदी पर्याय दें ।
2. नीचे लिखे वाक्यों से सर्वनाम चुनें और बताएँ कि वे सर्वनाम के किस भेद के अंतर्गत हैं -
   (क) पहली बात जो मैंने नोट की है आपसे कहने के लिए वह इस सरकार के बारे में है ।
   (ख) मुझे भी छात्रवृत्ति मिलती थी ।
   (ग) मेरा उनका बहुत पुराना संबंध था ।
   (घ) तिब्बत के बारे में मेरी बात तो नहीं मानी उन्होंने ।
3. निम्नलिखित से विशेषण बनाएँ–
   महत्ता, गरीबी, स्नेह, प्रेम, शक्ति, कानून, गाँव
4. निम्नलिखित वाक्यों से अव्यय चुनें –
   (क) लेकिन आज बड़ी भारी जिम्मेदारी हमारे कंधों पर आई है और मैंने इस जिम्मेदारी को अपनी तरफ से माँग करके नहीं लिया है ।
   (ख) मैं टालता रहा, टालता रहा; लेकिन अंत में वेल्लोर जाते समय मैंने उनके आग्रह को स्वीकार कर लिया ।
   (ग) अभी न जाने कितने मीलों इस देश की जनता को जाना है ।
   (घ) थोड़ी सी खेती और पिताजी नहर विभाग में जिलादार, बाद में रेवेन्यू असिस्टेंट हुए ।
   (ङ) अभी हाल में जब मैं वेल्लोर में था, तो हमारे परम मित्र और स्नेही उमाशंकर जी दीक्षित पटना आए थे ।
5. संपूर्ण भाषण में अनेक स्थानों पर वाक्य संरचना टूटी हुई है क्योंकि यह लिखित भाषण नहीं है, स्वतःस्फूर्त ऐसा भाषण है जिसमें बोलना और सोचना एक साथ होता है । ऐसे वाक्य चुनें और उन्हें व्यवस्थित करें ।

**शब्द निधि :**

इंफ्रास्ट्रक्चर : आधारभूत ढाँचा
हृदयग्राही : हृदय को आकर्षित-प्रभावित करने वाला
लैबोरेटरी : प्रयोगशाला
स्कॉलरशिप : छात्रवृत्ति
असिस्टेंट : सहायक
अंकुश : नियंत्रण
स्वच्छंद : स्वतंत्र, अपने मन मुताबिक चलने वाला
उच्छृंखल : नियम-कायदा तोड़ने वाला, असंयत
बुर्जुआ क्लास : पूँजीपति वर्ग और उसमें निष्ठा रखनेवाला

# रामधारी सिंह दिनकर

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 23 सितंबर 1908 । |
| निधन | : | 24 अप्रैल 1974 । |
| जन्म-स्थान | : | सिमरिया, बेगूसराय, बिहार । |
| माता-पिता | : | मनरूप देवी एवं रवि सिंह । |
| पत्नी | : | श्यामवती देवी । |
| शिक्षा | : | प्रारंभिक शिक्षा गाँव और उसके आसपास । 1928 में मोकामा घाट रेलवे हाई स्कूल से मैट्रिक, 1932 में पटना कॉलेज से बी० ए० ऑनर्स (इतिहास) । |
| वृत्ति | : | प्रधानाध्यापक, एच० ई० स्कूल, बरबीघा ; सब-रजिस्ट्रार ; सब-डायरेक्टर, जनसंपर्क विभाग एवं बिहार विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर । भागलपुर विश्वविद्यालय में उपकुलपति । हिंदी सलाहकार के रूप में भी कार्य । |
| साहित्यिक अभिरुचि | : | 1925 में 'छात्र सहोदर' में पहली कविता प्रकाशित । देश (पटना), प्रकाश (बेगूसराय), प्रतिभा (कन्नौज) में छात्र जीवन में अनेक रचनाएँ प्रकाशित । 21 वर्ष की अवस्था में पहली कविता पुस्तक 'प्रणभंग' प्रकाशित । |
| कृतियाँ | : | प्रमुख काव्य कृतियाँ : प्रणभंग (1929), रेणुका (1935), हुंकार (1938), रसवंती (1940), कुरुक्षेत्र (1946), रश्मिरथी (1952), नीलकुसुम (1954), उर्वशी (1961), परशुराम की प्रतीक्षा (1963), कोमलता और कवित्व (1964), हारे को हरिनाम (1970) आदि ।<br>प्रमुख गद्य कृतियाँ : मिट्टी की ओर (1946), अर्धनारीश्वर (1952), संस्कृति के चार अध्याय (1956), काव्य की भूमिका (1958), वट पीपल (1961), शुद्ध कविता की खोज (1966), दिनकर की डायरी (1973) आदि । |
| पुरस्कार एवं सम्मान | : | 'संस्कृति के चार अध्याय' पर साहित्य अकादमी एवं 'उर्वशी' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार । राज्यसभा के सांसद । पद्मभूषण एवं कई अलंकरणों से सम्मानित । राष्ट्रकवि के रूप में समादृत । |

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जितने बड़े कवि थे उतने ही समर्थ गद्यकार भी । उनके गद्य में भी उनकी कविता के गुण–ओज, पौरुष, प्रभावपूर्ण वाग्मिता और रूपकधर्मिता आदि उसी सहजता और प्रवाह के साथ मुखरित होते हैं । उनकी कविता और गद्य दोनों में उनके व्यक्तित्व की एक जैसी गहरी छाप है । उनकी भाषा कुछ भी छिपाती नहीं, सबकुछ उजागर कर देती है । अब यह पाठकों-श्रोताओं की ग्रहणशीलता पर निर्भर है कि वह कितनी जागरूक और चौकन्ना है । उनकी पराक्रमी वाणी में सन्नाटे और मौन के सक्रिय निषेध का बल भी है; गोया वह उठ खड़ी हुई वाणी हो ।

दिनकर छायावादोत्तर युग के प्रमुख कवि हैं । वे भारतेंदु युग से प्रवहमान राष्ट्रीय भावधारा के एक महत्त्वपूर्ण

आधुनिक कवि हैं । कविता लिखने की शुरुआत उन्होंने तीस के दशक में ही कर दी थी किंतु अपनी संवेदना और भावबोध से वे चौथे दशक के प्रमुख कवि के रूप में ही पहचाने गए । उन्होंने प्रबंध, मुक्तक, गीत-प्रगीत काव्यनाटक इत्यादि अनेक काव्यशैलियों में सफलतापूर्वक उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । प्रबंधकाव्य के क्षेत्र में छायावाद के बाद के कवियों में उनकी उपलब्धियाँ सबसे अधिक और उत्कृष्ट हैं । भारतीय और पाश्चात्य साहित्य का उनका अध्ययन-अनुशीलन विस्तृत एवं गंभीर है । उसकी छाप उनके काव्य और गद्य दोनों पर है, स्वभावत: गद्य पर अधिक स्पष्ट और मुखर । जातीय महाकाव्य महाभारत और व्यास की कवित्व-प्रतिभा का दिनकर पर वैभववर्धक प्रभाव है । दिनकर में इतिहास और सांस्कृतिक परंपरा की गहरी चेतना है और समाज, राजनीति, दर्शन का वैश्विक परिप्रेक्ष्य-बोध है जो उनके साहित्य में अनेक स्तरों पर व्यक्त होता है ।

गद्य के क्षेत्र में दिनकर ने अनेक उल्लेखनीय कृतियाँ दी हैं जो अनेक अर्थों में उनके युग की उपलब्धिभी मानी जा सकती है । काव्य चिंतन, संस्कृति चिंतन, भाषा चिंतन, समाज चिंतन आदि को लेकर उनके गद्य लेखन की अनेक कोटियाँ बनती हैं । उनके गद्य में विषयवस्तु, शैली, विधा और गद्यरूप की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य है । सामान्यत: उनका साहित्य, विशेषकर गद्य साहित्य, संबोधित साहित्य है । लेखक जानता है कि वह किनके लिए लिख रहा है । उसकी रचनाएँ उस तक मनचाहे रूप में संप्रेषित हो जाती हैं । स्वभावत: दिनकर के साहित्य में एक प्रत्यक्षता और गरमाहट है ।

यहाँ उनका प्रसिद्ध निबंध 'अर्धनारीश्वर' प्रस्तुत है । अर्धनारीश्वर भारत का एक मिथकीय प्रतीक है जिसमें दिनकर अपना मनचीता आदर्श निरूपित होते देखते हैं । यह उनका प्रिय प्रतीक है जो प्राय: उनके काव्य और गद्य साहित्य में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपों में व्यक्त होता और काम करता दिखलाई पड़ता है । जीवनभर यह दिनकर का उपास्य आदर्श बना रहा । उनकी संवेदना, भावबोध और काव्य संस्कार पर इसका गहरा असर है । इस प्रतीक के सांस्कृतिक अभिप्राय क्या हैं ? क्या यह आज के सामान्य मनुष्य और सभ्यता के लिए भी कोई अर्थ और संदेश रखता है ? दिनकर इस परिप्रेक्ष्य में इस निबंध में विचार करते हैं । दिनकर के जन्मशताब्दी वर्ष में इस प्रिय प्रतीक पर उनके द्वारा फुर्सत से सोचते हुए लिखे गए इस निबंध द्वारा हम लेखक के मौलिक अखंड स्वरूप की एक झलक पा सकते हैं जो प्राय: ओट और धुँधलके में रहता आया है ।

◆ ◆ ◆

**"जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह एक प्रक्रिया का नाम है । यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहुँचने की प्रक्रिया है । आधुनिक वह है, जो मनुष्य की ऊँचाई उसकी जाति या गोत्र से नहीं, बल्कि उसके कर्म से नापता है । आधुनिक वह है, जो मनुष्य-मनुष्य को समान समझता है ।"**

**– दिनकर**

# अर्धनारीश्वर

अर्धनारीश्वर शंकर और पार्वती का कल्पित रूप है, जिसका आधा अंग पुरुष का और आधा अंग नारी का होता है । एक ही मूर्ति की दो आँखें, एक रसमयी और दूसरी विकराल; एक ही मूर्ति की दो भुजाएँ, एक त्रिशूल उठाए और दूसरी की पहुँची पर चूड़ियाँ और उँगलियाँ अलक्तक से लाल; एवं एक ही मूर्ति के दो पाँव, एक जरीदार साड़ी से आवृत और दूसरा बाघंबर से ढँका हुआ ।

एक हाथ में डमरू, एक में वीणा परम उदार ।
एक नयन में गरल, एक में संजीवन की धार ।
जटाजूट में लहर पुण्य की, शीतलता-सुख-कारी ।
बालचंद्र दीपित त्रिपुंड पर, बलिहारी, बलिहारी ।

स्पष्ट ही, यह कल्पना शिव और शक्ति के बीच पूर्ण समन्वय दिखाने को निकाली गई होगी, किंतु इसकी सारी व्याप्तियाँ वहीं तक नहीं रुकतीं । अर्धनारीश्वर की कल्पना में कुछ इस बात का भी संकेत है कि नर-नारी पूर्ण रूप से समान हैं एवं उनमें से एक के गुण दूसरे के दोष नहीं हो सकते । अर्थात नरों में नारियों के गुण आएँ तो इससे उनकी मर्यादा हीन नहीं होती, बल्कि, उनकी पूर्णता में वृद्धि होती ही होती है ।

किंतु पुरुष और स्त्री में अर्धनारीश्वर का यह रूप आज कहीं भी देखने में नहीं आता । संसार में सर्वत्र पुरुष पुरुष है और स्त्री स्त्री । नारी समझती है कि पुरुष के गुण सीखने से उसके नारीत्व में बट्टा लगेगा । इसी प्रकार पुरुष भी स्त्रियोचित गुणों को अपनाकर समाज में स्त्रैण कहलाने से घबराता है । स्त्री और पुरुष के गुणों के बीच एक प्रकार का विभाजन हो गया है तथा विभाजन की रेखा को लाँघने में नर और नारी, दोनों को भय लगता है ।

किंतु, ऐसा लगता है कि गुणों का बँटवारा करते समय पुरुष ने नारी से उसकी राय नहीं पूछी, अपने मन से उसने जहाँ चाहा, नारी को बिठा दिया । स्वयं तो वह वृक्ष बन बैठा और नारी को उसने लता बना दिया । स्वयं तो वह वृंत बन गया और नारी को उसने कली मान लिया । तब से धूप पुरुष और चाँदनी नारी रही है; ग्रीष्म नर और वर्षा मादा रही है; विचार पति और भावना पत्नी रही है । जहाँ भी कर्म का कोई क्षेत्र है, अधिकार की कोई भूमि है और सत्ता का कोई सीधा उत्स है, उस पर कब्जा नारी का नहीं, नर का माना जाता है । नर है विधाता का मुख्य तंतुवाय जो वस्त्र बुनकर तैयार करता है, नारी का काम

उस वस्त्र पर छींटे डालना है । नर है कुदाल चलानेवाला बलशाली किसान जो मिट्टी तोड़कर अन्न उपजाता है, नारी का काम दोनों को अछोरना-पछोरना है । नर है नदियों का वेगमय प्रवाह, नारी उसमें लहर बन कर उठती-गिरती रहती है । सिंहासन तो वस्तुतः राजा के लिए होता है; रानी उसके वामांग की शोभा मात्र है । सत्य है राजा की ग्रीवा और विशाल वक्षोदेश, रानी उन पर मंदार हार बनकर झूलने के लिए है । राजा काया और रानी छाया के प्रतीक हैं । सत्य का साकार रूप तो राजा ही होता है, रानी है कल्पना की रंगीन जाली और सपनों की मीठी मुस्कान जो जीवन में उतरी तो वाह-वाह और नहीं उतरी तो वाह-वाह । कहावत चल पड़ी है,

**पुरुष ऐनेछे दिवसेर ज्वाला तप्त रौद्र दाह ।**

**कामिनी ऐनेछे यामिनी-शांति समीरण, वारिवाह ।**

दिवस की ज्वाला और तप्त धूप, ये पुरुष की लाई हुई चीजें हैं । कामिनी तो अपने साथ यामिनी की शांति लाती है ।

किंतु कवि की यह कल्पना झूठी है । यदि आदि मानव और आदि मानवी आज मौजूद होते तो ऐसी कल्पना से सबसे अधिक आश्चर्य उन्हें ही होता । और वे, कदाचित् कहते भी कि 'आपस में धूप और चाँदनी का बँटवारा हमने नहीं किया था । हम तो साथ-साथ जन्मे थे तथा धूप और चाँदनी में, वर्षा और आतप में साथ ही घूमते भी थे; बल्कि आहार-संचय को भी हम साथ ही निकलते थे और अगर कोई जानवर हम पर टूट पड़ता तो हम एक साथ उसका सामना भी करते थे ।' उन दिनों नर बलिष्ठ और नारी इतनी दुर्बल नहीं थी, न आहार के लिए ही एक को दूसरे पर अवलंबित रहना पड़ता था । नारी की पराधीनता तब आरंभ हुई जब मानव जाति ने कृषि का आविष्कार किया जिसके चलते नारी घर में और पुरुष बाहर रहने लगा । यहाँ से जिंदगी दो टुकड़ों में बँट गई । घर का जीवन सीमित और बाहर का जीवन निस्सीम होता गया एवं छोटी जिंदगी बड़ी जिंदगी के अधिकाधिक अधीन होती चली गई । नारी की पराधीनता का यह संक्षिप्त इतिहास है ।

नर और मादा पशुओं में भी थे और पक्षियों में भी । किंतु पशुओं और पक्षियों ने अपनी मादाओं पर आर्थिक परवशता नहीं लादी । लेकिन, मनुष्य की मादा पर यह पराधीनता आप से आप लद गई । और इस पराधीनता ने नर-नारी से वह सहज दृष्टि भी छीन ली जिससे नर पक्षी अपनी मादा को या मादा अपने नर को देखती है । कृषि का विकास सभ्यता का पहला सोपान था, किंतु इस पहली ही सीढ़ी पर सभ्यता ने मनुष्य से भारी कीमत वसूल कर ली । आज प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी को फूलों सा आनंदमय भार समझता है और प्रत्येक पत्नी अपने पति को बहुत कुछ उसी दृष्टि से देखती है जिस दृष्टि से लता अपने वृक्ष को देखती होगी ।

इस पराधीनता के कारण नारी अपने अस्तित्व की अधिकारिणी नहीं रही । उसके सुख और दुख, प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा, यहाँ तक कि जीवन और मरण पुरुष की मर्जी पर टिकने लगे । उसका सारा मूल्य इस बात पर जा ठहरा कि पुरुषों को उसकी कोई आवश्यकता है या नहीं । इसी से नारी की पद-मर्यादा प्रवृत्तिमार्ग के प्रचार से उठती और निवृत्तिमार्ग के प्रचार से गिरती रही है । जो प्रवृत्तिमार्गी हुए, उन्होंने नारी को गले से लगाया, क्योंकि जीवन से वे आनंद चाहते थे और नारी आनंद की खान थी । किंतु जो

निवृत्तिमार्गी निकले उन्होंने जीवन के साथ नारी को भी अलग ढकेल दिया, क्योंकि नारी उनके किसी काम की चीज नहीं थी । प्राचीन विश्व में जब वैयक्तिक मुक्ति की खोज मनुष्य-जीवन की सबसे बड़ी साधना मानी जाने लगी, तब झुंड के झुंड विवाहित लोग संन्यास लेने लगे और उनकी अभागिनी पत्नियों के सिर पर जीवित वैधव्य का पहाड़ टूटने लगा । जरा उन आँसुओं की कल्पना कीजिए जो उन अभागिनियों की आँखों से बहते होंगे, जिनके पति परमार्थ लाभ के लिए उनका त्याग कर देते थे । जरा उस बेबसी को भी ध्यान में लाइए जो इस अनुभूति से उठती होगी कि आखिर जो संन्यास लेता है, वह निष्ठुर है, कायर और कठोर नहीं, बल्कि पुण्यात्मा, साहसी और शायद, सबसे बड़ा वीर है । और हाय री नारी ! जो इन परिस्थितियों से हार कर, स्वेच्छया, अपने आप को, सचमुच ही, पुण्य की बाधा और पाप की खान मानकर पछाड़ खाकर रह जाती थी ।

बुद्ध और महावीर ने कृपा करके नारियों को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया था, किंतु यह अधिकार भी नारी के हाथ सुरक्षित न रह सका । जैनों के बीच जब दिगंबर संप्रदाय निकला, तब धर्माचार्य नारियों की भिक्षुणी होनेवाली बात से घबरा उठे और धर्म-पुस्तक में उन्होंने एक नए नियम का विधान किया कि नारियों का भिक्षुणी होना व्यर्थ है, क्योंकि मोक्ष नारी जीवन में नहीं मिल सकता । नारियाँ घर में ही रहकर दान-पुण्य करें और उस दिन की प्रतीक्षा करें जब उनका जन्म पुरुष योनि में होगा । जब वे पुरुष होकर जनमेंगी, संन्यास वे तभी ले सकेंगी और तभी उन्हें मुक्ति भी मिलेगी । और बुद्ध ने भी एक दिन आयुष्मान आनंद से ईषत् पश्चाताप के साथ कहा कि "आनंद ! मैंने जो धर्म चलाया था, वह पाँच सहस्त्र वर्ष तक चलने वाला था, किंतु अब वह केवल पाँच सौ वर्ष चलेगा, क्योंकि नारियों को मैंने भिक्षुणी होने का अधिकार दे दिया है ।"

धर्म साधक महात्मा और साधु नारियों से भय खाते थे । विचित्र बात तो यह है कि इनमें से कई महात्माओं ने तो ब्याह भी किया और फिर नारियों की निंदा भी की । कबीर साहब का एक दोहा मिलता है-

**नारी तो हम हूँ करी, तब ना किया विचार ।**
**जब जानी तब परिहरी, नारी महा विकार ॥**

नारियों की यह अवहेलना हमारे अपने काल तक भी पहुँची है । बर्नार्ड शा ने नारी को अहेरिन और नर को अहेर माना है । तात्पर्य यह कि अहेर को अहेरिन के पास से बच कर चलना चाहिए । बहुत नीचे के स्तर पर कुछ ऐसी ही प्रतिक्रिया उन कवियों की भी है जो नारी को 'नागिन' या 'जादूगरनी' समझते हैं । लेकिन, ये सब झूठी बातें हैं, जिनकी ईजाद पुरुष इसलिए करता है कि उनसे उसे अपनी दुर्बलता अथवा कल्पित श्रेष्ठता के दुलराने में सहायता मिलती है । असल में, विकार नारी में भी है और नर में भी; तथा नाग और जादूगर के गुण भी नारी में कम, पुरुष में अधिक होते हैं एवं आखेट तो मुख्यत: पुरुष का ही स्वभाव है ।

इन सबसे भिन्न रवीन्द्रनाथ, प्रसाद और प्रेमचंद जैसे कवियों और रोमांटिक चिंतकों में नारी का जो रूप प्रकट हुआ, वह भी उसका अर्धनरेश्वरी रूप नहीं है । प्रेमचंद ने कहा है कि "पुरुष जब नारी के गुण लेता है तब वह देवता बन जाता है; किंतु नारी जब नर के गुण सीखती है तब वह राक्षसी हो जाती

है ।'' इसी प्रकार, प्रसाद जी की इड़ा के विषय में यदि यह कहा जाय कि इड़ा वह नारी है जिसने पुरुषों के गुण सीखे हैं तो निष्कर्ष यही निकलेगा कि प्रसाद जी भी नारी को पुरुषों के क्षेत्र से अलग रखना चाहते थे । और रवींद्रनाथ का मत तो और भी स्पष्ट है । वे कहते हैं,

**नारी यदि नारी हय**
**शुधू शुधू धरणीर शोभा, शुधू आली,**
**शुधू भालोवासा, शुधू सुमधुर छले,**
**शतरूप भंगिमाय पलके-पलके**
**फुटाय-जड़ाए बंके बेंधे हेंसे केंदे**
**सेवाये सोहागे छेपे चेपे थाके सदा**
**तबे तार सार्थक जनम । की होइवे**
**कर्म-कीर्त्ति, वीर्यबल, शिक्षा-दीक्षा तार ?**

अर्थात नारी की सार्थकता उसकी भंगिमा के मोहक और आकर्षक होने में है, केवल पृथ्वी की शोभा, केवल आलोक, केवल प्रेम की प्रतिमा बनने में है । कर्मकीर्ति, वीर्यबल और शिक्षा-दीक्षा लेकर वह क्या करेगी ?

मेरा अनुमान है कि ऐसी प्रशस्तियों को ललनाएँ अभी भी बुरा नहीं मानतीं । सदियों की आदत और अभ्यास से उनका अंतर्मन भी यही कहता है कि नारी जीवन की सार्थकता पुरुष को रिझाकर रखने में है। यह सुनना उन्हें बहुत अच्छा लगता है कि नारी स्वप्न है, नारी सुगंध है, नारी पुरुष की बाँह पर झूलती हुई जूही की माला है, नारी नर के वक्षस्थल पर मंदार का हार है । किंतु यही वह पराग है जिसे अधिक से अधिक उड़ेल कर हम नवयुग के पुरुष नारियों के भीतर उठनेवाले स्वातंत्र्य के स्फुलिंगों को मंद रखना चाहते हैं ।

यतियों का अभिशप्त काल समाप्त हो गया । अब नारी विकारों की खान और पुरुषों की बाधा नहीं मानी जाती है । वह प्रेरणा का उद्गम, शक्ति का स्रोत और पुरुषों की क्लांति की महौषधि हो उठी है । फिर भी, नारी अपनी सही जगह पर नहीं पहुँची है । पुरुष नारी से अब यह कहने लगा है कि, ''तुम्हें घर से बाहर निकलने की क्या जरूरत है ? कमाने को मैं अकेला काफी हूँ । तुम घर बैठे खर्च किया करो ।'' किंतु इतना ही यथेष्ट नहीं है । नारियों को सोचना चाहिए कि पुरुष ऐसा कहता क्यों है । स्पष्ट ही, इसलिए कि नारी को वह अपनी क्रीड़ा की वस्तु मानता है, आराम के समय अपने मनोविनोद का साधन समझता है । इसलिए, वह नहीं चाहता कि आनंद की इतनी अच्छी मूर्त्ति पर थोड़ी सी धूल या थोड़ा भी धुएँ का धब्बा लगे ।

नारी और नर एक ही द्रव्य की ढली दो प्रतिमाएँ हैं । आरंभ में दोनों बहुत कुछ समान थे । आज भी प्रत्येक नारी में कहीं न कहीं कोई एक प्रच्छन्न नर और प्रत्येक नर में कहीं न कहीं एक क्षीण नारी छिपी हुई है । किंतु सदियों से नारी अपने भीतर के नर को और नर अपने भीतर की नारी को बेतरह दबाता आ रहा है । परिणाम यह है कि आज सारा जमाना ही मरदाना मर्द और औरतानी औरत का जमाना हो

उठा है । पुरुष इतना कर्कश और कठोर हो उठा है कि युद्धों में अपना रक्त बहाते समय उसे यह ध्यान ही नहीं रहता कि रक्त के पीछे जिनका सिंदूर बहनेवाला है, उनका क्या हाल होगा । और न सिंदूरवालियों को ही इसकी फिक्र है कि और नहीं तो, उन जगहों पर तो उनकी राय खुले जहाँ सिंदूर पर आफत आने की आशंका है । कौरवों की सभा में यदि संधि की वार्ता कृष्ण और दुर्योधन के बीच न होकर कुंती और गांधारी के बीच हुई होती, तो बहुत संभव था कि महाभारत नहीं मचता । किंतु कुंतियाँ और गांधारियाँ तब भी निश्चेष्ट थीं और आज भी निश्चेष्ट हैं । बल्कि, द्वापर से कलिकाल तक पहुँचते-पहुँचते वे अपने भीतर की नरता का और भी अधिक दलन कर चुकी हैं । जहाँ कहीं फूलों का प्रदर्शन और रेशमी वस्त्रों की हाट है, नारियाँ अपने मन से वहीं जमा होती हैं । जिन कांडों से फूलों के बाग उजड़ते और रेशमी वस्त्रों के बाजार जलकर खाक हो जाते हैं, उनके संचालन और नियंत्रण का सारा भार उन्होंने पुरुषों पर डाल रखा है । आधी दुनिया उछलने-कूदने, आग लगाने और उसे बुझाने में लगी हुई है और आधी दुनिया फूलों की सैर में है ।

नर-नारी के प्रचलित संबंधों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव संसार के इतिहास पर पड़ रहा है और जब तक यह संबंध नहीं सुधरते, शांति के मार्ग की सारी बाधाएँ दूर नहीं होंगी । नारी कोमलता की आराधना करते-करते इतनी कोमल हो गई है कि अब उसे दुर्बल कहना चाहिए । उसने पौरुष से अपने आप को इतना विहीन बना लिया है कि कर्म के बड़े क्षेत्रों में पाँव धरते ही उसकी पत्तियाँ कुम्हलाने लगती हैं और पुरुष में कोमलता की जो प्यास है उसे नारी भली-भाँति शांत कर देती है । फिर, पुरुष अपने भीतर कोमलता का विकास क्यों करे ?

इस स्थिति से बाहर निकलने का रास्ता वह नहीं है जिसे रोमांटिक कवियों और चिंतकों ने बतलाया है, बल्कि वह है जिसकी ओर संकेत गाँधी और मार्क्स करते हैं । निवृत्तिमार्गियों की तरह नारी से दूर भागने की बात तो निरी मूर्खता की बात है; और भोगवादियों के समान नारी को निरे भोग की वस्तु मान बैठना और भी गलत है । नारी केवल नर को रिझाने अथवा उसे प्रेरणा देने को नहीं बनी है । जीवन यज्ञ में उसका भी अपना हिस्सा है और वह हिस्सा घर तक ही सीमित नहीं, बाहर भी है । जिसे भी पुरुष अपना कर्मक्षेत्र मानता है, वह नारी का भी कर्मक्षेत्र है । नर और नारी, दोनों के जीवनोद्देश्य एक हैं । यह अन्याय है कि पुरुष तो अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए मनमाने विस्तार का क्षेत्र अधिकृत कर ले और नारियों के लिए घर का छोटा कोना छोड़ दे । जीवन की प्रत्येक बड़ी घटना आज केवल पुरुष प्रवृत्ति से नियंत्रित और संचालित होती है । इसीलिए, उसमें कर्कशता अधिक, कोमलता कम दिखाई देती है । यदि इस नियंत्रण और संचालन में नारियों का भी हाथ हो तो मानवीय संबंधों में कोमलता की वृद्धि अवश्य होगी ।

यही नहीं, प्रत्युत, प्रत्येक नर को एक हद तक नारी और प्रत्येक नारी को एक हद तक नर बनाना भी आवश्यक है । गाँधीजी ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में नारीत्व की भी साधना की थी । उनकी पोती ने उन पर जो पुस्तक लिखी है, उसका नाम ही 'बापू, मेरी माँ' है । दया, माया, सहिष्णुता और भीरुता, ये स्त्रियोचित गुण कहे जाते हैं । किंतु, क्या इन्हें अंगीकार करने से पुरुष के पौरुष में कोई दोष आनेवाला है ? दया, माया और सहिष्णुता ही नहीं, भीरुता का भी एक अच्छा पक्ष है जो मनुष्य को अनावश्यक विनाश से बचाता है । उसी प्रकार अध्यवसाय, साहस और शूरता का वरण करने से भी नारीत्व की मर्यादा नहीं

घटती ।

अर्धनारीश्वर केवल इसी बात का प्रतीक नहीं है कि नारी और नर जब तक अलग हैं तब तक दोनों अधूरे हैं, बल्कि इस बात का भी कि पुरुष में नारीत्व की ज्योति जगे, और यह कि प्रत्येक नारी में भी पौरुष का स्पष्ट आभास हो ।

**मही माँगती प्राण-प्राण में सजी कुसुम की क्यारी;**
**स्वप्न-स्वप्न में गूँज सत्य की, पुरुष-पुरुष में नारी ।**

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. 'यदि संधि की वार्ता कुंती और गांधारी के बीच हुई होती, तो बहुत संभव था कि महाभारत न मचता' । लेखक के इस कथन से क्या आप सहमत हैं ? अपना पक्ष रखें ।
2. अर्धनारीश्वर की कल्पना क्यों की गई होगी ? आज इसकी क्या सार्थकता है ?
3. रवींद्रनाथ, प्रसाद और प्रेमचंद के चिंतन से दिनकर क्यों असंतुष्ट हैं ?
4. प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग क्या हैं ?
5. बुद्ध ने आनंद से क्या कहा ?
6. स्त्री को अहेरिन, नागिन और जादूगरनी कहने के पीछे क्या मंशा होती है, क्या ऐसा कहना उचित है ?
7. नारी की पराधीनता कब से आरंभ हुई ?
8. प्रसंग स्पष्ट करें –
   (क) प्रत्येक पत्नी अपने पति को बहुत कुछ उसी दृष्टि से देखती है जिस दृष्टि से लता अपने वृक्ष को देखती है ।
   (ख) जिस पुरुष में नारीत्व नहीं, अपूर्ण है ।
9. जिसे भी पुरुष अपना कर्मक्षेत्र मानता है, वह नारी का भी कर्मक्षेत्र है । कैसे ?
10. 'अर्धनारीश्वर' निबंध में दिनकर जी के व्यक्त विचारों को सार रूप में प्रस्तुत करें'।

**पाठ के आस-पास**

1. दिनकर जी ने निबंध में इड़ा का उल्लेख किया है । इड़ा प्रसाद जी के काव्य कामायनी की पात्र है । कामायनी के पात्रों एवं इसकी कथावस्तु की जानकारी शिक्षक से प्राप्त करें ।
2. प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग का संबंध बौद्धमत से है जबकि श्वेतांबर और दिगंबर का संबंध जैनमत से । इनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? इनकी प्रमुख मान्यताएँ क्या हैं ? मालूम करें और लिखें ।

3. बुद्ध को नारियों को बौद्ध धर्म में प्रवेश की अनुमति क्यों देनी पड़ी, इसका बौद्ध धर्म पर क्या प्रभाव पड़ा ? वर्ग में अपने शिक्षक से चर्चा करें ।

**भाषा की बात**

1. निम्नलिखित शब्दों से संज्ञा बनाएँ –
   कल्पित, शीतल, अवलंबित, मोहक, आकर्षक, वैयक्तिक, विधवा, साहसी
2. वाक्य प्रयोग द्वारा लिंग-निर्णय करें –
   संन्यास, आयुष्मान, अंतर्मन, महौषधि, यथेष्ट, मनोविनोद
4. अर्थ की दृष्टि से नीचे लिखे वाक्यों की प्रकृति बताएँ –
   (क) संसार में सर्वत्र पुरुष पुरुष हैं और स्त्री स्त्री ।
   (ख) किंतु पुरुष और स्त्री में अर्धनारीश्वर का यह रूप आज कहीं भी देखने में नहीं आता ।
   (ग) कामिनी तो अपने साथ यामिनी की शांति लाती है ।
   (घ) यहाँ से जिंदगी दो टुकड़ों में बँट गई ।
   (ङ) विचित्र बात तो यह है कि इनमें से कई महात्माओं ने ब्याह भी किया और फिर नारियों की निंदा भी की ।
5. 'बट्टा लगाना' का क्या अर्थ है ?

**पारिभाषिक शब्द :**

| | | |
|---|---|---|
| प्रवृत्तिमार्ग | : | गृहस्थ जीवन की स्वीकृति का मार्ग |
| निवृत्तिमार्ग | : | गृहस्थ जीवन को अस्वीकार करने वाला मार्ग |
| दिगंबर | : | जैन धर्म का वह संप्रदाय जो वस्त्रहीन जीवनचर्या स्वीकार करता है |
| श्वेतांबर | : | श्वेत वस्त्र पहनने वाला जैन संप्रदाय |

**शब्द निधि –**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अलक्तक | : | आलता | अवलंबित | : | आधारित |
| बाघंबर | : | बाघ के चर्म का वस्त्र | निस्सीम | : | जिसकी सीमा न हो |
| दीपित | : | चमकता हुआ | परवशता | : | दूसरे के वश में होना |
| त्रिपुंड | : | तीन आड़ी रेखाओं वाला तिलक | आयुष्मान | : | आयु वाला |
| वृंत | : | डाली, फुनगी | ईषत् | : | कुछ, आंशिक, थोड़ा |
| तंतुवाय | : | बुनकर | अहेर, आखेट | : | शिकार |
| वामांग | : | बायाँ अंग | स्फुलिंग | : | चिनगारी |
| ग्रीवा | : | गर्दन | यति | : | तपस्वी |
| वक्षोदेश | : | छाती का भाग | क्लांति | : | थकान |
| मंदार-हार | : | मंदार फूल का हार | प्रच्छन्न | : | छिपा हुआ |
| समीरण | : | हवा | भीरुता | : | भयशीलता |
| वारि | : | जल | अध्यवसाय | : | उत्साहपूर्ण परिश्रम |
| आतप | : | धूप | याचना | : | माँग |

# सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 7 मार्च 1911 । |
| निधन | : | 4 अप्रैल 1987 । |
| जन्म-स्थान | : | कसेया, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश । |
| मूल निवास | : | कर्तारपुर, पंजाब । |
| माता-पिता | : | व्यंती देवी एवं डॉ० हीरानंद शास्त्री ( प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ता ) |
| शिक्षा | : | प्रारंभिक चार साल लखनऊ में घर पर । मैट्रिक 1925 में, पंजाब विश्वविद्यालय से । इंटर 1927 में मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज से । बी० एससी० 1929 फोरमन कॉलेज, लाहौर, पंजाब ( वर्तमान पाकिस्तान ); एम० ए० ( अंग्रेजी, पूर्वार्ध ), लाहौर से । क्रांतिकारी आंदोलन में गिरफ्तार हो जाने से आगे पढ़ाई रुक गई । |
| भाषा-ज्ञान | : | संस्कृत, अंग्रेजी, हिंदी के अतिरिक्त फारसी, तमिल आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान था । |
| व्यक्तित्व एवं स्वभाव | : | सुंदर, लंबा, गठीला शरीर । सुरुचि, सुव्यवस्था एवं अनुशासनप्रियता । एकांतप्रिय अंतर्मुखी स्वभाव । गंभीर एवं चिंतनशील, मितभाषी । अपने मौन एवं मितभाषण के लिए प्रसिद्ध । पिताजी का तबादला होते रहने के कारण लखनऊ, कश्मीर, लाहौर, पटना, मद्रास आदि स्थानों पर उनके साथ रहने और परिभ्रमण का संस्कार बचपन में ही मिला । |
| अभिरुचि | : | बागवानी, पर्यटन, अध्ययन आदि के अलावा दर्जनों प्रकार के पेशेवर कार्यों में दक्षता । फोटोग्राफी, हस्तकला, शिल्प आदि में प्रवीणता । यूरोप, एशिया, अमेरिका सहित कई देशों की साहित्यिक यात्राएँ । |
| सम्मान एवं पुरस्कार | : | साहित्य अकादमी, भारतीय ज्ञानपीठ, स्रुगा ( युगोस्लाविया ) का अंतरराष्ट्रीय स्वर्णमाल आदि पुरस्कार । देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों में 'विजिटिंग प्रोफेसर' के रूप में आमंत्रित । |
| पत्रकारिता | : | सैनिक ( आगरा ), विशाल भारत ( कोलकाता ), प्रतीक ( प्रयाग ), दिनमान ( दिल्ली ), नया प्रतीक ( दिल्ली ), नवभारत टाइम्स ( नई दिल्ली ); थॉट, वाक्, एवरीमैंस ( अंग्रेजी में संपादन ) । |
| कृतियाँ | : | दस वर्ष की अवस्था में कविता लिखनी शुरू की । लेखन हिंदी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं में । बचपन में खेलने के लिए 'इंद्रसभा' नामक नाटक लिखा । घर में एक हस्तलिखित पत्रिका 'आनंदबंधु' निकालते थे । 1924-25 में अंग्रेजी में एक उपन्यास लिखा था । 1924 में पहली कहानी इलाहाबाद की स्काउट पत्रिका 'सेवा' में प्रकाशित, 1930 के बाद नियमित लेखन । विपथगा, जयदोल, ये तेरे प्रतिरूप, छोड़ा हुआ रास्ता, लौटती पगडंडियाँ आदि ( कहानी संकलन ) । शेखर : एक जीवनी ( प्रथम भाग 1941, द्वितीय भाग 1944 ), नदी के द्वीप ( 1952 ), अपने-अपने अजनबी ( 1961 ) – सभी उपन्यास । उत्तर प्रियदर्शी ( 1967 ) – नाटक । भग्नदूत, चिंता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, आँगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार, सदानीरा, ऐसा कोई घर आपने देखा है आदि ( कविता संकलन ) । अरे यायावर रहेगा याद ( 1953 ), एक बूँद सहसा उछली ( 1961 ) – यात्रा साहित्य । त्रिशंकु, आत्मनेपद, आलवाल, अद्यतन, भवंती, अंतरा, शाश्वती, संवत्सर आदि ( सभी निबंध ) । तार सप्तक ( 1943 ), दूसरा सप्तक ( 1951 ), तीसरा सप्तक ( 1959 ), चौथा सप्तक ( 1978 ), पुष्करिणी, रूपांबरा, नेहरू अभिनंदन ग्रंथ आदि ( सभी संपादित ग्रंथ ) । शरतचंद्र के श्रीकांत, जैनेंद्र कुमार के त्यागपत्र तथा अपने उपन्यास अपने-अपने अजनबी सहित अनेक कृतियों का अंग्रेजी अनुवाद । रवींद्रनाथ ठाकुर के गोरा का हिंदी अनुवाद । |

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय हिंदी के आधुनिक साहित्य में एक प्रमुख प्रतिभा थे । वे आधुनिक हिंदी साहित्य के एक प्रमुख कवि, कथाकार, विचारक एवं पत्रकार थे । साहित्य की अनेक विधाओं–यात्रा साहित्य, आलोचना, डायरी आदि में भी उनका अवदान महत्त्वपूर्ण है । उन्होंने विशाल साहित्य की रचना की है जिसमें वस्तु, भाव, भाषा, शिल्प आदि के धरातल पर प्रयोगों और नवाचारों की बहुलता है । साहित्य में लेखन के अतिरिक्त संपादन, निर्देशन, अभिप्रेरण, परिसंवाद, भाषण आदि के द्वारा भी उन्होंने अपनी सर्जनात्मकता को विस्तार दिया है । उनमें युग का प्रतिनिधित्व करनेवाली, सांगठनिक क्षमताओं से युक्त नेतृत्वकारी प्रतिभा और रचनात्मक कर्मठता थी । अज्ञेय का जीवन और साहित्य, जो घनिष्ठ रूप से परस्पर संपृक्त हैं, विशेष व्यक्तित्व से संपन्न एवं वैविध्यपूर्ण हैं । स्वाधीनता आंदोलन में उग्र और विद्रोही विचारधारा वाले एक क्रांतिकारी के रूप में उनकी भूमिका रही । कारावास और जेल यातनाएँ भी उन्हें सहनी पड़ीं । द्वितीय महायुद्ध के दौरान उन्होंने सेना में नौकरी की थी । वे आजीवन सैलानी रहे, रोमांचक यात्राएँ करना उनका स्वभाव और शौक था । हिंदी में शायद ही ऐसा कोई लेखक-कलाकार हो जिसकी अज्ञेय की तरह परस्पर असंबद्ध बीसों तरह के कार्यों में पेशेवर दक्षता हो । प्रतिभा, रुचि और शौक की अपरिमित विविधता के कारण उनके व्यक्तित्व में विशेष प्रकार का विस्तार, गहराई, विविधता और एकान्विति संघटित हुई और वे विलक्षण लेखक बन गए ।

कथा साहित्य में प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद के बाद आए महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारी परिवर्तन में अज्ञेय की भूमिका निर्णायक रही है । कहानी को महज किस्सा, आख्यान और इतिवृत्त के धरातल से ऊपर उठाकर एक कसे हुए, अंतर्गुंफित कलात्मक रूप के तौर पर उभारने वालों में अज्ञेय अग्रणी रहे हैं । हिंदी कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक गहराई लाने का श्रेय जैनेंद्र कुमार और अज्ञेय को दिया जाता है । इसके साथ ही बौद्धिकता, नैतिक-वैचारिक सजगता और कलात्मकता भी अज्ञेय ने हिंदी कथा में जोड़ी । अज्ञेय ने हिंदी कहानी के भावी विकास का प्रारूप अपनी कहानियों द्वारा प्रस्तुत किया । बिना अज्ञेय के 'नई कहानी' की कल्पना नहीं की जा सकती ।

अज्ञेय के द्वारा 'गैंग्रीन' शीर्षक से 1934 में लिखी गई कहानी यहाँ प्रस्तुत है । बाद में इसका शीर्षक लेखक के द्वारा 'रोज' कर दिया गया । यह प्रेमचंद के बाद की श्रेष्ठ हिंदी कहानियों में परिगणित होती है । वातावरण, परिस्थिति और उसके प्रभाव में ढलते हुए एक गृहिणी के चरित्र का मनोवैज्ञानिक उद्‌घाटन अत्यंत कलात्मक रीति से लेखक यहाँ प्रस्तुत करता है । डॉक्टर पति के काम पर चले जाने के बाद का सारा समय मालती को घर में एकाकी काटना होता है । उसका दुर्बल, बीमार और चिड़चिड़ा पुत्र हमेशा सोता रहता है या रोता रहता है । मालती उसकी देखभाल करती हुई सुबह से रात ग्यारह बजे तक घर के कार्यों में अपने को व्यस्त रखती है । उसका जीवन ऊब और उदासी के बीच यंत्रवत चल रहा है । किसी तरह के मनोविनोद, उल्लास उसके जीवन में नहीं रह गए हैं । जैसे वह अपने जीवन का भार ढोने में ही घुल रही हो । प्रसंगवश मध्यवर्गीय भारतीय समाज में घरेलू स्त्री के जीवन और मनोदशा पर लेखक अपनी सहानुभूतिपूर्ण मानवीय दृष्टि केंद्रित करता है । कहानी के गर्भ से अनेक सामाजिक प्रश्न विचारोत्तेजक रूप में पैदा होते हैं ।

◆ ◆ ◆

**" रोज अज्ञेय की सर्वाधिक चर्चित कहानी है क्योंकि इसमें 'संबंधों' की वास्तविकता को एकांत वैयक्तिक अनुभूतियों से अलग ले जाकर सामाजिक संदर्भ में देखा गया है । मध्यवर्ग की पारिवारिक एकरसता को जितनी मार्मिकता से कहानी व्यक्त कर सकी है वह उस युग की कहानियों में विरल है । "**

**–विजय मोहन सिंह**

# रोज

दोपहर में उस सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही हो, उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य, अस्पृश्य, किंतु फिर भी बोझल और प्रकंपमय घना सा सन्नाटा फैल रहा था .....

मेरी आहट सुनते ही मालती बाहर निकली । मुझे देखकर, पहचानकर उसकी मुरझाई हुई मुख-मुद्रा तनिक से मीठे विस्मय से जागी सी और फिर पूर्ववत हो गई । उसने कहा, ''आ जाओ ।'' और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए भीतर की ओर चली । मैं भी उसके पीछे हो लिया ।

भीतर पहुँचकर मैंने पूछा, ''वे यहाँ नहीं हैं ?''

''अभी आए नहीं, दफ्तर में हैं । थोड़ी देर में आ जाएँगे । कोई डेढ़-दो बजे आया करते हैं ।''

''कबके गए हुए हैं ?''

''सवेरे उठते ही चले जाते हैं ।''

मैं 'हूँ' कहकर पूछने को हुआ, 'और तुम इतनी देर क्या करती हो ?' पर फिर सोचा, आते ही एकाएक प्रश्न ठीक नहीं है । मैं कमरे के चारों ओर देखने लगा ।

मालती एक पंखा उठा लाई और मुझे हवा करने लगी । मैंने आपत्ति करते हुए कहा, ''नहीं, मुझे नहीं चाहिए ।'' पर वह नहीं मानी, बोली, ''वाह ! चाहिए कैसे नहीं ? इतनी धूप में तो आए हो ! यहाँ तो.......''

मैंने कहा, ''अच्छा, लाओ मुझे दे दो ।''

वह शायद 'ना' करनेवाली थी, पर तभी दूसरे कमरे से शिशु के रोने की आवाज सुनकर उसने चुपचाप पंखा मुझे दे दिया और घुटने पर हाथ टेक कर एक थकी हुई 'हुँह' करके उठी और भीतर चली गई ।

मैं उसके जाते हुए, दुबले शरीर को देख कर सोचता रहा–यह क्या है ... यह कैसी छाया सी इस घर में छाई हुई है ?.....

मालती मेरी दूर के रिश्ते की बहन है, किंतु उसे सखी कहना ही उचित है, क्योंकि हमारा परस्पर संबंध सख्य का ही रहा है । हम बचपन में इकट्ठे खेले हैं, इकट्ठे लड़े और पिटे हैं, और हमारी पढ़ाई

भी बहुत सी इकट्ठे ही हुई थी । हमारे व्यवहार में सदा सख्य की स्वेच्छा और स्वच्छंदता रही है, वह कभी भ्रातृत्व के, या बड़े छोटेपन के बंधनों में नहीं घिरा....

मैं आज कोई चार वर्ष बाद उसे देखने आया हूँ । जब मैंने उसे इससे पूर्व देखा था, तब वह लड़की ही थी, अब वह विवाहिता है, एक बच्चे की माँ भी है । इससे कोई परिवर्तन उसमें आया होगा और यदि आया होगा तो क्या, यह मैंने अभी तक सोचा नहीं था, किंतु अब उसकी पीठ की ओर देखता हुआ मैं सोच रहा था, यह कैसी छाया इस घर पर छाई हुई है.... और विशेषतया मालती पर.....

मालती बच्चे को लेकर लौट आई और फिर मुझसे कुछ दूर नीचे बिछी हुई दरी पर बैठ गई । मैंने अपनी कुरसी घुमाकर कुछ उसकी ओर उन्मुख होकर पूछा, ''इसका नाम क्या है ?''

मालती ने बच्चे की ओर देखते हुए उत्तर दिया, ''नाम तो कोई निश्चित नहीं किया, वैसे टिटी कहते हैं ।''

मैंने उसे बुलाया, ''टिटी, टिटी आ जा,'' पर वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी ओर देखता हुआ अपनी माँ से चिपट गया, और रुआँसा सा होकर कहने लगा, ''उहुँ-उहुँ-उहुँ-ऊँ...''

मालती ने फिर उसकी ओर एक नजर देखा, और फिर आँगन की ओर देखने लगी...

काफी देर मौन रहा । थोड़ी देर तक तो वह मौन आकस्मिक ही था, जिसमें मैं प्रतीक्षा में था कि मालती कुछ पूछे, किंतु उसके बाद एकाएक मुझे ध्यान हुआ, मालती ने कोई बात ही नहीं की... यह भी नहीं पूछा कि मैं कैसा हूँ, कैसे आया हूँ.... चुप बैठी है, क्या विवाह के दो वर्ष में ही वह बीते दिन भूल गई ? या अब मुझे दूर–इस विशेष अंतर पर–रखना चाहती है ? क्योंकि वह निर्बाध स्वच्छंदता अब तो नहीं हो सकती.... पर फिर भी, ऐसा मौन, जैसा अजनबी से भी नहीं होना चाहिए....

मैंने कुछ खिन्न सा होकर, दूसरी ओर देखते हुए कहा, ''जान पड़ता है, तुम्हें मेरे आने से विशेष प्रसन्नता नहीं हुई–''

उसने एकाएक चौंककर कहा, ''हूँ ?''

यह 'हूँ' प्रश्नसूचक था, किंतु इसलिए नहीं कि मालती ने मेरी बात सुनी नहीं थी, केवल विस्मय के कारण । इसलिए मैंने अपनी बात दुहराई नहीं, चुप बैठा रहा । मालती कुछ बोली ही नहीं, तब थोड़ी देर बाद मैंने उसकी ओर देखा । वह मेरी ओर देख रही थी, किंतु मेरे उधर उन्मुख होते ही उसने आँखें नीची कर लीं । फिर भी मैंने देखा, उन आँखों में विचित्र सा भाव था, मानो मालती के भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रहा हो, किसी बीती हुई बात को याद करने की, किसी बिखरे हुए वायुमंडल को पुनः जगाकर गतिमान करने की, किसी टूटे हुए व्यवहार-तंतु को पुनर्जीवित करने की, और चेष्टा में सफल न हो रहा हो...वैसे जैसे बहुत देर से प्रयोग में न लाए हुए अंग को व्यक्ति एकाएक उठाने लगे और पाए कि वह उठता ही नहीं है, चिर-विस्मृति में मानो मर गया है, उतने क्षीण बल से (यद्यपि वह सारा प्राप्य बल है) उठ नहीं सकता....मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो किसी जीवित प्राणी के गले में किसी मृत जंतु का तौक डाल दिया गया हो, वह उसे उतारकर फेंकना चाहे, पर उतार न पाए.....

तभी किसी ने किवाड़ खटखटाए । मैंने मालती की ओर देखा, पर वह हिली नहीं । जब किवाड़

दूसरी बार खटखटाए गए, तब शिशु को अलग करके उठी और किवाड़ खोलने लगी ।

वे, यानी मालती के पति आए । मैंने उन्हें पहली बार देखा था, यद्यपि फोटो से उन्हें पहचानता था । परिचय हुआ । मालती खाना तैयार करने आँगन में चली गई, और हम दोनों भीतर बैठकर बातचीत करने लगे, उनकी नौकरी के बारे में, उनके जीवन के बारे में, उस स्थान के बारे में, और ऐसे अन्य विषयों के बारे में जो पहले परिचय पर उठा करते हैं, एक तरह का स्वरक्षात्मक कवच बनकर......

मालती के पति का नाम है महेश्वर । वह एक पहाड़ी गाँव में सरकारी डिस्पेंसरी के डॉक्टर हैं, उसी हैसियत से इन क्वार्टरों में रहते हैं । प्रातःकाल सात बजे डिस्पेंसरी चले जाते हैं, और डेढ़ या दो बजे लौटते हैं, उसके बाद दोपहर भर छुट्टी रहती है, केवल शाम को एक-दो घंटे फिर चक्कर लगाने के लिए जाते हैं, डिस्पेंसरी के साथ छोटे से अस्पताल में रोगियों को देखने और अन्य जरूरी हिदायतें करने....उनका जीवन भी बिलकुल एक निर्दिष्ट ढर्रे पर चलता है, नित्य वही काम, उसी प्रकार के मरीज, वही हिदायतें, वही नुस्खे, वही दवाइयाँ । वह स्वयं उकताए हुए हैं और इसलिए और साथ ही इस भयंकर गरमी के कारण वह अपने फुरसत के समय में भी सुस्त ही रहते हैं....

मालती हम दोनों के लिए खाना ले आई । मैंने पूछा, ''तुम नहीं खाओगी ? या खा चुकीं ?''

महेश्वर बोले, कुछ हँसकर, ''वह पीछे खाया करती है....''

पति ढाई बजे खाना खाने आते हैं, इसलिए पत्नी तीन बजे तक भूखी बैठी रहेगी !

महेश्वर खाना आरंभ करते हुए मेरी ओर देखकर बोले, ''आपको तो खाने का मजा ही क्या आएगा, ऐसे बेवक्त खा रहे हैं ?''

मैंने उत्तर दिया, ''वाह ! देर से खाने पर तो और भी अच्छा लगता है, भूख बढ़ी हुई होती है, पर शायद मालती बहन को कष्ट होगा ।''

मालती टोककर बोली, 'ऊँहूँ, मेरे लिए तो यह नई बात नहीं है.....रोज ही ऐसा होता है......''

मालती बच्चे को गोद में लिए हुए थी । बच्चा रो रहा था, पर उसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं दे रहा था ।

मैंने कहा, ''यह रोता क्यों है ?''

मालती बोली, ''हो ही गया है चिड़चिड़ा सा, हमेशा ही ऐसा रहता है ।'' फिर बच्चे को डाँट कर कहा, ''चुप कर ।'' जिससे वह और भी रोने लगा । मालती ने भूमि पर बैठा दिया और बोली, 'अच्छा ले, रो ले ।'' और रोटी लेने आँगन की ओर चली गई ।

जब हमने भोजन समाप्त किया तब तीन बजने वाले थे, महेश्वर ने बताया कि उन्हें आज जल्दी अस्पताल जाना है, वहाँ एक-दो चिंताजनक केस आए हुए हैं, जिनका ऑपरेशन करना पड़ेगा.....दो की शायद टाँग काटनी पड़े, गैंग्रीन हो गया है......थोड़ी देर में वह चले गए । मालती किवाड़ बंद कर आई और मेरे पास बैठने ही लगी थी कि मैंने कहा, ''अब खाना तो खा लो, मैं उतनी देर टिटी से खेलता हूँ ।''

वह बोली, ''खा लूँगी, मेरे खाने की कौन बात है,'' किंतु चली गई । मैं टिटी को हाथ में लेकर

झुलाने लगा, जिससे वह कुछ देर के लिए शांत हो गया ।

दूर....शायद अस्पताल में ही, तीन खड़के । एकाएक मैं चौंका, मैंने सुना, मालती वहीं आँगन में बैठी अपने आप ही एक लंबी सी थकी हुई साँस के साथ कह रही है, "तीन बज गए...." मानो बड़ी तपस्या के बाद कोई कार्य संपन्न हो गया हो ।

थोड़ी ही देर में मालती फिर आ गई, मैंने पूछा, "तुम्हारे लिए कुछ बचा भी था ? सब कुछ तो....."

"बहुत था ।"

"हाँ, बहुत था, भाजी तो सारी मैं ही खा गया था, वहाँ बचा कुछ होगा नहीं, यों ही रोब तो न जमाओ कि बहुत था ।" मैंने हँस कर कहा ।

मालती मानो किसी और विषय की बात कहती हुई बोली, "यहाँ सब्जी-वब्जी तो कुछ होती ही नहीं; कोई आता-जाता है तो नीचे से मँगा लेते हैं, मुझे आए पंद्रह दिन हुए हैं, जो सब्जी साथ लाए थे वही अभी बरती जा रही है...."

मैंने पूछा, "नौकर कोई नहीं है ?"

"कोई ठीक मिला नहीं, शायद दो-एक दिन में हो जाए ।"

"बरतन भी तुम्हीं माँजती हो ?"

"और कौन ?" कह कर मालती क्षण भर आँगन में जाकर लौट आई ।

मैंने पूछा, "कहाँ गई थी ?"

"आज पानी ही नहीं है, बरतन कैसे मँजेंगे ?

"क्यों पानी को क्या हुआ ?"

"रोज ही होता है....कभी वक्त पर तो आता नहीं, आज शाम को सात बजे आएगा, तब बरतन मँजेंगे ।"

"चलो, तुम्हें सात बजे तक तो छुट्टी हुई," कहते हुए मैं मन ही मन सोचने लगा, अब इसे रात के ग्यारह बजे तक काम करना पड़ेगा, छुट्टी क्या खाक हुई ?

यही उसने कहा । मेरे पास कोई उत्तर नहीं था, पर मेरी सहायता टिटी ने की, एकाएक फिर रोने लगा और मालती के पास जाने की चेष्टा करने लगा । मैंने उसे दे दिया ।

थोड़ी देर फिर मौन रहा, मैंने जेब से अपनी नोटबुक निकाली और पिछले दिनों के लिखे हुए नोट देखने लगा, तब मालती को याद आया कि उसने मेरे आने का कारण पूछा नहीं, और बोली, "यहाँ आए कैसे ?"

मैंने कहा, "अच्छा, अब याद आया ? तुमसे मिलने आया था, और क्या करने ?"

"तो दो-एक दिन रहोगे न ?"

"नहीं कल चला जाऊँगा ।"

मालती कुछ नहीं बोली, कुछ खिन्न सी हो गई । मैं फिर नोटबुक की तरफ देखने लगा ।

थोड़ी देर बाद मुझे ध्यान हुआ, मैं आया तो हूँ मालती से मिलने, किंतु यहाँ वह बात करने को बैठी है और मैं पढ़ रहा हूँ, पर बात भी क्या की जाए ? मुझे ऐसा लग रहा था कि इस घर पर जो छाया घिरी हुई है, वह अज्ञात रहकर भी मानो मुझे भी वश में कर रही है, मैं भी वैसा ही नीरस निर्जीव सा हो रहा हूँ, जैसे–हाँ, जैसे.......यह घर, जैसे मालती ।

मैंने पूछा, "तुम कुछ पढ़ती-लिखती नहीं ?" मैं चारों ओर देखने लगा कि कहीं किताबें दीख पड़ें ।

"यहाँ !" कहकर मालती थोड़ा सा हँस दी । वह हँसी कह रही थी, 'यहाँ पढ़ने को है क्या ?"

मैंने कहा, "अच्छा, मैं वापस जाकर जरूर कुछ पुस्तकें भेजूँगा..." और वार्तालाप फिर समाप्त हो गया...

थोड़ी देर बाद मालती ने फिर पूछा, "आए कैसे हो, लारी में ?"

"पैदल ।"

"इतनी दूर ? बड़ी हिम्मत की ।"

"आखिर तुमसे मिलने आया हूँ ।"

"ऐसे ही आए हो ?"

"नहीं, कुली पीछे आ रहा है, सामान लेकर । मैंने सोचा, बिस्तरा ले चलूँ ।"

"अच्छा किया, यहाँ तो बस....." कहकर मालती चुप रह गई, फिर बोली, "तब तुम थके होगे, लेट जाओ ।"

"नहीं बिलकुल नहीं थका ।"

"रहने भी दो, थके नहीं, भला थके हैं ?"

"और तुम क्या करोगी ?"

"मैं बरतन माँज रखती हूँ ?"

मैंने कहा, "वाह !" क्योंकि और कोई बात मुझे सूझी नहीं...

थोड़ी देर में मालती उठी और चली गई, टिटी को साथ लेकर । तब मैं भी लेट गया और छत की ओर देखने लगा...मेरे विचारों के साथ आँगन से आती हुई बरतनों के घिसने की खन-खन ध्वनि मिलकर एक विचित्र एकस्वर उत्पन्न करने लगी, जिसके कारण मेरे अंग धीरे-धीरे ढीले पड़ने लगे, मैं ऊँघने लगा....

एकाएक वह एकस्वर टूट गया–मौन हो गया । इससे मेरी तंद्रा भी टूटी, मैं उस मौन में सुनने लगा.....

चार खड़क रहे थे और इसी का पहला घंटा सुनकर मालती रुक गई थी....

वही तीन बजे वाली बात मैंने फिर देखी, अबकी बार और उग्र रूप में । मैंने सुना, मालती एक बिलकुल अनैच्छिक, अनुभूतिविहीन, नीरस, यंत्रवत्–वह भी थके हुए यंत्र के-से स्वर में कह रही है, ''चार बज गए'' मानो इस अनैच्छिक समय गिनने-गिनने में ही उसका मशीन तुल्य जीवन बीतता हो, वैसे ही, जैसे मोटर का स्पीडोमीटर यंत्रवत् फासला नापता जाता है, और यंत्रवत् विश्रांत स्वर में कहता है (किससे ?) कि मैंने अपने अमित शून्यपथ का इतना अंश तय कर लिया....न जाने कब, कैसे मुझे नींद आ गई !

तब छह कभी के बज चुके थे, जब किसी के आने की आहट से मेरी नींद खुली और मैंने देखा कि महेश्वर लौट आए हैं, और उनके साथ ही बिस्तर लिए हुए मेरा कुली । मैं मुँह धोने को पानी माँगने को ही था कि मुझे याद आया, पानी नहीं होगा । मैंने हाथों से मुँह पोंछते-पोंछते महेश्वर से पूछा, ''आपने बड़ी देर की ?''

उन्होंने किंचित ग्लानि भरे स्वर में कहा, ''हाँ, आज वह गैंग्रीन का ऑपरेशन करना ही पड़ा, एक कर आया हूँ, दूसरे को एंबुलेंस में बड़े अस्पताल भिजवा दिया है ।''

मैंने पूछा, ''गैंग्रीन कैसे हो गया ?''

''एक काँटा चुभा था, उसी से हो गया, बड़े लापरवाह लोग होते हैं यहाँ के....''

मैंने पूछा, ''यहाँ आपको केस अच्छे मिल जाते हैं ? आय के लिहाज से नहीं, डॉक्टरी के अभ्यास के लिए ?''

बोले, ''हाँ मिल ही जाते हैं, यही गैंग्रीन, हर दूसरे-चौथे दिन एक केस आ जाता है, नीचे बड़े अस्पतालों में भी....''

मालती आँगन से ही सुन रही थी, अब आ गई, बोली, ''हाँ केस बनाते देर क्या लगती है ? काँटा चुभा था, इस पर टाँग काटनी पड़े, यह भी कोई डॉक्टरी है ? हर दूसरे दिन किसी की बाँह काट आते हैं, इसी का नाम है अच्छा अभ्यास !''

महेश्वर हँसे, बोले, ''न काटें तो उसकी जान गँवाएँ ?''

''हाँ पहले तो दुनिया में काँटे ही नहीं होते होंगे ? आज तक तो सुना नहीं था कि काँटों के चुभने से मर जाते हैं....''

महेश्वर ने उत्तर नहीं दिया, मुस्करा दिए । मालती मेरी ओर देखकर बोली ''ऐसे ही होते हैं डॉक्टर, सरकारी अस्पताल है न, क्या परवाह है । मैं तो रोज ऐसी बातें सुनती हूँ ! अब कोई मर-मुर जाए तो ख्याल ही नहीं होता । पहले तो रात-रात भर नींद नहीं आया करती थी ।''

तभी आँगन में खुले हुए नल ने कहा - टिप्-टिप्-टिप्-टिप्-टिप्-टिप्......

मालती ने कहा, ''पानी !'' और उठ कर चली गई । खनखनाहट से हमने जाना, बरतन धोए जाने लगे हैं......

टिटी महेश्वर की टाँगों के सहारे खड़ा मेरी ओर देख रहा था, अब एकाएक उन्हें छोड़कर मालती

की ओर खिसकता हुआ चला । महेश्वर ने कहा, ''उधर मत जा !'' और उसे गोद में उठा लिया, वह मचलने लगा और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा ।

महेश्वर बोले, ''अब रो-रो कर सो जाएगा, तभी घर में चैन होगी ।''

मैंने पूछा, ''आप लोग भीतर ही सोते हैं ? गरमी तो बहुत होती है ?''

''होने को तो मच्छर भी बहुत होते हैं, पर यह लोहे के पलंग उठाकर बाहर कौन ले जाए ? अब के नीचे जाएँगे तो चारपाइयाँ ले आएँगे ।'' फिर कुछ रुककर बोले, ''आज तो बाहर ही सोएँगे । आपके आने का इतना लाभ ही होगा ।''

टिटी अभी तक रोता ही जा रहा था । महेश्वर ने उसे एक पलंग पर बैठा दिया, और पलंग बाहर खींचने लगे, मैंने कहा, ''मैं मदद करता हूँ'', और दूसरी ओर से पलंग उठाकर निकलवा दिए ।

अब हम तीनों–महेश्वर, टिटी और मैं–दो पलंगों पर बैठ गए और वार्तालाप के लिए उपयुक्त विषय न पाकर उस कमी को छुपाने के लिए टिटी से खेलने लगे । बाहर आकर वह कुछ चुप हो गया था, किंतु बीच-बीच में जैसे एकाएक कोई भूला हुआ कर्त्तव्य याद करके रो उठता था, और फिर एकदम चुप हो जाता था....और कभी-कभी हम हँस पड़ते थे, या महेश्वर उसके बारे में कुछ बात कह देते थे ।

मालती बरतन धो चुकी थी । जब वह उन्हें लेकर आँगन के एक ओर रसोई के छप्पर की ओर चली, तब महेश्वर ने कहा, 'थोड़े से आम लाया हूँ, वह भी धो लेना ।''

''कहाँ हैं ?''

''अँगीठी पर रखे हैं, कागज में लिपटे हुए ।''

मालती ने भीतर जाकर आम उठाए और अपने आँचल में डाल लिए । जिस कागज में वे लिपटे हुए थे, वह किसी पुराने अखबार का टुकड़ा था । मालती चलती-चलती संध्या के उस क्षीण प्रकाश में उसी को पढ़ती जा रही थी....वह नल के पास जाकर खड़ी उसे पढ़ती रही । जब दोनों ओर पढ़ चुकी, तब एक लंबी साँस लेकर उसे फेंककर आम धोने लगी ।

मुझे एकाएक याद आया.....बहुत दिनों की बात थी....जब हम अभी स्कूल में भरती हुए ही थे । जब हमारा सबसे बड़ा सुख, सबसे बड़ी विजय थी हाजिरी हो चुकने के बाद चोरी से क्लास से निकल भागना और स्कूल से कुछ दूरी पर आम के बगीचे में पेड़ों पर चढ़कर कच्ची अमियाँ तोड़-तोड़ खाना । मुझे याद आता....कभी जब मैं भाग आता और मालती नहीं आ पाती थी तब मैं भी खिन्न-मन लौट आया करता था ।

मालती कुछ नहीं पढ़ती थी, उसके माता-पिता तंग थे, एक दिन उसके पिता ने उसे एक पुस्तक लाकर दी और कहा कि इसके बीस पेज रोज पढ़ा करो, हफ्ते भर बाद मैं देखूँ कि इसे समाप्त कर चुकी हो, नहीं तो मार-मार कर चमड़ी उधेड़ दूँगा : मालती ने चुपचाप किताब ले ली, पर क्या उसने पढ़ी ? वह नित्य ही उसके दस पन्ने, बीस पेज, फाड़कर फेंक देती, अपने खेल में किसी भाँति फर्क न पड़ने देती । जब आठवें दिन उसके पिता ने पूछा, ''किताब समाप्त कर ली ?'' तो उत्तर दिया, ''हाँ कर ली,'' पिता ने कहा, ''लाओ मैं प्रश्न पूछूँगा,'' तो चुप खड़ी रही । पिता ने फिर कहा, तो उद्धत स्वर में बोली,

''किताब मैंने फाड़कर फेंक दी है, मैं नहीं पढ़ूँगी ।''

उसके बाद वह बहुत पिटी, पर वह अलग बात है । इस समय मैं यही सोच रहा था कि वही उद्धत और चंचल मालती आज कितनी सीधी हो गई है, कितनी शांत, और एक अखबार के टुकड़े को तरसती है...यह क्या, यह.....

तभी महेश्वर ने पूछा, ''रोटी कब बनेगी ?''

''बस अभी बनाती हूँ ।''

पर अबकी बार जब मालती रसोई की ओर चली, तब टिटी की कर्त्तव्यभावना बहुत विस्तीर्ण हो गई, वह मालती की ओर हाथ बढ़ाकर रोने लगा और नहीं माना, मालती उसे गोद में लेकर चली गई, रसोई में बैठकर एक हाथ से उसे थपकने और दूसरे से कई एक छोटे-छोटे डिब्बे उठाकर अपने सामने रखने लगी......

और हम दोनों चुपचाप रात्रि की, और भोजन की, और एक दूसरे से कुछ कहने की, और न जाने किस-किस न्यूनता की पूर्ति की प्रतीक्षा करने लगे ।

हम भोजन कर चुके थे और बिस्तरों पर लेट गए थे और टिटी सो गया था । मालती पलंग के एक ओर मोमजामा बिछाकर उसे उसपर लिटा गई थी । वह सो गया था, पर नींद में कभी-कभी चौंक उठता था । एक बार तो उठकर बैठ भी गया था, पर तुरंत ही लेट गया ।

मैंने महेश्वर से पूछा–''आप तो थके होंगे, सो जाइए ।''

वह बोले, ''थके तो आप अधिक होंगे....अठारह मील पैदल चलकर आए हैं ।'' किंतु उनके स्वर ने मानो जोड़ दिया...''थका तो मैं भी हूँ ।''

मैं चुप रहा, थोड़ी देर में किसी अपर संज्ञा ने मुझे बताया, वह ऊँघ रहे हैं । तब लगभग साढ़े दस बजे थे, मालती भोजन कर रही थी ।

मैं थोड़ी देर मालती की ओर देखता रहा, वह किसी विचार में–यद्यपि बहुत गहरे विचार में नहीं, लीन हुई धीरे-धीरे खाना खा रही थी, फिर मैं इधर-उधर खिसककर, पर आराम से होकर, आकाश की ओर देखने लगा ।

पूर्णिमा थी, आकाश अनभ्र था ।

मैंने देखा, उस सरकारी क्वार्टर की, दिन में अत्यंत शुष्क और नीरस लगने वाली स्लेट की छत भी चाँदनी में चमक रही है, अत्यंत शीतलता और स्निग्धता से छलक रही है, मानो चंद्रिका उसपर से बहती हुई आ रही हो, झर रही हो.....

मैंने देखा, पवन में चीड़ के वृक्ष...गरमी से सूखकर मटमैले हुए चीड़ के वृक्ष धीरे-धीरे गा रहे हों...कोई राग जो कोमल है, किंतु करुण नहीं, अशांतिमय है, किंतु उद्वेगमय नहीं....

मैंने देखा, प्रकाश से धुँधले नीले आकाश के पट पर जो चमगादड़ नीरव उड़ान से चक्कर काट रहे हैं, वे भी सुंदर दीखते हैं......

मैंने देखा, ....दिन भर की तपन, अशांति, थकान, दाह, पहाड़ों में से भाप से उठकर वातावरण में खोए जा रहे हैं, जिसे ग्रहण करने के लिए पर्वत-शिशुओं ने अपनी चीड़ वृक्षरूपी भुजाएँ आकाश की ओर बढ़ा रखी हैं.....

पर यह सब मैंने ही देखा, अकेले मैंने...महेश्वर ऊँघ रहे थे और मालती उस समय भोजन से निवृत्त होकर दही जमाने के लिए मिट्टी का बर्तन गरम पानी से धो रही थी, और कह रही थी... ''अभी छुट्टी हुई जाती है ।'' मेरे कहने पर ही कि ''ग्यारह बजने वाले हैं,'' धीरे से सिर हिलाकर बता रही थी कि रोज ही इतने बज जाते हैं...मालती ने वह सब कुछ नहीं देखा, मालती का जीवन अपनी रोज की नियत गति से बहा जा रहा था और एक चंद्रमा की चँद्रिका के लिए, एक संसार के लिए, रुकने को तैयार नहीं था ।

चाँदनी में शिशु कैसा लगता है, इस अलस जिज्ञासा से मैंने टिटी की ओर देखा और वह एकाएक मानो किसी शैशवोचित वामता से भर उठा और खिसककर पलंग से नीचे गिर पड़ा और चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा । महेश्वर ने चौंक कर कहा.... ''क्या हुआ ?'' मैं झपटकर उसे उठाने दौड़ा, मालती रसोई से बाहर निकल आई, मैंने उस 'खट्' शब्द को याद करके धीरे से करुणा भरे स्वर में कहा, ''चोट बहुत लग गई है बेचारे को ।''

यह सब मानो एक ही क्षण में, एक ही क्रिया की गति में हो गया ।

मालती ने रोते हुए शिशु को मुझसे लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा, ''इसके चोटें लगती ही रहती हैं, रोज ही गिर पड़ता है ।''

एक छोटे क्षण भर के लिए मैं स्तब्ध हो गया, फिर एकाएक मेरे मन ने, मेरे समूचे अस्तित्व ने विद्रोह के स्वर में कहा—मेरे मन के भीतर ही, बाहर एक शब्द भी नहीं निकला—''माँ, युवती माँ, यह तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है, जो तुम अपने एकमात्र बच्चे के गिरने पर ऐसी बात कह सकती हो—और यह अभी, जब तुम्हारा सारा जीवन तुम्हारे आगे है !''

और तब एकाएक मैंने जाना कि वह भावना मिथ्या नहीं है, मैंने देखा कि सचमुच उस कुटुंब में कोई गहरी भयंकर छाया घर कर गई है, उनके जीवन के इस पहले ही यौवन में घुन की तरह लग गई है, उसका इतना अभिन्न अंग हो गई है कि वे उसे पहचानते ही नहीं, उसी की परिधि में घिरे हुए चले जा रहे हैं । इतना ही नहीं, मैंने उस छाया को देख भी लिया...

इतनी देर में, पूर्ववत शांति हो गई थी । महेश्वर फिर लेटकर ऊँघ रहे थे । टिटी मालती के लेटे हुए शरीर से चिपक कर चुप हो गया था, यद्यपि कभी एक-आध सिसकी उसके छोटे से शरीर को हिला देती थी । मैं भी अनुभव करने लगा था कि बिस्तर अच्छा सा लग रहा है । मालती चुपचाप आकाश में देख रही थी, किंतु क्या चँद्रिका को या तारों को ?

तभी ग्यारह का घंटा बजा, मैंने अपनी भारी हो रही पलकें उठाकर अकस्मात् किसी अस्पष्ट प्रतीक्षा में मालती की ओर देखा । ग्यारह के पहले घंटे की खड़कन के साथ ही मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे-धीरे बैठने लगी, और घंटा-ध्वनि के कंपन के साथ ही मूक हो जानेवाली आवाज में उसने कहा, ''ग्यारह बज गए.....''

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. मालती के घर का वातावरण आपको कैसा लगा ? अपने शब्दों में लिखिए ।
2. 'दोपहर में उस सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो उस पर किसी शाम की छाया मँडरा रही हो', यह कैसी शाम की छाया है ? वर्णन कीजिए ।
3. लेखक और मालती के संबंध का परिचय पाठ के आधार पर दें ।
4. मालती के पति महेश्वर की कैसी छवि आपके मन में बनती है, कहानी में महेश्वर की उपस्थिति क्या अर्थ रखती है ? अपने विचार दें ।
5. गैंग्रीन क्या है ?
6. कहानी से उन वाक्यों को चुनें जिनमें 'रोज' शब्द का प्रयोग हुआ है ।
7. आशय स्पष्ट करें :-
   'मुझे ऐसा लग रहा था कि इस घर पर जो छाया घिरी हुई है, वह अज्ञात रहकर भी मानो मुझे भी वश में कर रही है, मैं भी वैसा ही नीरस निर्जीव सा हो रहा हूँ, जैसे–हाँ, जैसे.....यह घर, जैसे मालती ।
8. 'तीन बज गए', 'चार बज गए', 'ग्यारह बज गए'; कहानी में घंटे के इन खड़कों के साथ-साथ मालती की उपस्थिति है । घंटा बजने का मालती से क्या संबंध है ?
9. अभिप्राय स्पष्ट करें :-
   (क) मैंने देखा, पवन में चीड़ के वृक्ष ..... गर्मी से सूखकर मटमैले हुए चीड़ के वृक्ष धीरे-धीरे गा रहे हों. ...कोई राग जो कोमल है, किंतु करुण नहीं अशांतिमय है, किंतु उद्वेगमय नहीं....
   (ख) इस समय मैं यही सोच रहा था कि वही उद्धत और चंचल मालती आज कितनी सीधी हो गई है, कितनी शांत, और एक अखबार के टुकड़े को तरसती है.....यह क्या, यह.....
10. कहानी के आधार पर मालती के चरित्र के बारे में अपने शब्दों में लिखिए ।
11. बच्चे से जुड़े प्रसंगों पर ध्यान देते हुए उसके बारे में अपने शब्दों में लिखिए ।

**पाठ के आस-पास**

1. यह कहानी गैंग्रीन शीर्षक से भी प्रसिद्ध है, दोनों शीर्षकों में कौन सा शीर्षक आपको अधिक सार्थक लगता है और क्यों ?
2. अज्ञेय ने हिंदी कहानी के कथ्य और स्वरूप में ऐतिहासिक परिवर्तन लाए । एक कहानीकार के रूप में उनके महत्त्व पर अपने शिक्षक से जानकारी प्राप्त करें ।
3. शेखर : एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी अज्ञेय के उपन्यास हैं; इनकी कथावस्तु क्या है, इसे मालूम करने का प्रयास करें ।
4. मालती बिलकुल बदली हुई मालूम पड़ती है, वे क्या कारण होंगे, जिन्होंने मालती को बदल दिया ? आप क्या सोचते हैं ? सोचिए और लिखिए ।

5. यह कहानी उत्तम पुरुष शैली में लिखी गई है, तिरिछ भी ऐसी ही कहानी है । दिगंत (भाग - 1) में संकलित 'भोगे हुए दिन' भी ऐसी ही कहानी थी । आप इसी शैली में लिखी गई तीन अन्य कहानियों को संकलित करें और उन्हें पढ़ें ।
6. आप अपने आस-पड़ोस के घरों को याद करें । क्या ऐसा कोई घर और ऐसी कोई स्त्री दिखती है जिसकी तुलना मालती और उसके घर से की जा सके ? अपना अनुभव लिखिए और उस पर मित्रों के साथ चर्चा कीजिए ।

**भाषा की बात**

1. उद्वेगमय, शांतिमय शब्दों में 'मय' प्रत्यय लगा हुआ है । 'मय' प्रत्यय से पाँच अन्य शब्द बनाएँ ।
2. दिए गए वाक्यों से कारक चिह्न को रेखांकित करें, और वह किस कारक का चिह्न है, यह भी बताएँ ।
   (क) थोड़ी देर में आ जाएँगे ।
   (ख) मैं कमरे के चारों तरफ देखने लगा ।
   (ग) हम बचपन से इकट्ठे खेले हैं ।
   (घ) तभी किसी ने किवाड़ खटखटाए ।
   (ङ) शाम को एक-दो घंटे फिर चक्कर लगाने के लिए जाते हैं ।
   (च) एक छोटे क्षण भर के लिए मैं स्तब्ध हो गया ।
3. उसने कहा, ''आ जाओ ।'' यहाँ ''आ जाओ'' संयुक्त क्रिया है, पाठ से ऐसे पाँच वाक्य चुनें जिनमें संयुक्त क्रिया का प्रयोग हुआ हो ।
4. आपने दिगंत (भाग – 1) में प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' पढ़ी थी, 'पूस की रात' की भाषा और शिल्प को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत कहानी की भाषा और शिल्प पर विचार कीजिए । दोनों कहानीकारों में इस आधार पर भिन्नता के कुछ बिंदुओं को पहचानिए और उसे कक्षा में प्रस्तुत कीजिए ।
5. नीचे दिए गए वाक्यों से अव्यय चुनें -
   (क) अब के नीचे जाएँगे तो चारपाइयाँ ले आएँगे ।
   (ख) एक बार तो उठकर बैठ भी गया था, पर तुरंत ही लेट गया ।
   (ग) टिटी मालती के लेटे हुए शरीर से चिपट कर चुप हो गया था, यद्यपि कभी एक-आध सिसकी उसके छोटे से शरीर को हिला देती थी ।

**शब्द निधि**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अकथ्य | : | जिसे कहा न जा सके | विस्मृति | : | भूलना, विस्मरण |
| अस्पृश्य | : | न छूने योग्य | यंत्रवत | : | मशीन की तरह |
| प्रकंपमय | : | काँपता हुआ | विस्तीर्ण | : | चौड़ा, फैला हुआ |
| विस्मय | : | अचरज | अनभ्र | : | बिना बादल का |
| पूर्ववत | : | पहले की तरह | चंद्रिका | : | चाँदनी |
| भ्रातृत्व | : | भाई-भाई का रिश्ता | मूक | : | बेआवाज, शांत |
| स्वेच्छा | : | अपनी इच्छा | अपर संज्ञा | : | लक्षण (लक्षणों से पता चला) |
| स्वच्छंदता | : | अपने मन के अनुसार | तौक | : | भार, हँसुली |
| उन्मुख | : | किसी चीज की ओर झुका हुआ | वामता | : | विपरीतता |

# भगत सिंह

जन्म : 28 सितंबर 1907 ।

शहादत : 23 मार्च 1931 ( शाम 7:33 मिनट पर 'लाहौर षड्यंत्र केस में फाँसी ) ।

जन्म-स्थान : बंगा चक्क, न० 105, गुगेरा ब्रांच, वर्तमान लायलपुर ( पाकिस्तान ) ।

पैतृक गाँव : खटकड़कलाँ, पंजाब ।

माता-पिता : विद्यावती एवं सरदार किशन सिंह ।

परिवार : संपूर्ण परिवार स्वाधीनता सेनानी । पिता और चाचा अजीत सिंह लाला लाजपत राय के सहयोगी । अजीत सिंह को मांडले जेल में देश निकाला दिया गया था । बाद में विदेशों में जाकर मुक्तिसंग्राम का संचालन करने लगे । छोटे चाचा सरदार स्वर्ण सिंह भी जेल गए और जेल की यातनाओं के कारण 1910 में उनका निधन हुआ । भगत सिंह की शहादत के बाद उनके भाई कुलबीर सिंह और कुलतार सिंह को देवली कैंप जेल में रखा गया था जहाँ वे 1946 तक रहे । पिता अनेक बार जेल गए ।

शिक्षा : पहले चार साल की प्राइमरी शिक्षा अपने गाँव बंगा में । फिर लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल से वर्ग नौ तक की पढ़ाई की । बाद में नेशनल कॉलेज, लाहौर से एफ० ए० किया, बी० ए० के दौरान पढ़ाई छोड़ दी और क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए ।

प्रभाव : बचपन में करतार सिंह सराभा और 1914 के गदर पार्टी के आंदोलन के प्रति तीव्र आकर्षण । सराभा की निर्भीक कुर्बानी का मन पर स्थाई और गहरा असर । 16 नवंबर 1915 को सराभा की फाँसी के समय भगत सिंह की उम्र 8 वर्ष थी । वे सराभा का चित्र अपनी जेब ही में रखते थे ।

गतिविधियाँ : 12 वर्ष की उम्र में जलियाँवाला बाग की मिट्टी लेकर क्रांतिकारी गतिविधियों की शुरुआत । 1922 में चौराचौरी कांड के बाद 15 वर्ष की उम्र में काँग्रेस और महात्मा गाँधी से मोहभंग । 1923 में पढ़ाई और घर छोड़कर कानपुर, गणेश शंकर विद्यार्थी के पत्र 'प्रताप' में सेवाएँ दीं । 1926 में अपने नेतृत्व में पंजाब में 'नौजवान भारत सभा' का गठन किया जिसकी शाखाएँ विभिन्न शहरों में स्थापित की गईं । 1928 से 31 तक चंद्रशेखर आजाद के साथ मिलकर 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ' का गठन किया और क्रांतिकारी आंदोलन सघन रूप से छेड़ दिया । 8 अप्रैल 1929 को बटुकेश्वर दत्त और राजगुरु के साथ केंद्रीय असेंबली में बम फेंका और गिरफ्तार हुए ।

पहली गिरफ्तारी : अक्टूबर 1926 में दशहरा मेले में हुए बम विस्फोट के कारण मई 1927 में हुई ।

कृतियाँ : पंजाब की भाषा तथा लिपि की समस्या ( हिंदी में 1924 ), विश्वप्रेम ( कलकत्ता के मतवाला में 1924 में प्रकाशित हिंदी लेख ), 'युवक' ( मतवाला में 1924 में प्रकाशित हिंदी लेख ), मैं नास्तिक क्यों हूँ ( 1930-31 ), अछूत समस्या, विद्यार्थी और राजनीति, सत्याग्रह और हड़तालें, बम का दर्शन, भारतीय क्रांति का आदर्श आदि अनेक लेख, टिप्पणियाँ एवं पत्र जो अलग-अलग प्रकाशकों द्वारा भगत सिंह के दस्तावेज के रूप में प्रकाशित ।

शचींद्रनाथ सान्याल की पुस्तक 'बंदी जीवन' और 'डॉन ब्रीन की आत्मकथा' का अनुवाद । जेल डायरी

**भी लिखी और निम्नांकित चार पुस्तकें भगत सिंह के द्वारा लिखी बताई जाती हैं जो अप्राप्य हैं - समाजवाद का आदर्श, आत्मकथा, भारत में क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास और मौत के दरवाजे पर ।**

अमर शहीद भगतसिंह आधुनिक भारतीय इतिहास की एक पवित्र स्मृति हैं । भारत राष्ट्र के लोकमानस में उनकी युवा छवि अमिट होकर बस गई है । देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर देनेवाले हजारों लोगों तथा लाखों स्वाधीनता सेनानियों की प्रेरणा और उत्सर्गपूर्ण कार्यों के वे स्थाई प्रतीक और प्रतिनिधि हैं । उनके कार्यों और उनके बलिदान ने जनता के हृदय में सदा सुलगती रहनेवाली राष्ट्रीयता की ज्योतिर्मयी चेतना का निर्माण किया है । राष्ट्रीयता, देशभक्ति, क्रांति और युवाशक्ति के वे प्रेरणापुंज प्रतीक हैं । यह अमर पद उन्होंने लगभग तेईस वर्षों में ही हासिल कर लिया था ।

स्वाधीनता सेनानियों के परिवार में जन्म पाकर उन्होंने बचपन में ही देश की स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने का अविस्मरणीय पाठ पढ़ लिया था । उनके भीतर इच्छा, संकल्प, विचार और कर्म की सुदृढ़, अजेय और अमोघ शक्ति थी–बचपन से लेकर उठान की युवावस्था की शहादत तक का उनका इतिहास यही साबित करता है । देश और जनता की स्वतंत्रता के लिए अपराजेय संघर्ष तथा सामाजिक समानता, न्याय और सबकी खुशहाली पर टिकी समाजव्यवस्था के लिए क्रांति के स्वप्न के रूप में उन्हें ऐसा कुछ प्राप्त हो गया था जिसके आगे मृत्यु बहुत छोटी और तुच्छ पड़ गई । नश्वर जीवन के इस महिमामय मूल्यबोध के चलते ही उन्होंने हँसते-हँसते फाँसी का फंदा अपने गले लगा लिया और झूल गए । सचमुच वे उस पथ पर बढ़े, जिसके आगे राह नहीं थी ।

भगत सिंह का विकास आरंभ से ही उद्देश्य के प्रति समर्पित एक प्रबुद्ध नौजवान के रूप में हुआ । लाहौर में छात्र जीवन में ही उनका संग-साथ अपने ही जैसे लक्ष्यनिष्ठ जागरूक युवकों से हो गया था । इनमें अनेक आगे चलकर उनके साथी क्रांतिकारी बने । एक जागरूक छात्र के रूप में उनकी दृष्टि देश-दुनिया की हलचलों और गतिविधियों पर हमेशा बनी रही । अपनी रुचि की पुस्तकें जिनमें साहित्य, राजनीति, दर्शन, इतिहास आदि विषयों की पुस्तकें हुआ करती थीं, उन्होंने खूब पढ़ी थीं, और उनसे प्राप्त ज्ञान के प्रकाश में अपने देश-समाज आदि के बारे में सोच-विचार करते रहते थे । उनकी मानसिक जागरूकता, सोच-विचार और प्रबुद्धता ही वह कारण थी कि घर छोड़ने के बाद वे कानपुर में गणेश शंकर विद्यार्थी के पास चले आए और वहाँ उनके पत्र 'प्रताप' को अपनी सेवाएँ दीं । उन्होंने विभिन्न महत्त्वपूर्ण विषयों पर लगातार लेख लिखे और उनमें से अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाए । एक चिंतक-विचारक के रूप में वे समाजवाद और मार्क्स-एंगेल्स की विचारधारा से लगातार प्रभावित और अनुप्राणित होते रहे । क्रांति और समाज व्यवस्था को लेकर उनकी सोच इन विचारकों से प्रभावित थी । सामाजिक-राजनीतिक चिंतन और विचार के धरातल पर वे अपने समकालीनों से प्रायः आगे दिखाई पड़ते हैं ।

बहुधा आज सयाने और अभिभावकीय दृष्टिकोण वाले लोग यह राय प्रकट करते दिखाई पड़ते हैं कि छात्रों को राजनीति से अलग रहना चाहिए । उनका काम पढ़ाई करना और अपनी योग्यता बढ़ाना है, राजनीति में उलझना नहीं । गोया राजनीति का पढ़ाई से कोई स्थाई वैर-विरोध हो । छात्र और युवा भगतसिंह के विचार इस संबंध में क्या हैं, वे इस बारे में क्या सोचते थे ? इसकी झलक यहाँ भगत सिंह के छोटे से निबंध में मिलती है । यह सही है कि उन दिनों स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था जिससे गाफिल और असंपृक्त नहीं रहा जा सकता था । इसलिए तत्कालीन राजनीति में छात्रों की रुचि और भागीदारी वांछित तथा अपरिहार्य थी । किंतु आज ? आज क्या आजादी के संपूर्ण लक्ष्य हासिल कर लिए गए हैं ? समाज में गैर-बराबरी, भेदभाव, अशिक्षा, अंधविश्वास, गरीबी, अन्याय आदि दुर्गुण एवं अभाव अभी भी जमे हुए हैं; सांस्कृतिक स्वाधीनता का लक्ष्य अभी भी दूर दिखाई पड़ता है; बेहतर मानवीय व्यवस्था के लिए आज भी राजनीतिक संघर्ष जारी है । ऐसे समय में भगतसिंह का यह लेख छात्रों के लिए उतना ही प्रासंगिक है।

दूसरे, और अपेक्षाकृत अंतरंग पाठ के रूप में, यहाँ अपने घनिष्ठ क्रांतिकारी मित्र सुखदेव के नाम भगत सिंह का ऐतिहासिक पत्र प्रस्तुत है। क्रांतिकारी भी मनुष्य होते हैं, जिनके पास भावनाएँ और विचार होते हैं, उनके मन होता है, जिसमें कई तरह की उधेड़बुन चलती रहती है। उनके मानसिक जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं, संकल्प-विकल्प से भरे अनेक सबल और दुर्बल क्षण आते हैं। इन सबको देखते-समझते हुए उन्हें अपने उद्देश्य और लक्ष्य के प्रति निष्ठा और विश्वास को बनाए-बचाए रखना होता है। भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में क्रांतिकारियों का संगठन काम कर रहा था। अपने साथियों के साथ लगातार अंतरंग संवाद कायम रखकर ही वे सच्चे अर्थों में उनसे अपनी मैत्री निभा सकते थे तथा जरूरी क्षणों में उनकी सहेज-सँभाल रख सकते थे। इस पत्र से भगतसिंह और सुखदेव के बीच के अंतरंग संवाद की एक शिक्षाप्रद झलक मिलती है।

◆ ◆ ◆

# स्वतंत्रता

वे मृत शरीर नवयुवकों के,
वे शहीद जो झूल गए फाँसी के फंदे से –
वे दिल जो छलनी हो गए भूरे सीसे से,
सर्द और निष्पंद जो वे लगते हैं, जीवित हैं और कहीं
अबाधित ओज के साथ
वे जीवित हैं अन्य युवाजन में, ओ राजाओ !
वे जीवित हैं अन्य बंधु-जन में, फिर से तुम्हें चुनौती देने को तैयार
वे पवित्र हो गए मृत्यु से–
शिक्षित और समुन्नत।
दफन न होते आजादी पर मरने वाले
पैदा करते हैं मुक्ति-बीज, फिर और बीज पैदा करने को।
जिसे ले जाती दूर हवा और फिर बोती है और जिसे
पोषित करते हैं वर्षा और जल हिम।
देहमुक्त जो हुई आत्मा उसे न कर सकते विच्छिन्न
अस्त्र-शस्त्र अत्याचारी के
बल्कि हो अजेय रमती धरती पर, मर मर करती,
बतियाती, चौकस करती।

– वाल्ट ह्विटमैन
(भगत सिंह द्वारा डायरी में उद्धृत)

# एक लेख और एक पत्र

## विद्यार्थी और राजनीति

इस बात का बड़ा भारी शोर सुना जा रहा है कि पढ़ने वाले नौजवान (विद्यार्थी) राजनीतिक या पॉलिटिकल कामों में हिस्सा न लें। पंजाब सरकार की राय बिलकुल ही न्यारी है। विद्यार्थियों से कॉलेज में दाखिल होने से पहले इस आशय की शर्त पर हस्ताक्षर करवाए जाते हैं कि वे पॉलिटिकल कामों में हिस्सा नहीं लेंगे। आगे हमारा दुर्भाग्य कि लोगों की ओर से चुना हुआ मनोहर, जो अब शिक्षा मंत्री है, स्कूलों-कॉलेजों के नाम एक सर्कुलर या परिपत्र भेजता है कि कोई पढ़ने या पढ़ाने वाला पॉलिटिक्स में हिस्सा न ले। कुछ दिन हुए जब लाहौर में स्टूडेंट्स यूनियन या विद्यार्थी सभा की ओर से विद्यार्थी सप्ताह मनाया जा रहा था। वहाँ भी सर अब्दुल कादर और प्रोफेसर ईश्वरचंद्र नंदा ने इस बात पर जोर दिया कि विद्यार्थियों को पॉलिटिक्स में हिस्सा नहीं लेना चाहिए।

पंजाब को राजनीतिक जीवन में सबसे पिछड़ा हुआ कहा जाता है। इसका क्या कारण है ? क्या पंजाब ने बलिदान कम दिए हैं ? इसका कारण स्पष्ट है कि हमारे शिक्षा विभाग के अधिकारी लोग बिलकुल ही बुद्धू हैं। आज पंजाब कौंसिल की कार्रवाई पढ़कर इस बात का अच्छी तरह पता चलता है कि इसका कारण यह है कि हमारी शिक्षा निकम्मी होती है और फिजूल होती है और विद्यार्थी युवा जगत अपने देश की बातों में कोई हिस्सा नहीं लेता। उन्हें इस संबंध में कोई भी ज्ञान नहीं होता। जब वे पढ़कर निकलते हैं तब उनमें से कुछ ही आगे पढ़ते हैं, लेकिन वे ऐसी कच्ची-कच्ची बातें करते हैं कि सुनकर स्वयं ही अफसोस कर बैठ जाने के सिवाय कोई चारा नहीं होता। जिन नौजवानों को कल देश की बागडोर हाथ में लेनी है, उन्हें आज ही अक्ल के अंधे बनाने की कोशिश की जा रही है। इससे जो परिणाम निकलेगा वह हमें खुद ही समझ लेना चाहिए। यह हम मानते हैं कि विद्यार्थियों का मुख्य काम पढ़ाई करना है, उन्हें अपना पूरा ध्यान उस ओर लगा देना चाहिए लेकिन क्या देश की परिस्थितियों का ज्ञान और उनके सुधार के उपाय सोचने की योग्यता पैदा करना उस शिक्षा में शामिल नहीं ? यदि नहीं तो हम उस शिक्षा को भी निकम्मी समझते हैं जो सिर्फ क्लर्की करने के लिए ही हासिल की जाए। ऐसी शिक्षा की जरूरत ही क्या है ? कुछ ज्यादा चालाक आदमी यह कहते हैं –''काका, तुम पॉलिटिक्स के अनुसार पढ़ो और सोचो जरूर, लेकिन कोई व्यावहारिक हिस्सा न लो। तुम अधिक योग्य होकर देश के लिए फायदेमंद साबित होगे।''

बात बड़ी सुंदर लगती है, लेकिन हम इसे भी रद्द करते हैं, क्योंकि यह भी सिर्फ ऊपरी बात है। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक दिन विद्यार्थी एक पुस्तक 'अपील टू द यंग, प्रिंस क्रोपोट्किन'

पढ़ रहा था । एक प्रोफेसर साहब कहने लगे, यह कौन सी पुस्तक है ? और यह तो किसी बंगाली का नाम जान पड़ता है । लड़का बोल पड़ा– ''प्रिंस क्रोपोटकिन का नाम बड़ा प्रसिद्ध है । वे अर्थशास्त्र के विद्वान थे ।'' इस नाम से परिचित होना प्रत्येक प्रोफेसर के लिए बड़ा जरूरी था । प्रोफेसर की 'योग्यता' पर लड़का भी हँस पड़ा । और उसने फिर कहा– ''ये रूसी सज्जन थे ।'' बस ! 'रूसी' कहर टूट पड़ा । प्रोफेसर ने कहा कि ''तुम बोल्शेविक हो, क्योंकि तुम पोलिटिकल पुस्तकें पढ़ते हो ।''

देखिए आप प्रोफेसर की योग्यता । अब उन बेचारे विद्यार्थियों को उनसे क्या सीखना है ? ऐसी स्थिति में वे नौजवान क्या सीख सकते हैं ?

दूसरी बात यह है कि व्यावहारिक राजनीति क्या होती है ? महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस का स्वागत करना और भाषण सुनना तो हुई व्यावहारिक राजनीति, पर कमीशन या वाइसराय का स्वागत करना क्या हुआ ? क्या वह पॉलिटिक्स का दूसरा पहलू नहीं ? सरकारों और देशों के प्रबंध से संबंधित कोई भी बात पॉलिटिक्स के मैदान में ही गिनी जाएगी, तो फिर यह भी पॉलिटिक्स हुई कि नहीं ? कहा जाएगा कि इससे सरकार खुश होती है और दूसरी से नाराज ? फिर सवाल तो सरकार की खुशी या नाराजगी का ही हुआ । क्या विद्यार्थियों को जनमते ही खुशामद का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए ? हम जो समझते हैं कि जब तक हिंदुस्तान में विदेशी डाकू नहीं, पशु हैं, पेट के गुलाम हैं तो हम किस तरह कहें कि विद्यार्थी वफादारी का पाठ पढ़ें ।

सभी मानते हैं कि हिंदुस्तान को इस समय ऐसे देशसेवकों की जरूरत है, जो तन-मन-धन देश पर अर्पित कर दें और पागलों की तरह सारी उम्र देश की आजादी के लिए न्यौछावर कर दें । लेकिन क्या बूढ़ों में ऐसे आदमी मिल सकेंगे ? क्या परिवार और दुनियादारी के झंझटों में फँसे सयाने लोगों में से ऐसे लोग निकल सकेंगे ? यह तो वही नौजवान निकल सकते हैं जो किन्हीं जंजालों में न फँसे हों और जंजालों में पड़ने से पहले विद्यार्थी या नौजवान तभी सोच सकते हैं यदि उन्होंने कुछ व्यावहारिक ज्ञान भी हासिल किया हो । सिर्फ गणित और ज्योग्राफी का ही परीक्षा के पर्चों के लिए घोंटा न लगाया हो ।

क्या इंग्लैंड के सभी विद्यार्थियों का कॉलेज छोड़कर जर्मनी के खिलाफ लड़ने के लिए निकल पड़ना पॉलिटिक्स नहीं थी ? तब हमारे उपदेशक कहाँ थे जो उनसे कहते–जाओ, जाकर शिक्षा हासिल करो। आज नेशनल कॉलेज, अहमदाबाद के जो लड़के सत्याग्रह में बारदोली वालों की सहायता कर रहे हैं, क्या वे ऐसे ही मूर्ख रह जाएँगे ? सभी देशों को आजाद करवाने वाले वहाँ के विद्यार्थी और नौजवान ही हुआ करते हैं । क्या हिंदुस्तान के नौजवान अलग-अलग रहकर अपना और अपने देश का अस्तित्व बचा पाएँगे ? नौजवान 1919 में विद्यार्थियों पर किए अत्याचार भूल नहीं सकते । वे यह भी समझते हैं कि उन्हें एक भारी क्रांति की जरूरत है । वे पढ़ें । जरूर पढ़ें । साथ ही पॉलिटिक्स का भी ज्ञान हासिल करें और जब जरूरत हो तो मैदान में कूद पड़ें और अपना जीवन इसी काम में लगा दें । अपने प्राणों का इसी में उत्सर्ग कर दें । वरन् बचने का कोई उपाय नजर नहीं आता ।

❑❑❑

# सुखदेव के नाम पत्र

प्रिय भाई,

मैंने आपके पत्र को कई बार ध्यानपूर्वक पढ़ा । मैं अनुभव करता हूँ कि बदली हुई परिस्थितियों ने हम पर अलग-अलग प्रभाव डाला है । जिन बातों से जेल के बाहर घृणा करते थे, वे आपके लिए अब अनिवार्य हो चुकी हैं । इसी प्रकार मैं जेल से बाहर जिन बातों का विशेष रूप से समर्थन करता था, वे अब मेरे लिए विशेष महत्त्व नहीं रखतीं । उदाहरणार्थ, मैं व्यक्तिगत प्रेम को विशेष रूप से माननेवाला था, परंतु अब इस भावना का मेरे हृदय एवं मस्तिष्क में कोई विशेष स्थान नहीं रहा । बाहर आप इसके कड़े विरोधी थे, परंतु इस संबंध में अब आपके विचारों में भारी परिवर्तन एवं क्रांति आ चुकी है । आप इसे मानव जीवन का एक अत्यंत आवश्यक एवं अनिवार्य अंग अनुभव करते हैं और सहानुभूति से आपको एक प्रकार का आनंद भी प्राप्त हुआ है ।

आपको याद होगा कि एक दिन मैंने आत्महत्या के विषय में आपसे चर्चा की थी । तब मैंने आपको बताया था, कई परिस्थितियों में आत्महत्या उचित हो सकती है, परंतु आपने मेरे दृष्टिकोण का विरोध किया था । मुझे उस चर्चा का समय एवं स्थान भली प्रकार याद है । हमारी यह बात शहंशाही कुटिया में शाम के समय हुई थी । आपने मजाक के रूप में हँसते हुए कहा था कि इस प्रकार की कायरता का कार्य कभी उचित नहीं माना जा सकता । आपने कहा था कि इस प्रकार का कार्य भयानक और घृणित है, परंतु इस विषय पर भी मैं देखता हूँ कि आपकी राय बिलकुल बदल चुकी है । अब आप उसे कुछ अवस्थाओं में न केवल उचित, वरन् अनिवार्य एवं आवश्यक अनुभव करते हैं । मेरी इस विषय में अब वही राय है, जो पहले आपकी थी, अर्थात आत्महत्या एक घृणित अपराध है, यह पूर्णतः कायरता का कार्य है । क्रांतिकारी का तो कहना ही क्या, कोई भी मनुष्य ऐसे कार्य को उचित नहीं ठहरा सकता है ।

आप कहते हैं कि आप यह नहीं समझ सके कि केवल कष्ट सहन करने से आप अपने देश की सेवा किस प्रकार कर सकते हैं । आप जैसे व्यक्ति की ओर से ऐसा प्रश्न करना बड़े आश्चर्य की बात है, क्योंकि नौजवान भारत सभा के ध्येय 'सेवा द्वारा कष्टों को सहन करना एवं बलिदान करना' को हमने सोच-समझकर कितना प्यार किया था । मैं यह समझता हूँ कि आपने अधिक से अधिक संभव सेवा की । अब वह समय है कि जो कुछ आपने किया है, उसके लिए कष्ट उठाएँ । दूसरी बात यह है कि यही वह अवसर है जब आपको सारी जनता का नेतृत्व करना है ।

मानव किसी भी कार्य को उचित मानकर ही करता है, जैसे कि हमने लेजिस्लेटिव असेंबली में

बम फेंकने का कार्य किया था । कार्य करने के पश्चात उसका परिणाम और उसका फल भोगने की बारी आती है । क्या आपका यह विचार है कि यदि हमने दया के लिए गिड़गिड़ाते हुए दंड से बचने का प्रयत्न किया होता, तो हमारा यह कार्य उचित होता ? नहीं, इसका प्रभाव लोगों पर उल्टा होता । अब हम अपने लक्ष्य में पूर्णतया सफल हुए हैं ।

बंदी होने के समय हमारी संस्था के राजनीतिक बंदियों की दशा अत्यंत दयनीय थी । हमने उसे सुधारने का प्रयास आरंभ कर दिया । मैं आपको पूरी गंभीरता से बताता हूँ कि हमें यह विश्वास था कि हम बहुत कम समय के भीतर ही मर जाएँगे । हमें उपवास की स्थिति में कृत्रिम रीति से भोजन दिए जाने का न तो ज्ञान ही था, न हमें यह विचार सूझता ही था । हम तो मृत्यु के लिए तैयार थे । क्या आपका यह अभिप्राय है कि हम आत्महत्या करना चाहते थे ? नहीं, प्रयत्नशील होना एवं श्रेष्ठ और उत्कृष्ट आदर्श के लिए जीवन दे देना कदापि आत्महत्या नहीं कही जा सकती । हमारे मित्र (श्री यतींद्रनाथ दास) की मृत्यु तो स्पृहणीय है । क्या आप इसे आत्महत्या कहेंगे ? हमारा कष्ट सहन करना फलीभूत हुआ । समस्त देश में एक विराट और सर्वव्यापी आंदोलन शुरू हो गया । हम अपने लक्ष्य में सफल हुए । इस प्रकार के संघर्ष में मरना एक आदर्श मृत्यु है ।

इसके अतिरिक्त हम में से जिन लोगों को यह विश्वास है कि उनको मृत्युदंड दिया जाएगा, उनको धैर्यपूर्वक उस दिन की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब यह सजा सुनाई जाएगी और तत्पश्चात उन्हें फाँसी दी जाएगी । यह मृत्यु भी सुंदर होगी, परंतु आत्महत्या करना, केवल कुछ दुखों से बचने के लिए अपने जीवन को समाप्त कर देना तो कायरता है । मैं आपको बताना चाहता हूँ कि विपत्तियाँ व्यक्ति को पूर्ण बनाने वाली होती हैं । मैं और आप, वरन् मैं कहूँगा, हम में से किसी ने भी किंचित कष्ट सहन नहीं किया है । हमारे जीवन का यह भाग तो अभी आरंभ होता है ।

आपको यह याद होगा कि अनेक बार इस विषय पर हमने बातचीत की है । रूसी साहित्य के प्रत्येक स्थान पर जो वास्तविकता मिलती है, वह हमारे साहित्य में कदापि नहीं दिखाई देती । हम उनकी कहानियों में कष्टों और दुखमयी स्थितियों को बहुत पसंद करते हैं, परंतु कष्ट सहन की उस भावना को अपने भीतर अनुभव नहीं करते । हम उनके उन्माद और उनके चरित्र की असाधारण ऊँचाइयों के प्रशंसक हैं, परंतु इसके कारणों पर सोच-विचार करने की कभी चिंता नहीं करते । मैं कहूँगा कि केवल विपत्तियाँ सहन करने के साहित्य के उल्लेख ने ही उन कहानियों में सहृदयता, दर्द की गहरी टीस और उनके चरित्र तथा साहित्य में ऊँचाई उत्पन्न की है । हमारी दशा उस समय दयनीय और हास्यास्पद हो जाती है, जब हम अपने जीवन में अकारण ही रहस्यवाद प्रविष्ट कर लेते हैं, यद्यपि इसके लिए कोई प्राकृतिक या ठोस आधार नहीं होता। हमारे जैसे व्यक्तियों को, जो प्रत्येक दृष्टि से क्रांतिकारी होने का गर्व करते हैं, सदैव हर प्रकार से उन विपत्तियों, चिंताओं, दुखों और कष्टों को सहन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए जिनको हम स्वयं आरंभ किए संघर्ष के द्वारा आमंत्रित करते हैं एवं जिनके कारण हम अपने आपको क्रांतिकारी कहते हैं ।

मैं आपको बताता हूँ कि जेलों में और केवल जेलों में ही कोई व्यक्ति अपराध एवं पाप जैसे महान सामाजिक विषय का प्रत्यक्ष अध्ययन करने का अवसर पा सकता है । मैंने इस विषय का कुछ साहित्य

पढ़ा है और जेलें ही ऐसे विषयों का स्वाध्याय करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त स्थान हैं । स्वाध्याय का सर्वश्रेष्ठ भाग है–स्वयं कष्टों को सहना ।

आप भली प्रकार जानते हैं कि रूस में राजनीतिक बंदियों का बंदीगृहों में विपत्तियाँ सहन करना ही जारशाही का तख्ता उलटने के पश्चात उनके द्वारा जेलों के प्रबंध में क्रांति लाए जाने का सबसे बड़ा कारण था । क्या भारत को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं है, जो इस विषय से पूर्णतया परिचित हों और इस समस्या का निजी अनुभव रखते हों । केवल यह कह देना कि दूसरा कोई इस काम को कर लेगा या इस कार्य को करने के लिए बहुत लोग हैं, किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता । इस प्रकार जो लोग क्रांतिकारी क्षेत्र के कार्यों का भार दूसरे लोगों पर छोड़ने को अप्रतिष्ठापूर्ण एवं घृणित समझते हैं, उन्हें पूरी लगन के साथ वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष आरंभ कर देना चाहिए । उन्हें चाहिए कि वे उन विधियों का उल्लंघन करें, परंतु उन्हें औचित्य का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि अनावश्यक एवं अनुचित प्रयत्न कभी भी न्यायपूर्ण नहीं माना जा सकता । इस प्रकार का आंदोलन क्रांति के कार्यकाल को बहुत सीमा तक कम कर देगा । जितने आंदोलन अब तक आरंभ हुए हैं, उन सबसे पृथक रहने के लिए आपने जो तर्क दिए हैं, मैं उन्हें समझने में असमर्थ हूँ । कुछ मित्र ऐसे हैं, जो या तो मूर्ख हैं या नासमझ । वे आपके इस व्यवहार को (जिसे वे स्वयं कहते हैं कि हमें किंचित भी नहीं समझ सकते, क्योंकि आप उनसे बहुत ऊँचे और उनकी समझ से बहुत परे हैं) अनोखा और अद्भुत समझते हैं ।

वास्तव में यदि आप यह अनुभव करते हैं कि बंदीगृह का जीवन वास्तव में अपमानपूर्ण है, तो आप उसके विरुद्ध आंदोलन करके उसे सुधारने का प्रयास क्यों नहीं करते ? संभवतया आप यह कहेंगे कि यह संघर्ष सफल नहीं हो सकता, परंतु यह तो वही तर्क है जिसकी आड़ लेकर साधारणतया निर्बल लोग प्रत्येक आंदोलन से बचना चाहते हैं । यह वह उत्तर है, जिसे हम उन लोगों से सुनते रहे हैं, जो जेल से बाहर क्रांतिकारी प्रयत्नों में सम्मिलित होने से जान बचाना चाहते थे । क्या आज यही उत्तर मैं आपके मुख से सुनूँगा ? कुछ मुट्ठी भर कार्यकर्ताओं के आधार पर संगठित हमारी पार्टी अपने लक्ष्यों और आदर्शों की तुलना में क्या कर सकती थी ? क्या हम इससे यह निष्कर्ष निकालें कि हमने इस काम के प्रारंभ करने में नितांत भूल की है ? नहीं, इस प्रकार का परिणाम निकालना उचित नहीं होगा । इससे तो उस व्यक्ति की भीतरी निर्बलता प्रकट होती है जो इस प्रकार सोचता है ।

आगे चलकर आप लिखते हैं कि चौदह वर्ष बंदीगृह के कष्टों से भरपूर जीवन बिताने के पश्चात किसी व्यक्ति से यह आशा नहीं की जा सकती कि उस समय भी उसके विचार वही होंगे, जो जेल से पूर्व थे, क्योंकि जेल का वातावरण उसके समस्त विचारों को रौंदकर रख देगा । क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि क्या जेल से बाहर का वातावरण हमारे विचारों के अनुकूल था ? फिर भी असफलताओं के कारण क्या हम उसे छोड़ सकते थे ? क्या आपका आशय यह है कि यदि हम इस क्षेत्र में न उतरे होते, तो कोई भी क्रांतिकारी कार्य कदापि नहीं हुआ होता ? यदि ऐसा है तो आप भूल कर रहे हैं । यद्यपि यह ठीक है कि हम भी वातावरण को बदलने में बड़ी सीमा तक सहायक सिद्ध हुए हैं, तथापि हम तो केवल अपने समय की आवश्यकता की उपज हैं ।

मैं तो यह कहूँगा कि साम्यवाद का जन्मदाता मार्क्स, वास्तव में इस विचार को जन्म देने वाला नहीं

था। असल में यूरोप की औद्योगिक क्रांति ने ही एक विशेष प्रकार के विचारों वाले व्यक्ति उत्पन्न किए थे। उनमें मार्क्स भी एक था। हाँ, अपने स्थान पर मार्क्स भी निस्संदेह कुछ सीमा तक समय के चक्र को एक विशेष प्रकार की गति देने में आवश्यक सहायक सिद्ध हुआ है।

मैंने (और आपने भी) इस देश में समाजवाद और साम्यवाद के विचारों को जन्म नहीं दिया, वरन् यह तो हमारे ऊपर हमारे समय एवं परिस्थिति के प्रभाव का परिणाम है। निस्संदेह हमने इन विचारों का प्रचार करने के लिए कुछ साधारण एवं तुच्छ कार्य अवश्य किया है, इसलिए मैं कहता हूँ कि जब हमने इस प्रकार एक कठिन कार्य को हाथ में लिया है, तो हमें उसे जारी रखना चाहिए और आगे बढ़ना चाहिए। विपत्तियों से बचने के लिए आत्महत्या कर लेने से जनता का मार्गदर्शन नहीं होगा, वरन् यह तो एक प्रतिक्रियावादी कार्य होगा।

जेल के नियमों के अनुसार जीवन की निराशाओं, दबाव और हिंसा के असीम परीक्षायुक्त वातावरण का विरोध करते हुए हम कार्य करते रहे। जिस समय हम अपना कार्य करते थे, उस समय नाना प्रकार से हमें कठिनाइयों का निशाना बनाया जाता था। यहाँ तक कि जो लोग अपने आपको महान क्रांतिकारी कहने का गौरव अनुभव करते थे, वे भी हमको छोड़ गए। क्या ये परिस्थितियाँ असीम परीक्षायुक्त न थीं? फिर अपने आंदोलन एवं प्रयासों को जारी रखने के लिए हमारे पास क्या कारण और तर्क था?

क्या स्वयं यही तर्क हमारे विचारों को शक्ति नहीं देता है? और क्या ऐसे क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं के उदाहरण हमारे सामने नहीं हैं जो जेलों से दंड भोग कर लौटे और अब भी कार्य कर रहे हैं? यदि बाकुनिन ने आपके समान सोच-विचार किया होता, तो वह प्रारंभ में ही आत्महत्या कर लेता। आज आपको ऐसे असंख्य क्रांतिकारी दिखाई देते हैं, जो रूसी राज्य में उत्तरदायी पदों पर विराजमान हैं और जिन्होंने अपने जीवन का अधिकतर भाग दंड भोगते हुए जेलों में बिताया है। मनुष्य को अपने विश्वासों पर दृढ़तापूर्वक अडिग रहने का प्रयत्न करना चाहिए। कोई नहीं कह सकता कि भविष्य में क्या घटना होने वाली है।

क्या आपको याद है कि जब हम इस विषय पर चर्चा कर रहे थे कि हमारी बम फैक्टरियों में अत्यंत तीव्र एवं प्रभावकारी विष भी रखा जाना चाहिए, तो आपने बड़ी दृढ़ता से इसका विरोध किया था। आप इस विचार से ही घृणा करते थे। आपको इस पर विश्वास नहीं था। फिर अब क्या हुआ? यहाँ तो ऐसी विकट और जटिल परिस्थितियाँ भी नहीं हैं। मुझे तो इस प्रश्न पर विचार करने में भी घृणा होती है। आपको उस मनोवृत्ति से भी घृणा थी, जो आत्महत्या करने की अनुमति देती है। आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करें कि यदि आपने अपने बंदी बनाए जाने के समय ही इन विचारों के अनुकूल कार्य किया होता (अर्थात आपने विष खाकर उस समय आत्महत्या कर ली होती) तो आपने क्रांतिकारी कार्य की बहुत बड़ी सेवा की होती, परंतु इस समय तो इस कार्य पर विचार करना भी हमारे लिए हानिकारक है।

एक और विशेष बात, जिस पर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, यह है कि हम लोग ईश्वर, पुनर्जन्म, नरक-स्वर्ग, दंड एवं पारितोषिक, अर्थात भगवान द्वारा किए जाने वाले जीवन के हिसाब आदि में कोई विश्वास नहीं रखते। अतः हमें जीवन एवं मृत्यु के विषय में भी नितांत भौतिकवादी रीति से सोचना चाहिए। एक दिन जब मुझे पहचाने जाने के लिए कोई दिल्ली से यहाँ लाया गया था, तो गुप्तचर विभाग के कुछ अधिकारियों ने मेरे पिताजी की उपस्थिति में मुझसे इस विषय पर बातचीत की थी। उन्होंने

कहा था कि मैं कोई भेद खोलने और इस प्रकार अपना जीवन बचाने के लिए तैयार नहीं हूँ, इससे सिद्ध होता है कि मैं जीवन से बहुत दुखी हूँ । उनका तर्क था कि मेरी यह मृत्यु तो आत्महत्या के समान होगी, परंतु मैंने उनको उत्तर दिया था कि मेरे जैसे विश्वास और विचारों वाला व्यक्ति व्यर्थ में मरना कदापि सहन नहीं कर सकता । हम तो अपने जीवन का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करना चाहते हैं । हम मानवता की अधिक से अधिक संभव सेवा करना चाहते हैं । विशेषकर मेरे जैसा भला मनुष्य, जिसका जीवन किसी भी रूप में दुखी या चिंतित नहीं है, किसी समय भी आत्महत्या करना तो दूर रहा, उसका विचार भी हृदय में लाना ठीक नहीं समझता । वही बात मैं इस समय आपसे कहना चाहता हूँ ।

आशा है आप मुझे अनुमति देंगे कि मैं आपको यह बताऊँ कि मैं अपने बारे में क्या सोचता हूँ। मुझे अपने लिए मृत्युदंड सुनाए जाने का अटल विश्वास है । मुझे किसी प्रकार की पूर्ण क्षमा या नम्र व्यवहार की तनिक भी आशा नहीं है । यदि कोई क्षमा हुई भी तो पूर्णतः सबके लिए होगी, वरन् वह भी हमारे अतिरिक्त अन्य लोगों के लिए नितांत सीमित एवं कई बंधनों से जकड़ी हुई होगी । हमारे लिए न तो क्षमा हो सकती है और न वह होगी ही । इस पर भी मेरी इच्छा है कि हमारी मुक्ति का प्रस्ताव सम्मिलित रूप में और विश्वव्यापी हो और उसके साथ ही मेरी अभिलाषा यह है कि जब यह आंदोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँचे तो हमें फाँसी दे दी जाए । मेरी यह इच्छा है कि यदि कोई सम्मानपूर्ण और उचित समझौता होना कभी संभव हो जाए, तो हमारे जैसे व्यक्तियों का मामला उसके मार्ग में कोई रुकावट या कठिनाई उत्पन्न करने का कारण न बने । जब देश के भाग्य का निर्णय हो रहा हो तो व्यक्तियों के भाग्य को पूर्णतया भुला देना चाहिए । हम क्रांतिकारी होने के नाते अतीत के समस्त अनुभवों से पूर्णतया अवगत हैं । इसलिए हम नहीं मान सकते कि हमारे शासकों और विशेषकर अंग्रेज जाति की भावनाओं में इस प्रकार का आश्चर्यजनक परिवर्तन उत्पन्न हो सकता है । इस प्रकार का परिवर्तन क्रांति के बिना संभव ही नहीं है । क्रांति तो केवल सतत कार्य करते रहने से, प्रयत्नों से, कष्ट सहन करने एवं बलिदानों से ही उत्पन्न की जा सकती है, और की जाएगी ।

जहाँ तक मेरे दृष्टिकोण का संबंध है, मैं तो केवल उसी दशा में सबके लिए सुविधाओं और क्षमादान का स्वागत कर सकता हूँ जब उसका प्रभाव स्थाई हो और देश के लोगों के हृदयों में हमारी फाँसियों से कुछ अमिट चिह्न अंकित हो जाएँ । बस यही; इससे अधिक कुछ नहीं ।

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. विद्यार्थियों को राजनीति में भाग क्यों लेना चाहिए ?
2. भगत सिंह की विद्यार्थियों से क्या अपेक्षाएँ हैं ?
3. भगत सिंह के अनुसार 'केवल कष्ट सहकर भी देश की सेवा की जा सकती है ?' उनके जीवन के आधार पर इसे प्रमाणित करें ।

4. भगत सिंह ने कैसी मृत्यु को 'सुंदर' कहा है ? वे आत्महत्या को कायरता कहते हैं, इस संबंध में उनके विचारों को स्पष्ट करें ।
5. भगत सिंह रूसी साहित्य को इतना महत्त्वपूर्ण क्यों मानते हैं ? वे एक क्रांतिकारी से क्या अपेक्षाएँ रखते हैं ?
6. 'उन्हें चाहिए कि वे उन विधियों का उल्लंघन करें परंतु उन्हें औचित्य का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि अनावश्यक एवं अनुचित प्रयत्न कभी भी न्यायपूर्ण नहीं माना जा सकता ।' भगत सिंह के इस कथन का आशय बतलाएँ । इससे उनके चिंतन का कौन सा पक्ष उभरता है, वर्णन करें ।
7. निम्नलिखित कथनों का अभिप्राय स्पष्ट करें –
   (क) मैं आपको बताना चाहता हूँ कि विपत्तियाँ व्यक्ति को पूर्ण बनाने वाली होती हैं ।
   (ख) हम तो केवल अपने समय की आवश्यकता की उपज हैं ।
   (ग) मनुष्य को अपने विश्वासों पर दृढ़तापूर्वक अडिग रहने का प्रयत्न करना चाहिए ।
8. 'जब देश के भाग्य का निर्णय हो रहा हो तो व्यक्तियों के भाग्य को पूर्णतया भुला देना चाहिए ।' आज जब देश आजाद है, भगत सिंह के इस विचार का आप किस तरह मूल्यांकन करेंगे । अपना पक्ष प्रस्तुत करें ।
9. भगत सिंह ने अपनी फाँसी के लिए किस समय की इच्छा व्यक्त की है ? वे ऐसा समय क्यों चुनते हैं ?
10. भगत सिंह के इस पत्र से उनकी गहन वैचारिकता, यथार्थवादी दृष्टि का परिचय मिलता है । पत्र के आधार पर इसकी पुष्टि करें ।

**पाठ के आस-पास**

1. भगत सिंह ने 1926 में भगवतीचरण बोहरा आदि के साथ मिलकर 'नौजवान भारत सभा' का गठन किया था, आगे 1928 में चंद्रशेखर आजाद आदि के साथ मिलकर 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ' का गठन किया था, 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना' इसी का एक अंग थी जिसके कमांडर इन चीफ चंद्रशेखर आजाद थे । भगत सिंह और उनके साथियों के जीवन के विषय में जानकारी एकत्र करें और विद्यालय की गोष्ठी में इसे प्रस्तुत करें ।
2. भगत सिंह के इस पत्र से उनका गहन चिंतन प्रकट होता है, इसी तरह उन्होंने 'बम का दर्शन', 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' जैसे कई विचारोत्तेजक लेख लिखे । आप इन लेखों को भी पढ़ें ।
3. भगत सिंह की कई चिट्ठियों में उनके भाव उमड़ पड़े हैं, ऐसा ही एक जज्बाती पत्र जो छोटे भाई कुलतार के लिए है, यहाँ दिया जा रहा है । आप इस पत्र को पढ़ें और मित्रों से चर्चा करें ।

**छोटे भाई कुलतार के नाम अंतिम पत्र**

सेंट्रल जेल, लाहौर
3 मार्च, 1931

अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर बहुत दुख हुआ । आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आँसू मुझसे सहन नहीं होते ।

बरखुर्दार, हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ख्वाल रखना । हौसला रखना और क्या कहूँ !

**उसे यह फिक्र है हरदम नया तर्जे-जफा क्या है,**
**हमें यह शौक है देखें सितम की इंतहा क्या है ?**
**वहर से क्यों खफा रहें, चर्ख को क्यों गिला करें,**
**सारा जहाँ अदू सही, आओ मुकाबला करें ।**

**कोई दम का मेहमाँ हूँ ऐ अहले-महफिल**
**चरागे सहर हूँ बुझा चाहता हूँ**
**हवा में रहेगी मेरे ख्याल की बिजली,**
**ये मुश्ते खाक है फानी, रहे न रहे**

अच्छा रुखसत । खुश रहो अहले-वतन, हम तो सफर करते हैं । हिम्मत से रहना ।

तुम्हारा भाई
भगत सिंह

4. पत्र-लेखन संवाद स्थापित करने का एक पुराना माध्यम है, आज नई तकनीकों एवं उपकरणों ने इसके प्रयोग को कम कर दिया है । इस विषय में आप क्या सोचते हैं, क्या हमें चिट्ठियों की जरूरत नहीं रही, क्या फोन-इंटरनेट आदि चिट्ठियों की जगह ले सकते हैं, अपना मत दें ।
5. हमारे देश के क्रांतिकारियों पर रूसी क्रांति और वहाँ के साहित्य का यथेष्ट प्रभाव पड़ा था । आपकी पुस्तक में संकलित अंतोन चेखव रूस के एक प्रमुख कथाकार थे । रूसी साहित्य के किन्हीं तीन अन्य लेखकों के संबंध में जानकारी प्राप्त करें ।
6. इनके बारे में शिक्षक से मालूम करें --
बोल्शेविक, औद्योगिक क्रांति, यतींद्रनाथ दास, प्रिंस क्रोपोट्कीन ।

**भाषा की बात**

1. निम्नलिखित शब्दों के प्रत्यय निर्दिष्ट करें --
कायरता, घृणित, पूर्णतया, दयनीय, स्पृहणीय, वास्तविकता, पारितोषिक
2. 'हास्यास्पद' शब्द में 'आस्पद' प्रत्यय है, इस प्रत्यय से पाँच अन्य शब्द बनाएँ ।
3. हमारे विद्यालय के प्राचार्य आ रहे हैं । इस वाक्य में 'हमारे विद्यालय के प्राचार्य' संज्ञा पदबंध है । वह पदसमूह जो वाक्य में संज्ञा का काम करे, संज्ञा पदबंध कहलाता है । इस तरह नीचे दिए गए वाक्यों से संज्ञा पदबंध चुनें --
(क) बंदी होने के समय हमारी संस्था के राजनीतिक बंदियों की दशा अत्यंत दयनीय थी ।
(ख) कुछ मुट्ठी भर कार्यकर्त्ताओं के आधार पर संगठित हमारी पार्टी अपने लक्ष्यों और आदर्शों की तुलना में क्या कर सकती थी ?
(ग) मैं तो यह भी कहूँगा कि साम्यवाद का जन्मदाता मार्क्स, वास्तव में इस विचार को जन्म देने वाला नहीं था ।
4. पर्यायवाची शब्द लिखें --
वफादारी, विद्यार्थी, फायदेमंद, खुशामद, दुनियादारी, अत्याचार, प्रतीक्षा, किंचित्
5. विपरीतार्थक शब्द लिखें --
सयाना, उत्तर, निर्बलता, व्यवहार, स्वाध्याय, वास्तविक, अकारण

**शब्द निधि :**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| स्पृहणीय | : | जिसकी कामना की जाए | नितांत | : | बिलकुल |
| फलीभूत | : | सफल, निष्कर्ष प्राप्त | पारितोषिक | : | पुरस्कार |
| सर्वव्यापी | : | हर जगह व्याप्त | फानी | : | विलुप्त हो जाने वाली |

# जगदीशचंद्र माथुर

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 16 जुलाई 1917 । |
| निधन | : | 14 मई 1978 । |
| जन्म-स्थान | : | शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश । |
| शिक्षा | : | एम० ए० ( अंग्रेजी ), इलाहाबाद विश्वविद्यालय । 1941 में आई० सी० एस० परीक्षा उत्तीर्ण । प्रशिक्षण के लिए अमेरिका गए और उसके बाद बिहार में शिक्षा सचिव हुए । |
| कार्य | : | सन् 1944 में बिहार के सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक उत्सव वैशाली महोत्सव का बीजारोपण किया । ऑल इंडिया रेडियो में महानिदेशक रहे, फिर सूचना और प्रसारण मंत्रालय में हिंदी सलाहकार के पद पर भी कार्य किया । हार्वर्ड विश्वविद्यालय के विजिटिंग फेलो रहने के अतिरिक्त अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों से जुड़े थे । |
| सम्मान | : | विद्या वारिधि की उपाधि से विभूषित, कालिदास अवार्ड और बिहार राजभाषा पुरस्कार से सम्मानित । |
| कृतियाँ | : | 1936 में प्रथम एकांकी 'मेरी बाँसुरी' का मंचन व 'सरस्वती' में प्रकाशन । पाँच एकांकी नाटकों का संग्रह 'भोर का तारा' 1946 में प्रकाशित । इसके बाद 'ओ मेरे सपने' ( 1950 ), 'मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी', 'कोणार्क' ( 1951 ), 'बंदी' ( 1954 ), 'शारदीया' ( 1959 ), 'पहला राजा' ( 1969 ), 'दशरथ नंदन' ( 1974 ) 'कुँवर सिंह की टेक' ( 1954 ) और 'गगन सवारी' ( 1958 ) के अलावा दो कठपुतली नाटक भी लिखे । 'दस तस्वीरें' और 'जिन्होंने जीना जाना' में रेखाचित्र और संस्मरण हैं । 'परंपराशील नाट्य' ( 1960 ) उनकी समीक्षा दृष्टि का परिचायक है । 'बहुजन संप्रेषण के माध्यम' जनसंचार पर विशिष्ट पुस्तक और 'बोलते क्षण' निबंध संग्रह है । |

जगदीशचंद्र माथुर एक प्रतिभाशाली लेखक, नाटककार, संस्कृतिकर्मी एवं प्रशासक थे । उनका कार्यक्षेत्र बिहार था और वे साहित्य-संस्कृति के संसार में बिहार की ही विशिष्ट प्रतिभा के रूप में जाने जाते थे । इतिहास, संस्कृति, परंपरा और लोकवार्ता की भूमिका उनके दृष्टिकोण के निर्माण में आधारभूत थी । नाटक और उसके बहुविध शास्त्रीय एवं लोकरूप हमेशा उनके आकर्षण के केंद्र में रहे । उनके नाट्यलेखन में रंगमंच की कल्पनाशील सक्रिय चेतना समाहित थी । इसका प्रमाण उनकी छोटी-बड़ी तमाम नाट्य कृतियाँ हैं जो मंचन और अभिनेयता की दृष्टि से सफल मानी जाती हैं ।

श्री माथुर के लेखन में रचना भूमि का दायरा आपेक्षिक रूप से सीमित और छोटा है, उसमें प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण और अनुभव की शायद न्यूनता भी है जिसे वे अध्ययन, कल्पना आदि के द्वारा पूरा करते हैं; किंतु उनके साहित्य में संकीर्णता कहीं नहीं आने पाई । इसके बदले विस्मयजनक रूप में एक संवेदनशील उदार दृष्टिकोण उनके लेखन में प्रकट होता है और परिष्कृत रुचि के इस लेखक के साहित्य को ऊँचाई प्रदान करता है । श्री माथुर ने लिखना प्रायः चौथे दशक में ही शुरू कर दिया था किंतु उन्होंने एक मनस्वी लेखक के रूप में अपनी पहचान नेहरू युग में बनाई ।

उनके लेखन के बहुलांश पर नेहरूयुग की कल्पनाशीलता, नवनिर्माण चेतना तथा आधुनिक वैज्ञानिक परिदृष्टि की छाप है । तदनुरूप वे जीवन और रचना दोनों में एक सुव्यवस्था, सुरुचि और कलात्मकता को आवश्यक मानते थे । सौंदर्यप्रियता और लालित्यबोध उनकी अभिरुचि के अंग थे । इन बातों को उनकी नाट्य रचनाएँ विश्लेषणों में सिद्ध करती दिखलाई पड़ती हैं तथा उनके संस्मरण विशेष रूप में प्रमाणित करते हैं । ये संस्मरण किन व्यक्तियों के हैं और उनके किन गुणों, प्रसंगों अथवा व्यक्तित्व-चरित्र के पक्षों को लेखक स्मरण करता है; स्मरण करने की शैली और स्मृतियों के संप्रेषण की भाषा क्या है, यह सब देखना बहुत दिलचस्प है । इसलिए भी कि इससे लेखक के अपने बारे में बहुत कुछ अंतरंगतापूर्वक व्यक्त होता है ।

जगदीशचंद्र माथुर ने कुछ ललित, व्यक्ति व्यंजक या रम्य निबंध भी लिखे हैं । ये निबंध व्यक्ति, भाव और वस्तु प्रधान हैं । इनमें से एक निबंध उनकी पुस्तक 'बोलते क्षण' से यहाँ प्रस्तुत है जिसमें उनकी तीनों कोटियों के निबंधों का समाहार हो जाता है । यह निबंध 'सदानीरा' गंडक को निमित्त बनाकर लिखा गया है पर उसके किनारे की संस्कृति और जीवन प्रवाह की अंतरंग झाँकी पेश करता हुआ जैसे स्वयं गंडक की तरह ही प्रवाहित होता दिखलाई पड़ता है ।

◆ ◆ ◆

**"अजीब है यह पानी । इसका अपना कोई रंग नहीं, पर इंद्रधनुष के समस्त रंगों को धारण कर सकता है । इसका अपना कोई आकार नहीं, पर असंख्य आकार ग्रहण कर सकता है । इसकी कोई आवाज नहीं, पर वाचाल हो उठता है तो इसका भयंकर वज्र निनाद दूर-दूर तक गूँज उठता है । गतिहीन है, पर गतिमान होने पर तीव्र वेग धारण करता है और उन्मत्त शक्ति और अपार ऊर्जा का स्रोत बन जाता है । उसके शांत रूप को देखकर हम ध्यानावस्थित हो जाते हैं तो उग्र रूप को देखकर भयाक्रांत । जीवनदायिनी वर्षा के रूप में वरदान बनकर आता है तो विनाशकारी बाढ़ का रूप धारण कर जल-तांडव भी रचता है । अजीब है यह पानी !"**

**– अमृतलाल वेगड़**

# ओ सदानीरा

बिहार के उत्तर-पश्चिम कोण में चंपारन क्षेत्र की भूमि पुरानी भी है और नवीन भी । हिमालय की तलहटी में जंगलों की गोदी से उतारकर मानव, मानो शैशव-सुलभ अंगों और मुस्कान वाली धरती को, ठुमक-ठुमककर चलना सिखा रहा है । नए खेत, नई पैदावार और बीच-बीच में पलाश, साल एवं अन्य जंगली वृक्षों की भटकी सी पाँतें । दूर-दूर तक समतल की गई भूमि, ट्रैक्टर की आतुर अंगुलियों ने मानो जिसे परिहतवसना कर दिया है । तभी तो लाज से सिकुड़ी सी इन नदियों में जल नाममात्र को रह गया है ! बालू की डगरों के बीच खोई सी रह गई हैं ये धाराएँ जो कभी वनश्री के ढके वक्षस्थल में किलकती रहती थीं !

अब वे किलकती नहीं हैं । या तो लाज में गड़ी निस्पंद सरकती रहती हैं, या बरसात के दिनों उन्मत्तयौवना वीरांगनाओं की भाँति प्रचंड नर्तन करती हैं । मसान, सिकराना, पंडई भुजाएँ फैला-फैलाकर उसी मानव के पौरुष को ललकारती हैं जिसने उन्हें निर्वसन किया है । सन् बासठ की बाढ़ का दृश्य जिन्होंने देखा उन्हें 'रामचरितमानस' में कैकेयी के क्रोधरूपी नदी की बाढ़ की याद आई होगी ।

लेकिन ढाई हजार वर्ष पहले जब गौतम बुद्ध इन नदियों के किनारे-किनारे पाटलिपुत्र से मल्लों, मौर्यों और शाक्यों को उपदेश देने जाया करते थे तब ये नदियाँ संयमित थीं । घना जंगल था और वृक्षों की जड़ों में पानी रुका रहता था । बाढ़ आती थी पर इतनी प्रचंड नहीं । पिछले छह-सात सौ साल में महावन, जो चंपारन से गंगा तक फैला हुआ था, कटता चला गया ऐसे ही जैसे अगणित मूर्तियों का भंजन होता गया । वृक्ष भी प्रकृति देवी, वनश्री की प्रतिमाएँ हैं । वसुंधराभोगी मानव और धर्मांधमानव–एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

एक कहानी सुनी । यहाँ बारहवीं सदी से लगभग तीन सौ वर्ष तक कर्णाट वंश का राज्य था । प्रथम राजा नान्यदेव, चालुक्य नृपति सोमेश्वरपुत्र विक्रमादित्य के सेनापति, नेपाल और मिथिला की विजय यात्रा पर आए और फिर यहीं बस गए । इस तरह सुदूर दक्षिण का रक्त और संस्कृति इस प्रदेश की निधि बने । कितने लोग इतिहास की इस कीमियाई प्रक्रिया से परिचित हैं ? कर्णाट वंश के राजा हरिसिंहदेव को 1325 ई० में मुसलमान आक्रमणकारी गयासुद्दीन तुगलक का मुकाबला करना पड़ा । विशाल आक्रमणकारी सेना जंगल के किनारे खड़ी थी । हरिसिंहदेव का दुर्ग वन की गहराई में निश्चल छिपा हुआ था । वह घना वन मजबूत और मोटी प्राचीरों से अधिक दुर्भेद्य जान पड़ा । सुलतान घोड़े से उतरा और तलवार से उसने एक विशाल विटप के तने पर आघात किया । उसके गिरते ही बिजली सी दौड़ गई उसके

सैनिकों में, और हजारों तलवारें घने वन के वृक्षों पर टूट पड़ीं । देखते ही देखते जंगल के बीच राह खुलती चली गई । हरिसिंहदेव का गढ़ अपना घोंसला खो बैठा और उन्हें नेपाल भाग जाना पड़ा ।

तब से जंगल जो कटने शुरू हुए तो कटते ही आ रहे हैं । नीचे धरती उपजाऊ मिलती है, राशि-राशि शस्यों की खान, जहाँ बीज डालने भर की दरकार है । घने जंगलों की स्मृति में मानो पैदावार ललक उठती है । यों चाहे सात सौ वर्ष पूर्व आक्रमणकारी की तलवार ने जंगी के द्वार खोले थे, अब तो हल और ट्रैक्टर ही धरती के खजाने को अनावृत कर रहे हैं ।

इस धरती के निवासी भी प्राचीन और नवीन के मिश्रण हैं । जान पड़ता है, आदिकाल से आने-जानेवालों का ताँता बँधा रहा है । जंगल से छीनी गई धरती को जोतने के लिए पुष्ट हाथ प्रायः बाहर से ही आते रहे । पिछले पाँच-सात सौ वर्षों में थारू और धाँगड़ जातियाँ यहाँ आकर बसीं । थारुओं के उद्‌भव के विषय में अनेक मत हैं । वे लोग अपने को आदिवासी नहीं मानते; थारू शब्द को थार-राजस्थान से निकला मानते हैं ।

धाँगड़ों को 18वीं शताब्दी के अंत में लाया गया, नील की खेती के सिलसिले में । ये लोग दक्षिण बिहार के छोटा नागपुर पठार से लाए गए और वहाँ की आदिवासी जातियों-ओराँव, मुंडा, लोहार इत्यादि-के वंशज हैं । 'धाँगड़' शब्द का अर्थ ओराँव भाषा में है-भाड़े का मजदूर । इनके लोकगीतों में दो सौ वर्ष पूर्व के उस महाप्रस्थान की कथा बिखरी पड़ी है जब नील के खेतों पर काम करने के लिए अंग्रेज साहब और रामनगर के तत्कालीन राजा इन्हें यहाँ लाए और उसके बाद बरसों तक इन्हें लगभग गुलामी का जीवन बिताना पड़ा । आपस में धाँगड़ मिश्रित ओराँव भाषा में बात करते हैं और दूसरों से भोजपुरी या मधेसी में । दक्षिण बिहार के गया जिले से भुइँया लोग भी इसी भाँति नील की खेती के लिए हिमालय की इस तलहटी में लाए गए । ये आदिवासी नहीं हैं । संभवतः मुसहर वर्ग के अंग हैं । इन कर्मठ मजदूरों से नील कोठियों के साहब दासों की भाँति काम लेते थे, किंतु संपदा में भागी ये कभी न बन पाए ।

आनेवालों का ताँता बँधा ही रहा है । आक्रमणकारियों से त्रस्त राजकुल के वंशज, आजीविका के खोजी आदिवासी और हरिजन मजदूर, उर्वरा भूमि से संपदा प्राप्त करने के अभिलाषी पछाँही जमींदार तथा वे गोरे साहब, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के इस अज्ञात से कोने में अपना निजी वैभवशाली साम्राज्य स्थापित कर रखा था, सभी को आश्रय दिया इस भूमि ने ।

पिछले दस-बारह वर्षों में एक नया त्रस्त समुदाय यहाँ आया; पूर्वी बंगाल के शरणार्थी । चंपारन में शायद पहला प्रयास किया गया, पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों को निश्चित योजना के अनुसार बसाने का। थारुओं और धाँगड़ों के बीच यह शस्य-श्यामला भूमि उनकी भी धातृ बनी है । बिछुड़ी माता के सुखद संस्पर्श की स्मृति धान के खेतों में इन्हें मिली और हिमालय की पदस्थली पर मानो गंगासागर ने चरणोदक उंडेला । इतिहास की उंगलियाँ ऐसी वीणा पर थिरकीं जिसकी हर झंकार एक अलग स्मृति की प्रतिध्वनि है ।

उस दिन चंपारन के एक सुदूर गाँव में इस वीणा की विविध रागिनी सुनने को मिली । थारुओं की अनुपम गृहकला, धाँगड़ों का नर्तन, पूर्वी बंगाल के पुनर्वासित किसानों के करुण कीर्तन ।

यद्यपि मेरे अनुरोध पर एक देहाती प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था, तथापि थारुओं की कला

मूलत: उनके दैनिक जीवन का अंग है । जिस पात्र में धान रखा जाता है वह सींक का बनाया जाता है, कई तरह के रंगों और डिजाइनों के साथ । सींक की रंग-बिरंगी टोकरियों के किनारे सीप की झालर लगाई जाती है । झोंपड़ी में प्रकाश के लिए जो दीपक है उसकी आकृति भी कलापूर्ण है । शिकारी और किसान के काम के लिए जो पदार्थ मूँज से बनाए जाते हैं, उनमें भी सौंदर्य और उपयोगिता का अद्भुत मिश्रण दीख पड़ा । किंतु सबसे मनोहर था नववधू का एक अनोखा अलंकरण जो मात्र आभूषण ही नहीं है । हर पत्नी दोपहर का खाना लेकर पति के पास खेत में जाती है । नववधू जब पहली बार इस कर्त्तव्य को निबाहने जाती है तो अपने मस्तक पर एक सुंदर पीढ़ा रखती है जिसमें तीन लटें-वेणियों की भाँति लटकी रहती हैं । हर लट में धवल सीपें और एक बीजविशेष के सफेद दाने पिरोए होते हैं । पीढ़े के ऊपर सींक की कलापूर्ण टोकरी में भोजन रखा होता है । टोकरी को दोनों हाथों से सँभाले जब लाज भरी, सुहागभरी वधू धीरे-धीरे खेत की ओर अपने पग बढ़ाती है तो सीप की वेणियाँ रजत-कंकणों की भाँति झंकृत हो उठती हैं और सारा गाँव जान लेता है कि वधू अपने प्रियतम को कलेउ कराने जा रही है ।

इस मधुर और स्निग्ध संस्कृति की अपेक्षा धाँगड़ों का सामाजिक जीवन अधिक प्रखर और उल्लासपूर्ण है । स्त्री-पुरुष दोनों ढलती शाम के मंद प्रकाश में सामूहिक नृत्य करने लगे । ओराँव नृत्य से मिलते-जुलते ही नृत्य होते हैं धाँगड़ों के । किंतु कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं । मर्द अपने दाहिने हाथ में रंगीन रूमाल लिए उसे हिलाते जाते हैं । यह नेपाल का प्रभाव जान पड़ता है । गीतों में कल्पना और चित्रोपमता अधिक जान पड़ी । भाषा में भोजपुरी और ओराँव का मिश्रण था । नृत्य के बीच-बीच में कुछ लड़के तरह-तरह के पशुओं की आकृति बनाकर आते हैं और गीतों की मधुर व्यंजना के बीच प्रहसन की छवि दिखा जाते हैं । रीछ, शेर, हिरण इन निसर्ग प्रेमी नर्तकों के बीच हिल-मिल कुदक रहे हैं । लगा कि सदियों की नागरिक सभ्यता के अनगिनती पर्दे उठ गए और निर्बंध नर-नारियों की आदिम किंतु सुषमा भरी झाँकी मिली ।

और उसके बाद पूर्वी बंगाल के कीर्तन, गंभीर, विषादपूर्ण वातावरण में अनादिगूंज का स्रोत बह निकला । भागीरथी के नाविकों की याद प्रतिध्वनित होने लगी चंपारन के खलिहानों और जंगलों में । बरसों बाद शायद इन कीर्तनों की ऊर्ध्व तानें छोटी होती जाएँ; शायद इनका विषाद, स्मृति की रेखाएँ मलीन हो जाएँ और उल्लास की कड़ियाँ मुखर हो उठें ।

उल्लास ! रात बीत चली और दिवस का संघर्ष अँधेरे के पर्दे के पीछे सजग हो उठा । धरती देती है किंतु यहाँ का जन-जीवन समृद्ध नहीं बन सका । बेतिया राज की जमींदारी में तो अंग्रेज ठेकेदार बन गए और उन्नीसवीं सदी में नील की खेती का विस्तार किया । नील से ही उन दिनों रंग बनते थे और इसीलिए नील की पाश्चात्य देशों में बहुत माँग थी । लाखों की संपदा उन अंग्रेज ठेकेदारों के हाथ लगी किंतु रैयत का कोई लाभ नहीं हुआ । बेतिया राज से बहुत कम अदायगी पर हजारों एकड़ जमीन इन गोरे ठेकेदारों ने ली । ठेठ देहात में उनकी भव्य कोठियाँ खड़ी हो गईं । किसानों से जबरदस्ती नील की खेती कराई गई । हर बीस कट्ठा जमीन में तीन कट्ठा नील की खेती के लिए हर किसान को रखना लाजिमी था । 20वीं सदी के प्रारंभ में जब केमिकल रंगों के ईजाद होने पर नील की माँग कम हो गई तब भी यह जबरदस्ती चलती रही और तिनकठिया से छूट पाने के लिए किसानों को मजबूर किया गया कि वे मोटी रकमें गोरे ठेकेदारों को दें । चंपारन और कुछ आसपास के इलाकों में इन निलहे साहबों का निष्कंटक

साम्राज्य था उन दिनों । जिस रास्ते पर साहब की सवारी जाती उस पर हिंदुस्तानी अपने जानवर नहीं ले जा सकते थे । यदि किसी रैयत के यहाँ उत्सव या शादी-विवाह होते तो साहब के यहाँ नजराना भेजना पड़ता; साहब बीमार पड़ता तो रैयतों से इलाज के लिए वसूली होती; साहब हाथी खरीदता तो रैयत को अपनी गाढ़ी कमाई में से कुछ न कुछ देना होता । अमोलवा कोठी के साहब का नाम था एमन । भीषण आतंक था एमन साहब का । किसी भी रैयत की झोंपड़ी में आग लगा देना, किसी को जेल में ठूँस देना यह सब रोज का काम था । तत्कालीन शासन निलहे गोरों के हाथ का पुतला था । उन दिनों उत्तर बिहार में दौरा करने वाले अफसरों के लिए देहात में डाकबंगले नहीं बनते थे । वे सभी साहबों की कोठियों में ठहरते थे । दक्षिण बिहार के बागी विचारों का असर चंपारन में देर से पहुँचे इसीलिए गंगा पर पुल बनाने की स्कीम में तत्कालीन शासन ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई और यों बरसों तक चंपारन में गोरे निलहों का राज ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में पनपता रहा ।

और आतंक और दैन्य, समृद्धि और बेबसी के उस आलम में सन् 1917 के अप्रैल मास में एक बिजली सी कौंधी । चंपारन में गाँधीजी के चमत्कार की कथा स्वयं राजेंद्र बाबू ने लिखी है । स्वातंत्र्य युद्ध के महानाटक के उस नांदीपाठ में मानो सूत्ररूप में संघर्ष और विजय की सारी गाथा ही समा गई । यहाँ उसका ब्यौरा नहीं लिखूँगा । पर मई सन् 62 में मुझे एक अभूतपूर्व सौभाग्य प्राप्त हुआ । मैं तीर्थयात्रा पर निकला, उन सभी स्थानों की रज लेने जहाँ गाँधीजी ने सन् 1917 का अभियान किया था । उस तीर्थयात्रा में मुझे सत्संग मिला कुछ उन महानुभावों का जो सन् 17 में गाँधीजी के साथ थे । सोने में सुहागा । मोतिहारी में मिले थे श्री रामदयाल साह, गाँधीजी के रहने-सहने का प्रबंध जिनके हाथों हुआ था एवं श्री हरवंस सहाय जो मुजफ्फरपुर से मोतिहारी गाँधीजी के साथ गए थे और उन वकीलों में थे जो उस आंदोलन में उनके सलाहकार रहे । लौटने पर मुजफ्फरपुर में श्री रामनौमी प्रसाद से मुलाकात और देर तक बातें हुईं । रामनौमी बाबू और राजेंद्र बाबू उन दिनों गाँधीजी के साथियों में अग्रगण्य थे । जिस तेजस्वी किसान के आग्रह पर गाँधीजी ने चंपारन जाना स्वीकार किया, वह राजकुमार शुक्ल सन् 17 के पहले से ही श्री रामदयाल साह, श्री रामनौमी प्रसाद और श्री हरवंश सहाय इत्यादि के संपर्क में आया था । राजकुमार शुक्ल की सन् 30 के आसपास मृत्यु हो गई ।

किंतु मेरा अविस्मरणीय अनुभव रहा सुदूर भितिहरवा गाँव में । यह गाँव अमोलवा के निकट है जहाँ सन् 17 में एमन साहब की तूती बोलती थी । जब गाँधीजी चंपारन की रैयत को भय और अत्याचार के चंगुल से बचाने का प्रयत्न कर रहे थे तब उन्होंने ग्रामीण जनता की सामाजिक अवस्था के सुधार का भी श्रीगणेश किया । श्री रामनौमी प्रसाद ने बताया कि एक दिन किसी गाँव में किसानों की शिकायतों का अध्ययन करने गाँधीजी जा रहे थे उनके साथ । दूर जाना था । हाथी पर दोनों सवार थे । कड़ी धूप थी । तभी गाँधीजी ने ग्रामों की दुरवस्था को दूर करने में शिक्षा की महत्ता पर अपने विचार प्रकट किए । उन्होंने कहा कि जब तक ग्रामीण बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं होगी तब तक केवल आर्थिक समस्याओं को सुलझाने से काम नहीं चलेगा । उन्होंने कहा कि वे चंपारन में कुछ ग्रामीण विद्यालयों की स्थापना करना चाहते हैं । थोड़े दिन बाद उन्होंने तीन गाँवों में आश्रम विद्यालय स्थापित किए–बड़हरवा, मधुबन और भितिहरवा । कुछ निष्ठावान कार्यकर्ताओं को तीनों गाँवों में तैनात किया । वे कार्यकर्ता आए गुजरात और महाराष्ट्र से । बड़हरवा का विद्यालय विदेश में शिक्षाप्राप्त इंजीनियर श्री बवनजी गोखले और उनकी विदुषी

पत्नी अवंतिकाबाई गोखले ने चलाया । साथ में देवदास गाँधी भी थे । मधुबन में गाँधीजी ने गुजरात से नरहरिदास पारिख और उनकी पत्नी तथा अपने सेक्रेटरी महादेव देसाई को भेजा । कुछ दिन आचार्य कृपलानी भी वहाँ रहे । भितिहरवा के अध्यक्ष थे वयोवृद्ध डॉक्टर देव और सोमन जी । बाद में वहाँ पुंडलीक जी गए । स्वयं कस्तूरबा भितिहरवा आश्रम में रहीं और इन कर्मठ और विद्वान स्वयंसेवकों की देखभाल करती रहीं ।

इन विद्यालयों का आदर्श क्या था ? इस बारे में गाँधीजी ने एक पत्र लिखा चंपारन के तत्कालीन अंग्रेज कलक्टर को, जिससे शिक्षा संबंधी उनके आदर्शों पर प्रकाश पड़ता है । ".....मैंने इन स्कूलों में किसी तरह का नपा-तुला पाठ्यक्रम चालू नहीं किया है, क्योंकि मैं तो पुरानी लीक से हटकर चल रहा हूँ । वर्तमान शिक्षा पद्धति को तो मैं खौफनाक और हेय मानता हूँ । छोटे बच्चों के चरित्र और बुद्धि का विकास करने के बजाय यह पद्धति उन्हें बौना बनाती है । अपने प्रयोग में वर्तमान पद्धति के गुणों को ग्रहण करते हुए मैं उसके दोषों से बचने की चेष्टा करूँगा । मुख्य उद्देश्य यह होगा कि बच्चे ऐसे पुरुष और महिलाओं के संपर्क में आएँ जो सुसंस्कृत हों और चरित्र जिनका निष्कलुष हो । मैं तो इसे ही शिक्षा मानता हूँ । अक्षरज्ञान तो इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक साधन मात्र है । जीविका के लिए जो बच्चे नए साधन सीखना चाहते हैं उनके लिए औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी । इरादा यह नहीं है कि शिक्षा पा लेने के बाद ये बच्चे अपने वंशगत व्यवसायों को छोड़ दें । जो ज्ञान वे स्कूल में प्राप्त करेंगे उसका उपयोग खेती और ग्रामीण जीवन को परिष्कृत करने में होगा ।" कुछ ही समय के लिए सही, गाँधीजी के इन आदर्शों को भितिहरवा में भी कार्यान्वित करने की चेष्टा की गई ।

उसी भितिहरवा में मैं पहुँचता हूँ और मेरा भाग्य देखिए कि उसी दिन वहाँ मौजूद थे श्री पुंडलीक जी । सन् 17 में इन्हीं पुंडलीक जी को गाँधीजी ने बेलगाँव से बुलाया, भितिहरवा आश्रम में रहकर बच्चों को पढ़ाने के लिए और ग्रामवासियों के दिल से भय दूर करने के लिए । वे लगभग एक साल रहे और फिर अंग्रेज सरकार ने उन्हें जिले से निर्वासित कर दिया । लेकिन इतना समय बीत जाने पर भी हर दो-तीन साल में अपने पुराने स्थान को देखने पुंडलीक जी आ जाते हैं । उनके शिष्य भी मौजूद हैं-वृद्ध हो चले हैं । किंतु पुंडलीक जी का तेजस्वी व्यक्तित्व, बलिष्ठ शरीर, दबंग आवाज साक्षी हैं उस अग्निशिखा के जिसने गाँधीजी के शीतल बंधन में बँध जाना मंजूर किया ।

पुंडलीक जी ने वह कमरा दिखाया जहाँ बैठकर गाँधीजी काम करते थे और वह मेज जिसपर शायद उन्होंने चिट्ठियाँ लिखीं । एक मठ के निकट यह आश्रम है । गाँव में गाँधीजी को आश्रय देने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ी । मठ के महंत ने एक महुए के पेड़ के नीचे जगह दी । गाँधीजी ने खटिया बिछाई और बाद में एक झोंपड़ी बनाई जिसमें डॉ० देव आकर रहे और आश्रम को चलाते रहे । उस झोंपड़ी को एमन साहब के कर्मचारियों ने जला भी दिया । बाद में वह खपरैल का भवन बना जो अब भी बहुत कुछ मौलिक अवस्था में है । कस्तूरबा यहाँ रहकर आश्रम के कार्यकर्ताओं की देखभाल करतीं । गाँधीजी प्राय: बेतिया और मोतिहारी में ही रहते ।

पुंडलीक जी के तीन-चार शिष्य भी मिले और पुंडलीक जी ने सन्' 17 के अपने रोचक अनुभवों की कथाएँ भी सुनाईं । एक दिन एमन साहब इनके आश्रम में आया । कायदा था कि साहब जब आए

तो गृहपति उसके घोड़े की लगाम पकड़े । पुंडलीक जी ने कहा, ''नहीं, उसे आना है तो मेरी कक्षा में आए; मैं लगाम पकड़ने नहीं जाऊँगा ।'' पुंडलीक जी ने गाँधीजी से सीखी निर्भीकता और वही निर्भीकता उन्होंने गाँववालों को दी । चंपारन अभियान का सबसे बड़ा वरदान यही निर्भीकता थी । आज जब हम स्वतंत्रता के वातावरण में स्वच्छंदता का भी नर्तन देखते हैं, तो शायद हम उस निरंकुशता के आतंक का अंदाज भी नहीं लगा सकते जिसकी छाया में हमारे अगणित देशवासी इन ग्रामीण अंचलों में कालयापन करते थे । गाँधीजी ने उस दुर्भेद्य अंधकार को चीर दिया ।

किंतु उसी चंपारन में उनकी दूसरी सीख को हमारा शिक्षित समाज हृदयंगम नहीं कर सका । मैंने गाँधीजी का तत्कालीन पत्र व्यवहार अंशतः पढ़ा है । एक भी वाक्य ऐसा नहीं लिखते थे जिसके तथ्य की उन्हें पूरी जानकारी न हो । अधिकांश पत्र अंग्रेज अधिकारियों को लिखे गए थे । उनके पास तरह-तरह की खबरें आतीं–अतिरंजनापूर्ण । आजकल का जमाना होता तो लोग उन खबरों को समाचारपत्रों में छापते; क्रोधपूर्ण दोषारोपण करते । किंतु गाँधीजी हर बात को तोलते, स्वयं सत्यापन करते । बिना छानबीन किए किसी भी मामले पर नहीं लिखते । समाचारपत्रों में अपनी 'एन्क्वायरी' के समाचार बहुत कम देते । किसी गाँव से अत्याचार की खबर आती तो वहाँ जाकर खुद पूछ-ताछ करते या राजेंद्र बाबू, अनुग्रह बाबू, धरणीधर बाबू इत्यादि से जाँच कराते । असल में जब सन् 1916 की लखनऊ काँग्रेस में लोगों ने उनसे चंपारन की त्रस्त जनता के संबंध में प्रस्ताव रखने को कहा तो बोले, ''अपनी आँखों से देखे बिना और इन बातों की जाँच-पड़ताल किए बिना मैं इस मामले में नहीं पड़ूँगा ।'' निलहे साहब के बँगलों में जाकर उनकी बातों को भी सुनते । यही वह सत्य था जिसका आचरण उनके जीवन का संबल था ।

आज तो बिना जाँच-पड़ताल के दोषारोपण करना ही सामान्य व्यवहार है । आज तो छोटी सी बात को बढ़ाकर समाचारपत्रों एवं गुमनाम चिट्ठियों में लिख भेजना मामूली बात है । आज सत्य धूलिधूसरित पड़ा है जैसे भितिहरवा में आश्रम भी उपेक्षित है । कैसी है चंपारन की यह भूमि ? मानो विस्मृति के हाथों अपनी बड़ी से बड़ी निधियों को सौंपने के लिए प्रस्तुत रहती है । 'गाँधी निधि' गाँधीजी द्वारा पावन किए गए स्थलों में कुछ स्मारक बना रही है । लेकिन क्या यहाँ कोई तीर्थ टिक पाएँगे ?

भितिहरवा के पास ही रामपुरवा है जहाँ ध्वस्त पड़े हैं दो अशोक स्तंभ; एक पर सिंह था और दूसरे पर बैल । पुष्ट मौर्य कला के नमूने । शायद रामपुरवा कोई बौद्ध तीर्थस्थल रहा हो । गंडक नदी के किनारे कई बौद्ध स्थल हैं–कुशीनगर, लौरिया, नंदनगढ़, अरेराज, केसरिया, चानकीगढ़ और वैशाली । कुशीनगर गोरखपुर जिले में है (अब कुशीनगर स्वतंत्र जिला है) जहाँ गंडक को नारायणी कहा जाता है । अब नदी कई मील हट गई है । भगवान बुद्ध की निर्वाण शय्या की वह मूर्ति निस्संदेह विराट है । संभवतः इस मूर्ति और मंदिर का निर्माण ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में उन्हीं लोगों ने कराया जिन्होंने बोधगया का मंदिर बनवाया था । जिस स्थान पर कुशीनगर के निवासियों ने तथागत के शरीर को भस्म किया था वहाँ एक ध्वस्त स्तूप खड़ा है । तथागत की भस्म के ऊपर गंडक नदी के आसपास अनेक स्तूप बने, अनेक स्मारक बने । गंडक के पूर्वी तट पर बिहार में नंदनगढ़ का विशाल स्तूप प्राचीन स्थापत्य की अभूतपूर्व कृति है। इसका मुकाबला जावा का बरबदूर का मंदिर ही कर सकता है । अभी तक इसका काल निर्णय नहीं हो पाया है । 82 फुट ऊँचे, 1500 फुट वृत्ताकार इस स्तूप के शीर्षस्थल के निकट मैंने वह स्थान देखा जहाँ एक छत्राकार स्मारक के भीतर काँसे के बरतन में भोजपत्र पर लिखी चौथी शताब्दी की एक बौद्ध पांडुलिपि

पाई गई थी । थोड़ी ही दूरी पर अशोक का बनाया हुआ लौरिया नंदनगढ़ का सिंह स्तंभ है । मेरे विचार में यह अशोक का सबसे कलापूर्ण स्तंभ है । लेख भी स्पष्ट है । इस लेख, और उससे कुछ दक्षिण में अरेराज स्तंभ पर अंकित लेखों में शासन के सिद्धांतों का प्रतिपादन है । महामात्रों को जनता के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका आदेश है । पशुवध की मनाही की गई है, तत्कालीन कमिश्नरों को अपने कर्त्तव्य और आदर्शों की याद दिलाई गई है । आजकल का कमिश्नर, मैं, गगनस्पर्शी सिंह की भंगिमा और उसके नीचे खुदे लेखों को देखते-देखते मानो 2200 वर्ष पहले के प्रतापी किंतु करुणार्द्र स्वर की प्रतिध्वनि सुन पा रहा हूँ । वह स्वर आज भी कितना खरा है, आज के अधिकारी वर्ग के लिए भी कितना चुनौतीपूर्ण है !

लौरिया नंदनगढ़ से ही एक नदी रामपुरवा और भितिहरवा होते हुए उत्तर में नेपाल के निकट भिखनाथोरी तक जाती है । नाम है पंडई नदी और शायद इसी के सहारे भगवान बुद्ध और बाद में अनेक भिक्खु (भिखना शब्द से साम्य देखिए) जाते थे लुम्बिनी और नेपाल । फाह्यान और ह्वेनसांग भी इसी पथ से आए थे । लौरिया नंदनगढ़ निश्चय ही एक विशाल पावन स्थल रहा होगा । अनेक टीले खुदाई की प्रतीक्षा में सदियों का रहस्य अपने हृदय में छुपाए पड़े हैं ।

लौरिया के दक्षिण में अरेराज, अरेराज के दक्षिण में केसरिया और फिर वैशाली । यही तो वह पथ था जिससे भगवान बुद्ध अपनी अंतिम यात्रा पर गए थे । अपनी परम प्रिय नगरी, गणतंत्री लिच्छवियों की राजधानी वैशाली में अंतिम दर्शन के लिए भगवान ने अपने समस्त शरीर को गजराज की तरह घुमाया और बोले, "आनंद, तथागत का यह अंतिम दर्शन है ।" लिच्छवी रास्ता रोककर खड़े हो गए । बीच में नदी आ गई । तथागत ने अपना भिक्षापात्र उन्हें दे दिया । इसी वैशाली में अंबपाली ने तथागत को अपना आम्रकानन समर्पित किया था । और इसी वैशाली में जैन धर्म के तेजस्वी तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ था । आज जैन समाज अपनी इस पुण्य धरोहर को भूल गया है । ऐसे ही जैसे पौराणिक धर्मावलंबी हिमालय की तलहटी में भैंसालोटन की महत्ता को भूल से गए हैं । जहाँ हिमालय की छोटी पहाड़ियों के बीच गंडक चट्टानी दीवारों के बीच गुजरती है, वहाँ मैंने देखा घड़ियालों का निवास स्थल । किंवदंती है कि गज-ग्राह की लड़ाई वहीं शुरू हुई । पंचनद नदी गंडक से वहीं मिलती है । पंचनद के कुछ ऊपर तमसा नदी मिलती है । वहीं शायद वाल्मीकि आश्रम है । अनेक ध्वस्त मूर्त्तियाँ बिखरी पड़ी हैं । इस गंडक के सहारे-सहारे चलिए तो एक सौ तिहत्तर मील की दूरी पर पटना के सामने सोनपुर के निकट गंडक-गंगा के संगम पर हरिहरक्षेत्र मिलेगा जहाँ, कहते हैं, गज-ग्राह युद्ध समाप्त हुआ और गज का संकटमोचन हुआ ।

वर्तमान और अतीत की आद्यंतहीन कड़ी है गंडक नदी । न जाने कितने महात्माओं और संतों ने इसके किनारे तप और तेज पाया, किंतु गंडक कभी गंभीर न बन सकी और इसीलिए इसके किनारे तीर्थस्थल भी स्थाई न रह सके । हिमालय के चरणों में त्रिवेणी (भैंसालोटन) से लेकर सोनपुर के हरिहरक्षेत्र तक गंडक के किनारों पर ऐसे तीर्थों की मानो समाधियाँ बिखरी पड़ी हैं जो शायद अवसर मिलने पर अयोध्या, हरिद्वार, मथुरा, काशी बन जाते । पर गंडक तो उच्छृंखल कन्या ही रही–ज्येष्ठा–सहोदरा गंगा का गांभीर्य इसे सुहाया ही नहीं ।

तब अतीत की कौन स्मृतियाँ गंडक ने छोड़ी हैं ? भवन नहीं, मंदिर नहीं, घाट नहीं । हवाई जहाज से गंडक घाटी के दोनों ओर नाना आकृति के ताल दीख पड़ते हैं, कहीं उथले कहीं गहरे किंतु प्रायः सभी

शस्य-श्यामला धरती रूपी गगन के विशाल अंतस् में ठिठकी हुई बदहालियों की भाँति टेढ़े-मेढ़े, परंतु शुभ्र एवं निर्मल । इन तालों को कहते हैं चौर और मन । चौर उथले ताल हैं जिनमें पानी जाड़ों और गर्मियों में कम हो जाता है और खेती भी होती है । मन विशाल और गहरे ताल हैं । 'मन' शब्द मानस का अपभ्रंश है । गंडक के उच्छृंखल नर्तन के समय बिखरे हुए आभूषण हैं मानो ये मन और चौर । बाढ़ आई, तटों का उल्लंघन कर नदी ने दूसरा पथ पकड़ा । पुराने पथ पर रह गए ये चौर और मन जिनकी गहराई तल को स्पर्श कर धरती के हृदय से स्रोत को फोड़ लाई । वही मानस बन गए ।

ऐसा ही एक ताल है सरैयामन । बेतिया नगर से 4 मील दूर कच्ची और ऊबड़-खाबड़ सड़क से हम लोग पहुँचे एक मनोरम जंगल के किनारे । त्रयोदशी का चाँद अपना साम्राज्य फैलाए हुए था । बेतिया राज ने इस जंगल को सुरक्षित रखा और अब यह 130 एकड़ रकबे का अभय क्षेत्र है–जंगल विभाग की ओर से सागौन, युकलिप्टस, आम इत्यादि के वन लगाए जा रहे हैं । एक नर्सरी भी है किंतु प्राचीन जंगल को भी सुरक्षित रखे जाने की कोशिश की जा रही है । एक मील वनपथ पर चलने के बाद हम मन के किनारे पहुँचे । विशाल ताल, बीच में द्वीप और तीन ओर जलराशि । नौकाविहार को निकले । नन्हीं लहरियों पर चाँदनी के प्रतिबिंब खद्योत बार-बार झलक दिखाकर अंतर्धान हो जाते । नौका आगे बढ़ी । सामने रजतराशि-निस्सीम; बाईं तरफ द्वीप और कमलपत्र और दाएँ घने वृक्ष जिनकी छाया मानो नौका को ग्रसने को आतुर थी । बीच धारा में पहुँचने पर नाविकों ने कहा, "जल पीजिए, बड़ा स्वास्थ्यवर्धक है ।" बात यह है कि शताब्दियों से यहाँ किनारे पर लगे जामुन के वृक्ष समूहों से जामुन के अगणित फल गिरते रहे हैं और इस तरह सरैयामन के जल का वैद्यक सिद्धांत के अनुसार शोध होता रहता है । बेतिया नगर से अनेक अमीर बीमार इस जल को घड़ों में मँगाते हैं ।

सरैयामन का जल स्थिर है, निबद्ध है किंतु गंडक नदी का जल तो सदियों से चंचल रहा है । जिसने इतने तीरथ तोड़े, क्या वह कोई वरदान दे सकेगी उन असंख्य प्राणियों को जो इसकी घाटी में संघर्ष और अभाव का जीवन बिताते रहे हैं ? चंपारन जिले में मोटर से घूमते हुए जहाँ मैंने इतने ध्वस्त स्तूप, मंदिर और स्तंभ देखे वहाँ एक और भी प्रकार की प्राचीरें जगह-जगह मस्तक उठाए दीख पड़ीं । ये ईंटों और पत्थरों के निरुपाय खंडहर नहीं हैं । इनपर प्राचीन लिपियों में लेख भी नहीं । लेकिन नई कुदालियों और फावड़ों की छाप, नए पौरुष की छाप है इनपर । ये प्राचीरें हैं, गंडक घाटी योजना की नहरों के तटबंध जिन्हें लाखों मजदूर तैयार कर रहे हैं । एक होगी पश्चिमी नहर–एक सौ बीस मील लंबी, जिसका साढ़े ग्यारह मील नेपाल में पड़ेंगे । साढ़े अड़सठ मील उत्तर प्रदेश (गोरखपुर और देवरिया जिले) में और शेष बिहार के सारण जिले में । पूर्वी नहर की लंबाई 155 मील होगी । इसके द्वारा नेपाल और तिरहुत के विशाल क्षेत्र की आबपाशी होगी । इसके अलावा नेपाल के लिए एक पावर हाउस भी बनेगा । भैंसालोटन से ये नहरें निकलेंगी और वहाँ लगभग 3000 फुट लंबा बराज बन रहा है जिसके ऊपर से सड़क और रेल ले जाए जाने की संभावना है । कुल मिलाकर 41.49 लाख एकड़ जमीन की आबपाशी इन नहरों से होगी। कुल व्यय होगा लगभग चालीस करोड़ रुपए ।

भैंसालोटन में भारतीय इंजीनियर जंगल के बीच इस नवीन जीवन केंद्र का निर्माण कर रहे हैं । प्राणवान विद्युत तुल्य शिराओं का जाल फैला रहे हैं । मोटरबोट गंडक के वक्षस्थल को चीरकर आगे बढ़ रही थी ओर इंजीनियर मुझे बराज और नहरों की टेक्निकल बातें समझा रहे थे । और मैं सोच रहा हूँ–शायद

युग-युगों से होती आई गज और ग्राह की लड़ाई का अंत होने जा रहा है । दैन्य और अभाव के ग्राह के विकराल मुख में फँसे जन समुदाय का संकटमोचन करने के लिए एक अजेय पौरुषयुक्त नारायण के विराट रूप का निर्माण हो रहा है । ये नहरें ही उस नारायण की अनेक भुजाएँ हैं; बिजली के तारों का जाल ही तो उसका त्राणकर्ता चक्र है । और मैं मन ही मन नमस्कार करता हूँ इन इंजीनियरों को, विश्वकर्माओं को, मजदूरों को जो भगवान के इस नूतन विराट रूप के विधाता हैं; जिनकी बुद्धि और परिश्रम की गाथा कवि और कलाकार अंकित करें या न करें लेकिन जिनकी बनाई मूर्त्तियों में प्राण का संचार होते ही सदियों से भग्न मंदिर ज्योतित हो उठेंगे ।

ओ सदानीरा ! ओ चक्रा ! ओ नारायणी ! ओ महागंडक ! युगों से दीन-हीन जनता इन विविध नामों से तुझे संबोधित करती रही है । तेरी चिरचंचल धारा ने उनकी आराधना के कुसुमों, अगणित तीर्थों को ठुकरा दिया । पर आज तेरे पूजन के लिए जिस मंदिर की प्रतिष्ठा हो रही है, उसकी नींव बहुत गहरी है । इसे तू ठुकरा न पाएगी ।

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. चंपारन क्षेत्र में बाढ़ की प्रचंडता के बढ़ने के क्या कारण हैं ?
2. इतिहास की कीमियाई प्रक्रिया का क्या आशय है ?
3. धाँगड़ शब्द का क्या अर्थ है ?
4. थारुओं की कला का परिचय पाठ के आधार पर दें ।
5. अंग्रेज नीलहे किसानों पर क्या अत्याचार करते थे ?
6. गंगा पर पुल बनाने में अंग्रेजों ने क्यों दिलचस्पी नहीं ली ?
7. चंपारन में शिक्षा की व्यवस्था के लिए गाँधीजी ने क्या किया ?
8. गाँधीजी के शिक्षा संबंधी आदर्श क्या थे ?
9. पुंडलीक जी कौन थे ?
10. गाँधीजी के चंपारन आंदोलन की किन दो सीखों का उल्लेख लेखक ने किया है । इन सीखों को आज आप कितना उपयोगी मानते हैं ?
11. यह पाठ आपके समक्ष कैसे प्रश्न खड़ा करता है ?
12. अर्थ स्पष्ट कीजिए –
    (क) वसुंधरा भोगी मानव और धर्मांधमानव–एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।
    (ख) कैसी है चंपारन की यह भूमि ? मानो विस्मृति के हाथों अपनी बड़ी से बड़ी निधियों को सौंपने के लिए प्रस्तुत रहती है ।

13. लेखक ने पाठ में विभिन्न जाति के लोगों के विभिन्न स्थानों से आकर चंपारन और उसके आसपास बसने का जिक्र किया है वे कहाँ-कहाँ से और किसलिए वहाँ आकर बसे ?
14. पाठ में लेखक नारायण का रूपक रचता है और वह सांग रूपक है । रूपक का पूरा विवरण प्रस्तुत कीजिए ।
15. नीलहे गोरों और गाँधीजी से जुड़े प्रसंगों को अपने शब्दों में लिखिए ।
16. चौर और मन किसे कहते हैं ? वे कैसे बने और उनमें क्या अंतर है ?
17. कपिलवस्तु से मगध के जंगलों तक की यात्रा बुद्ध ने किस मार्ग से की थी ?

**पाठ के आस-पास**

1. पाठ में भगवान बुद्ध से जुड़े जिन स्थानों का उल्लेख है, उन्हें मानचित्र पर दर्शाएँ ।
2. चंपारन में गाँधीजी से जुड़े स्थानों के बारे में जानकारी एकत्र करें एवं उन स्थानों की यात्रा करने का प्रयास करें ।
3. गाँधीजी ने समूचे देश को, देश के कोने-कोने को अपनी आँखों से देखा था, उनकी सर्वप्रियता और शक्ति के पीछे यह जनसंपर्क बहुत बड़ा कारण था । निश्चय ही आपके जिले में गाँधीजी से जुड़े स्थल होंगे । ऐसे पुण्य स्थलों के बारे में जानकारी एकत्र करें एवं अपनी रिपोर्ट को विद्यालय के सूचना पट्ट पर लगाएँ ।
4. जगदीशचंद्र माथुर एक कर्त्तव्यनिष्ठ अधिकारी के साथ-साथ मनीषी साहित्यकार एवं कला मर्मज्ञ भी थे । प्रतिवर्ष आयोजित होने वाला 'वैशाली महोत्सव' इनके ही सद्प्रयासों का फल है । माथुर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संबंध में आप विशेष जानकारी एकत्र करें । इनकी रचनाओं को उपलब्ध कर उन्हें पढ़ें ।
5. गाँधीजी के शिक्षा दर्शन की चर्चा इस पाठ में है । दिगंत (भाग - 1) में 'गाँव के बच्चों की शिक्षा' पाठ के अंतर्गत भी उसका उल्लेख था, गाँधीजी के शिक्षा दर्शन की वर्तमान संदर्भ में क्या उपयोगिता है ? इस विषय पर गोष्ठी आयोजित करें ।
6. नान्यदेव कौन थे ? वे कहाँ से आए थे ? बिहार में सांस्कृतिक विकास के लिए उनका क्या योगदान है ? इतिहास की पुस्तकों और शिक्षक से जानें ।
7. गंडक नदी का प्रवाहपथ क्या है ? बिहार के मानचित्र में इसे प्रदर्शित कीजिए ।
8. गज-ग्राह की कथा क्या है ? मालूम करें ।

**भाषा की बात**

1. इन पदों के समास निर्दिष्ट करें --
   सदानीरा, शस्य-श्यामला, नववधू, महानायक, तीर्थयात्रा, शिक्षाप्राप्त
2. निम्नलिखित शब्दों का संधि विच्छेद करें –
   विक्रमादित्य, चित्रोपम, निष्कंटक, उल्लास, इत्यादि
3. निम्नलिखित शब्दों से वाक्य बनाएँ –
   मलीन, कनाई, पुल, छत्रछाया, प्रबंध, आदर्श
4. रेखांकित उपवाक्यों की कोटि बताएँ --
   (क) सुलतान घोड़े से उतरा और तलवार से उसने एक विशाल विटप के तने पर आघात किया ।
   (ख) उसके गिरते ही बिजली सी दौड़ गई उसके सैनिकों में, और हजारों तलवारें घने वन के वृक्षों पर टूट पड़ीं ।
   (ग) वे लगभग एक साल रहे और फिर अंग्रेज सरकार ने उन्हें जिले से निर्वासित कर दिया ।

**शब्द निधि :**

सदानीरा : जल से सदैव परिपूर्ण नदी
तलहटी : घाटी
परिहतवसना : जिसके वस्त्र खींच लिए गए हों
वनश्री : वन की शोभा, हरियाली
निस्पंद : शांत, अचंचल, स्थिर
उन्मत्तयौवना : अल्हड़ युवती
वीरांगना : वीर स्त्री
निर्वसन : नग्न, वस्त्रविहीन
भंजन : भंग करना, तोड़ना या ध्वस्त करना
कीमियाई प्रक्रिया : रासायनिक प्रक्रिया
प्राचीर : दीवार
दुर्भेद्य : जिसके भीतर घुसना कठिन हो, जिसे ढाहना मुश्किल हो
विटप : वृक्ष
शस्य : फसल
दरकार : अपेक्षा, जरूरत
जंगी : योद्धा, लड़ाकू
अनावृत : उघाड़ा हुआ, बिना आवरण के
उद्‌भव : जन्म, पैदाइश
मधेसी : नेपाल की तराई में रहनेवाले लोग और उनकी भाषा
धातृ : पालन-पोषण करने वाली, धाय
पुनर्वासित : (पुनर्वास से) फिर से बसाया गया
कलेउ (कलेवा) : नाश्ता
स्निग्ध : कोमल, चिकनी
चित्रोपम : चित्र से जिसकी उपमा दी जाए
निसर्ग : प्रकृति, स्वभाव
रैयत : प्रजा
अदायगी : वसूली
नजराना : भेंट, उपहार
रज : धूल
हेय : घृणा और उपेक्षा के योग्य, नीच
अतिरंजनापूर्ण : बढ़ाचढ़ा कर
आम्रकानन : आम का बगीचा
आबपाशी : जल से सिंचाई

# मोहन राकेश

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 8 जनवरी 1925 । |
| निधन | : | 3 दिसंबर 1972 । |
| जन्म-स्थान | : | जंडीवाली गली, अमृतसर, पंजाब । |
| बचपन का नाम | : | मदन मोहन गुगलानी । |
| माता-पिता | : | बच्चन कौर एवं करमचंद गुगलानी (पेशे से वकील, साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से जुड़ाव)। |
| शिक्षा | : | एम० ए० (संस्कृत) लाहौर । ओरिएंटल कॉलेज, जालंधर से एम० ए० (हिंदी)। |
| वृत्ति | : | दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन । 'सारिका' के कार्यालय में नौकरी । 1947 के आस-पास एलफिंस्टन कॉलेज, मुंबई में हिंदी के अतिरिक्त भाषा प्राध्यापक । कुछ समय तक डी० ए० वी० कॉलेज, जालंधर में प्रवक्ता । 1960 में दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक । 1962 में 'सारिका' के संपादक । अंत में मृत्युपर्यंत स्वतंत्र लेखन । |
| कृतियाँ | : | इंसान के खंडहर (1950), नए बादल (1957), जानवर और जानवर (1958), एक और जिंदगी (1961), फौलाद का आकाश (1972), वारिस (1972) – सभी कहानी संग्रह ।<br>अँधेरे बंद कमरे (1961), न आनेवाला कल (1970), अंतराल (1972) – सभी उपन्यास ।<br>आषाढ़ का एक दिन (1958), लहरों के राजहंस (1963), आधे अधूरे (1969) – सभी नाटक ।<br>पैर तले की जमीन, अंडे के छिलके और अन्य एकांकी (1973) – सभी एकांकी ।<br>आखिरी चट्टान तक (यात्रा वृत्तांत) । परिवेश, रंगमंच और शब्द, कुछ और अस्वीकार, नई निगाहों के सवाल, बकलम खुद (लेख-निबंध) ।<br>मृच्छकटिकम्, अभिज्ञानशाकुंतलम्, एक औरत का चेहरा (अनुवाद) ।<br>समय सारथी (जीवनी संकलन) । मोहन राकेश की डायरी (निधनोपरांत प्रकाशित)। |
| शोध कार्य | : | 'नाटक में सही शब्द की खोज' विषय पर नेहरू फेलोशिप के अंतर्गत कार्य पूरा नहीं कर पाए। |

मोहन राकेश 'नई कहानी' आंदोलन के प्रमुख हस्ताक्षर थे । वे बीसवीं शती के उत्तरवर्ती युग के प्रमुख कथाकार एवं नाटककार थे । कथा साहित्य के अंतर्गत उन्होंने कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं । नाटक के क्षेत्र में तो वे जयशंकर प्रसाद के बाद की सबसे बड़ी प्रतिभा माने जाते हैं । आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच की युगांतरकारी प्रतिभा के रूप में वे अखिल भारतीय ख्याति अर्जित कर चुके हैं । हिंदी का आधुनिक रंगमंच उन्हें अपना प्रमुख प्रेरणा पुरुष मानता है । वे रंगकर्मी, अभिनेता या रंगनिर्देशक नहीं थे, महज नाटककार थे; किंतु उनके नाटकों की परिकल्पना इतनी ठोस, जटिल और आधुनिक रंग संकल्पना को सर्जनात्मक रूप से उत्तेजित करनेवाली थी कि आधुनिक रंगमंच का हिंदी में जो नवीन संघटन-संयोजन हुआ उस पर मोहन राकेश की निर्णायक छाप पड़ी । इतना ही नहीं, हिंदी में उनके समकालीनों में अनेक लोगों ने आधुनिक विषयवस्तु, कथ्य और रंग-ढंग के जो नाटक लिखे उनके पीछे इस क्षेत्र में अपने कार्यों से मोहन राकेश द्वारा लाई गई हलचल की प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रेरणा है ।

नाटक मुख्यत: मंच पर दृश्याभिनय के लिए ही लिखा जाना चाहिए और उसका प्रभाव केवल लिखे हुए शब्दों पर नहीं बल्कि अभिनेताओं के व्यक्तित्व, स्वर और अभिनय कुशलता पर, रंगमंच की सजावट और प्रकाश पर तथा अभिनेता एवं दर्शक के साक्षात्कार से उत्पन्न होनेवाले विशेष वातावरण पर निर्भर होना चाहिए। नाटक का लिखित रूप बहुत महत्त्वपूर्ण है, किंतु दृश्याभिनय का संपूर्ण प्रभाव देनेवाले अनेक उपकरणों में से वह केवल एक उपकरण है। इन सचाइयों को मोहन राकेश ने अपने दृष्टिपथ और चिंताकेंद्र में रखा और नए ढंग के नाटकों की रचना की। वे अपने असामयिक निधन के समय तक नाटक और रंगमंच की संश्लिष्ट भूमि से जुड़ी समस्याओं को लेकर शोधरत थे।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में पश्चिमी देशों में आधुनिक नाटकों का जन्म और विकास हुआ। तब से लेकर अब तक यूरोप और अमेरिका में नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में विपुल प्रयोग हुए। इससे नाटक और मंच दोनों ही क्षेत्रों में युगांतरकारी परिवर्तनों के अनेक चरण घटित हुए। मोहन राकेश इस विश्वपरंपरा को अपने ढंग से आत्मसात करते हुए आगे बढ़े। उनके नाट्यलेखों में मंचसज्जा या दृश्यबंध, वेशभूषा, रूपसज्जा, रंग-संगीत और प्रकाश–इन सबकी चेतना बराबर रहती आई है। उन्होंने हिंदी नाटक को अँधेरे बंद कमरों से बाहर निकालकर युगों के रोमानी ऐंद्रजालिक सम्मोहन से उबारा तथा एक नए दौर के साथ उसे जोड़कर दिखाया।

यहाँ प्रस्तुत एकांकी उनकी पुस्तक 'अंडे के छिलके तथा अन्य एकांकी' से ली गई है। एकांकी, जैसा नाम से ही स्पष्ट है, एक अंक की बहुत छोटी रचना है और उसकी तुलना प्राय: कहानी से की जाती रही है। मोहन राकेश की इस मार्मिक रचना में निम्न मध्यवर्ग की एक ऐसी माँ-बेटी की कथावस्तु प्रस्तुत है जिनके घर का इकलौता लड़का सिपाही के रूप में द्वितीय विश्वयुद्ध के मोर्चे पर बर्मा में लड़ने गया है। वह अपनी माँ का इकलौता बेटा और विवाह के लिए तैयार अपनी बहन का इकलौता भाई है। उसी पर घर की पूरी आशा टिकी हुई है। वह लड़ाई के मोर्चे से कमाकर लौटे तो बहन के हाथ पीले हो सकें। माँ एक देहाती भोली स्त्री है, वह यह भी नहीं जानती कि बर्मा उसके गाँव से कितनी दूर है और लड़ाई कैसी और किनसे किसलिए हो रही है। उसका अंजाम ऐसा भी हो सकता है कि सबकुछ खत्म हो जाए–ऐसा वह सोच भी नहीं सकती। माँ और छाया की तरह उससे लगी बेटी के भीतर की वह आशा जो बेटे से जुड़ी हुई है अनेक रूप-रंग ग्रहण करती है। उसकी संपूर्ण नाटकीयता और रंग संभावनाओं का लेखक ने सधे हाथों ऐसा उद्‌घाटन किया है कि रचना के अंत में एक अपार विषाद मन पर स्थाई प्रभाव छोड़ जाता है।

◆ ◆ ◆

> **"तू हवा और पानी का साथी है, उनके साथ मिलकर उनकी तरह ही जी–जीवन में ख्याति या प्राप्ति तेरी उपलब्धि नहीं है। तेरी उपलब्धि तेरी खोज है। खोज और जी।"**
>
> –मोहन राकेश

# सिपाही की माँ

## पात्र

| | |
|---|---|
| बिशनी | 1 लड़की |
| मुन्नी | 2 लड़की |
| कुंती | मानक |
| दीनू | सिपाही |

देहात के घर का आँगन, अँधेरा और सीलदार । आँगन के बीचोबीच एक खस्ताहाल चारपाई पड़ी है। एक और वैसी ही चारपाई दीवार के साथ रखी है । दाएँ कोने में दो-तीन मिट्टी की हंडियाँ पड़ी हैं । सामने एक लकड़ी का टूटा हुआ दरवाज़ा है, जो घर के अंदर खुलता है । दरवाजे पर एक अंगोछा और चारपाई पर एक फटी हुई धोती सूख रही है । बाईं ओर बाहर जाने का रास्ता है, जिसमें किवाड़ नहीं है ।

परदा उठने पर बिशनी चारपाई के पास मोढ़े पर बैठी चरखे पर सूत कातती दिखाई देती है । उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हैं और बाल सब सफेद हो चुके हैं । मुन्नी, उसकी चौदह बरस की लड़की, बाहर की चौखट से सटकर खड़ी है । उसकी हरे रंग की सलवार-कमीज बहुत मैली हो रही है । कुछ क्षण चरखे की आवाज और कबूतरों की गुटर-गूँ सुनाई देती है । बीच-बीच में बिशनी थोड़ा खाँस लेती है । फिर घोड़ागाड़ी के दूर से आने और रुकने का शब्द सुनाई देता है ।

मुन्नी : (पीछे की ओर मुड़कर उत्तेजित स्वर से) डाक वाली गाड़ी आ गई, माँ ! मैं अभी चिट्ठी पूछ कर आती हूँ ।

मुन्नी बाहर चली जाती है । बिशनी आँखें मूँदकर हाथ जोड़ लेती है । कबूतरों की गुटर-गूँ का स्वर पहले तेज होकर फिर मंद हो जाता है । बिशनी आँखें खोलकर दरवाजे की ओर देखती है । मुन्नी निराश और थकी सी लौटकर आती है ।

बिशनी : क्यों री, डाक वाली गाड़ी ही थी ?

मुन्नी : हाँ, डाक वाली गाड़ी ही थी !

घोड़ागाड़ी के चलने और क्रमशः दूर होने का शब्द सुनाई देता है । मुन्नी बिशनी के मोढ़े के पास फर्श पर बैठ जाती है। बिशनी के चेहरे की रेखाएँ गाढ़ी हो जाती हैं ।

बिशनी : **(ठंडी साँस लेकर)** आज भी चिट्ठी नहीं आई ! जाने भाग में क्या लिखा है ?

मुन्नी : आज सिरफ चौधरी का पिलसन का मनीआर्डर आया है । और कोई चिट्ठी नहीं आई ।

बिशनी : ये मुए जाने चिट्ठी रास्ते में रख लेते हैं कि क्या करते हैं ? मेरा मानक तो ऐसा नहीं कि दो-दो महीने चिट्ठी ही न लिखे । पहले हर पंद्रहवें रोज चिट्ठी आ जाती थी । अबकी न जाने कौन पहाड़ रास्ते में खड़ा हो गया है ? कम से कम अपनी राजी-खुशी तो लिख देता ।

मुन्नी : माँ, मेरा दिल कहता है कि अगले मंगल को भैया की चिट्ठी जरूर आएगी ।

बिशनी : तेरा दिल तो हर मंगल को कहता है, पर चिट्ठी आने का नाम नहीं लेती । जाने भाग में क्या खोट है जो चिट्ठी के लिए इतना तरसना पड़ता है । इस बार यह घर आ ले, फिर मैं इससे पूछूँगी...।

मुन्नी : पिछली चिट्ठी में भैया ने लिखा था कि वे ब्रम्मा की लड़ाई पर जा रहे हैं । माँ, शायद उन्हें लड़ाई में चिट्ठी लिखने की फुर्सत ही न मिलती हो ।

बिशनी : इतनी भी फुर्सत नहीं मिलती कि माँ को चार हरफ लिख कर डाल दे ? उसे यह नहीं पता कि मेरी चिट्ठी जाती है तो माँ के कलेजे में जान पड़ती है ? माँ के कौन दो-चार हैं जिनके सहारे वह परान लेकर बैठी रहेगी ? नदीदे को यह बात तो सोचनी चाहिए ।

**मुन्नी बिशनी के घुटने पर बाँहें फैलाकर उन पर सिर रख देती है ।**

मुन्नी : तुम फिकर क्यों करती हो, माँ ? देख लेना, अगले मंगल को चिट्ठी जरूर आएगी ।

**कुछ क्षण निःस्तब्धता । बिशनी मुन्नी को घुटने से हटा कर फिर चरखा चलाने लगती है । मुन्नी उठकर सूखी हुई धोती को चारपाई से समेटने लगती है ।**

मुन्नी : **(धोती तह करते हुए बीच में रुककर)** ब्रम्मा यहाँ से कितनी दूर होगा, माँ ?

बिशनी : चौधरी कहता था कई सौ कोस दूर है । जाने चौधरी को भी पता है या नहीं ? जब जो उसके मुँह में आता है कह देता है ।

मुन्नी : चौधरी यह भी कहता है कि वहाँ गाड़ी-मोटर नहीं जाती । पानी वाले जहाज में बैठकर वहाँ जाते हैं ।

बिशनी : यह तो मानक भी कहता था कि कलकत्ते से ब्रम्मा पानी वाले जहाज में बैठकर जाते हैं । मानक कलकत्ते के समुंदर में पानी वाले जहाज देख कर आया था ।

मुन्नी : ब्रम्मा से चिट्ठी भी तो फिर, माँ, जहाज में ही आती होगी । अगर हमारी चिट्ठी वाला जहाज डूब गया हो तो....... ?

बिशनी : ऐसी काली जबान न बोल । मुँह अच्छा न हो तो बात तो आदमी अच्छी करे । मानक कहता था कि जहाज इत्ता बड़ा होता है कि हमारे जैसे चार गाँव एक जहाज में आ जाएँ । ......इत्ता बड़ा जहाज कैसे डूब सकता है ?

मुन्नी : **(संकोच के साथ)** माँ, पता नहीं सच है या झूठ, पर चौधरी कहता था कि हर रोज कोई न

कोई जहाज डूब जाता है ।

बिशनी : चौधरी एक लड़ाई में क्या हो आया है, दुनिया भर की सारी अकल उसके पेट में आ गई है । वह यहाँ बैठा ही सब कुछ जानता है । अपनी तिरिया के चरित्तर का पता नहीं, जहाज डूबने का पता है ।

**मुन्नी धोती तह करके अंदर ले जाती है । बाहर से पड़ोसिन कुंती आँगन में आती है । अधेड़ होने पर भी उसके चेहरे पर स्वास्थ्य की लाली झलकती है ।**

कुंती : बिशनदेई, आज भी कोई चिट्ठी नहीं आई ?

बिशनी : आ कुंती !

**चरखा-पूनी अलग हटा देती है । कुंती उसके नजदीक चारपाई पर आ बैठती है ।**

कुंती : कहते हैं, आज कल ब्रम्मा में बड़े जोर की लड़ाई हो रही है ।

बिशनी : यहाँ से कौन ब्रम्मा होकर आया है ? लड़ाई का हाल वहाँ वालों को पता है कि यहाँ वालों को पता है ? चौधरी रोज घर बैठा खबरें गढ़ता रहता है, मानक आएगा तो पता चलेगा कि यह कितना बिदवान है । आज यह जो जी में आए कह ले, सब सच है ।

कुंती : बेचारा जल्दी घर वापस आ जाए और आकर बहन के हाथ पीले करे । सब सहेलियाँ तो एक-एक करके चली गईं । धन्नो भी बैसाख में चली जाएगी । बस दो महीने में ही सब कुछ करना-धरना है । ये सारा शहर ढूँढ़ आए हैं, कहीं दस गज मलमल नहीं मिली । सब चीजें जैसे विलायत चली गई हैं । ....तूने अभी इसके लिए कोई वर-घर नहीं देखा ?

बिशनी : वर-घर देखकर ही क्या करना है, कुंती ? मानक आए तो कुछ हो भी । तुझे पता ही है, आजकल लोगों के हाथ कितने बढ़े हुए हैं ।

कुंती : पर तू देख, चौदह की तो हो गई है, अब घर में रखकर और कितनी बड़ी करेगी ? मेरी धन्नो का अभी तेरहवाँ चल रहा है पर लोगों ने जान खा ली थी कि लड़की मुटियार हो गई है, अब जल्दी से इसे कहीं विदा करो । ....तू मानक के आने तक देखभाल तो कर । और जाने मानक को आने में अभी कितने दिन लगते हैं ? लड़ाई का कुछ पता है ?

बिशनी : नहीं, वह चार-छह महीने में जरूर आ जाएगा । वह कह गया था कि जल्दी से जल्दी छुट्टी लेकर मिलने के लिए आएगा । उसे गए भी सात महीने हो गए हैं ।

कुंती : हाँ, शायद चार-छह महीने में आ जाए । बिशनदेई, लड़ाई का मुँह शेर का मुँह है । शेर का मुँह किसने सूँघकर देखा है ? लड़की तो देखते-देखते तार हुई जा रही है । तू कहे तो मैं कहीं खोज-खबर करती हूँ । मानक जाने साल में आता है कि छह महीने में आता है कि....

**दीनू कुम्हार, हड्डियों का चलता-फिरता ढाँचा सा, बाहर से हाँफता हुआ आता है । उसके सिर के और दाढ़ी के बाल आधे पक चुके हैं । हाथ मिट्टी में सने हैं ।**

दीनू : मुन्नी की माँ, आज तो हद हो गई !

बिशनी : किस बात की हद हो गई ? इतना हाँफ क्यों रहा है ?

दीनू : बताने की बात नहीं, तू बाहर निकल कर अपनी आँखों से देख.....।

बिशनी : कुछ बताएगा भी, बात क्या है ?

दीनू : बात क्या है, तमाशा है । सच कहता हूँ मुन्नी की माँ, बेशरमी की हद हो गई ।

बिशनी : क्या फिर वह चौधरी की बेवा.....?

दीनू : नहीं, उसकी बात नहीं है । दो जवान छोकरियाँ आज कहीं से आई हैं । उनका ऐसा पहिरावा है कि तुमसे क्या कहूँ ? रंग काला है पर बिलकुल मेमों की तरह टिट-फिट चलती है । और घर-घर जाकर आटा-दाल माँग रही हैं । इतनी जिंदगी चली गई, पर ऐसी बेशरमी कभी नहीं देखी ।

**दीनू बाहर की ओर झाँक कर देखता है । मुन्नी अंदर आ जाती है ।**

दीनू : **(मुड़कर)** वे तेरे घर की तरफ ही आ रही हैं ।.....मुन्नी को अंदर भेज दे । मैं जाकर चौधरी को खबर सुना दूँ ।

**दीनू बाहर चला जाता है । बिशनी, कुंती और मुन्नी उत्सुक आँखों से बाहर की ओर देखती हैं । दो बर्मी लड़कियाँ बाहर से आती हैं । वे जाँघों तक लंबे मैले फ्रॉक पहने हैं । दोनों के हाथों में एक-एक थैला है ।**

कुंती : **(बिशनी के कान में फुसफुसाकर)** ये लड़कियाँ क्रिस्टान हैं ।

**बिशनी उसका मतलब न समझकर प्रश्न भरी नजरों से उसकी ओर देखती है ।**

कुंती : **(उसी स्वर में)** क्रिस्टान होती है जो मरदों को घरों में रखती हैं और आप बाहर घूमती हैं ।

1लड़की : थोड़ा दाल-चावल दे दीजिए माँजी, परमात्मा आपका भला करेगा ।

2लड़की : हम रिफ्यूजी हैं माँजी, बहुत दूर से भूखे-प्यासे आ रहे हैं ।

1लड़की : हम लोग रंगून से आ रहे हैं । हजारों लोग वहाँ से घर-बार छोड़कर चले आए हैं । हम एक घर की दस औरतें यहाँ से तीन मील दूर एक पुरानी धरमशाला में पड़ी हैं । हमारे दो भाई रास्ते में मारे गए हैं । थोड़ा दाल-चावल दे दीजिए माँजी, आपकी जान की दुआ....

कुंती : **(बिशनी के कान के पास)** यह लड़कियाँ क्रिस्टान नहीं हैं । इनके लच्छन अच्छे नजर नहीं आते ।

बिशनी : **(लड़कियों के चेहरे पर दृष्टि जमाए हुए)** हाय री, तुम इस तरह भीख क्यों माँग रही हो ? देखने में तो तुम अच्छे घर की नजर आती हो......?

1लड़की : पहले जब घर-बार था तब और बात थी, माँजी ! अब घर-बार उजड़ गया है तो भीख का ही आसरा है । जापानी जहाजों ने बम मार-मार कर सारा शहर उजाड़ दिया है । रोज वहाँ गोलीबारी होती है । यहाँ तो आप लोग स्वर्ग में रहती हैं, माँजी ! लड़ाई की वजह से हमारा मुल्क तो बिलकुल तबाह हो गया है ! फौज को छोड़कर और कोई वहाँ नहीं रहा... ।

मुन्नी : **(जरा आगे आकर)** माँ, यह कहती है इनके मुल्क में बहुत लड़ाई होती है । इससे पूछो ब्रम्मा इनके मुलक से कितनी दूर है ?

2लड़की : हमारे मुल्क का नाम ही बर्मा है, बहनजी ! हमारा शहर रंगून बर्मा में ही है ।

बिशनी और मुन्नी : **(एक साथ)** तुम लोग ब्रम्मा से आई हो ?

1लड़की : हाँ, माँजी, हम बर्मा से ही आई हैं । वहाँ रहने वाले हजारों-लाखों लोगों की जानें चली गई हैं । जिनको जिधर रास्ता मिलता है वह उधर भागकर जान बचाने की कोशिश करता है । बहुत लोग भरे हुए घर छोड़कर चले आए हैं । माँजी, आज हम लोग आप लोगों के ही आसरे हैं । जो कुछ थोड़ा-बहुत आप लोगों के घरों से मिल जाता है उसी से.......।

बिशनी : **(बात काटकर)** क्यों री, बर्मा में बहुत लड़ाई हो रही है ?

1लड़की : वहाँ दिन-रात आग बरसती है, माँजी ! हम लोग फिर भी खुशकिस्मत हैं जो जान लेकर निकल आए हैं । तेरह दिन तक हम लोग भूखे-प्यासे जंगली रास्ते में चलते रहे हैं ।

मुन्नी : तुम लोग ब्रम्मा से पैदल चलकर आई हो ?

1लड़की : जी हाँ, जान बचाने का यही रास्ता था ! रास्ते में जंगल में बड़ी-बड़ी दलदलें पड़ती हैं । हममें से एक औरत एक दलदल में फँसकर वहीं रह गई.....

मुन्नी : माँ, ये कहती हैं कि वहाँ से पैदल आई हैं और चौधरी कहता था कि वहाँ पानी वाले जहाज से जाते हैं ?

1लड़की : जी, असली रास्ता जहाज का ही है । मगर उस रास्ते में बहुत खतरा है । जापानी लोग जहाजों को रास्ते में ही डुबो देते हैं । और हम लोगों को जहाज मिलते भी नहीं । जहाजों पर सिर्फ फौजी लोग आते-जाते हैं ।

बिशनी : **(सिहर कर)** जब जहाज डूब जाते हैं तो फौजी लोग क्यों जहाजों पर आते-जाते हैं ? सरकार इतनी मूरख है कि फौजियों को डूबने के लिए भेज देती है ?

1लड़की : फौजी लोग समुंदर में जाकर लड़ते हैं, माँजी ! जहाजों-जहाजों में लड़ाइयाँ होती हैं । उधर से जापानी जहाज गोले चलाते हैं और उधर से अंग्रेजों के जहाज । ऊपर से हवाई जहाज मार करते हैं । बड़ी भयानक लड़ाई होती है !

**बिशनी के चेहरे की रेखाएँ गाढ़ी हो जाती हैं । वह चर्खे को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करती है, पर उसके हाथ जैसे निःशक्त हो रहे हैं ।**

मुन्नी : तुम जिस रास्ते से आई हो, उस रास्ते से फौजी नहीं भागकर आ सकते ?

1लड़की : नहीं, फौजी वहाँ लड़ने के लिए हैं, वे नहीं भाग सकते । जो फौज छोड़कर भागता है, उसे गोली मार दी जाती है.......।

बिशनी : **(सिहर कर)** हाय, नहीं !..... फौजियों को भागने की क्या जरूरत है ? उन्हें अपनी मियाद पर छुट्टी मिल जाती है !.....जिसे आना होगा वह छुट्टी लेकर आएगा, भागकर क्यों आएगा ? ......वे इतने अनजान थोड़े ही हैं ?

2लड़की : आपके बच्चों की बड़ी उमर होगी, माँजी ! हमें दो मुट्ठी चावल दे दीजिए ।

कुंती : यहाँ हमारे खाने को चावल नहीं है और इन लोगों को चावल चाहिए.......।

बिशनी : मुन्नी !

**मुन्नी सामने आ जाती है ।**

बिशनी : जा, अंदर से हँडिया से कटोरी भरकर चावल ले आ ।

**मुन्नी अंदर चली जाती है । कुंती असंतोषपूर्ण दृष्टि से लड़कियों को देखती रहती है । कुछ क्षण खामोशी रहती है । बिशनी सिर झुकाए कुछ सोचती रहती है ।**

बिशनी : **(सिर उठाकर)** क्यों री, ब्रम्मा से यहाँ तक कितने दिन का पैदल रास्ता है ?

1लड़की : दिनों का कोई हिसाब नहीं है, माँजी ! पहुँच जाएँ तो महीना-बीस दिन में पहुँच जाएँ और न पहुँच पाएँ तो कभी न पहुँच पाएँ । एक तो रास्ते में इतने घने जंगल हैं, फिर जंगली जानवर हैं और फिर पता नहीं कहाँ दुश्मन की फौज का मोर्चा हो । जंगल के चप्पे-चप्पे में लड़ाई चलती है, माँजी ! हमने रास्ते में सैकड़ों सिपाहियों की गली-सड़ी लाशें देखी थीं । यहाँ हिंदुस्तानी सिपाहियों की लाशें पड़ी मिलतीं तो वहाँ जापानी सिपाहियों की । **(सिहर कर)** उनकी हालत देखकर दिल दहल जाता था.....।

बिशनी : **(विह्वल स्वर में)** हाय, बस करो.......!

**अपने पल्ले में आँखें छिपा लेती है । मुन्नी अंदर से चावल लेकर आती है और एक लड़की उन्हें अपने झोले में डलवा लेती है ।**

1लड़की : अच्छा माँजी, परमात्मा आपको सुखी रखे !

**दोनों लड़कियाँ बाहर चली जाती हैं । कुंती चारपाई सरकाकर बिशनी के मोढ़े के बहुत पास आ जाती है ।**

कुंती : **(बिशनी के कंधे पर हाथ रखकर)** बिशनदेई !

**बिशनी पल्ले से आँखें पोंछकर सिर ऊपर उठाती है ।**

कुंती : तू इस तरह दिल क्यों हल्का कर रही है ? क्या पता है ये ब्रम्मा से आई हैं या कहाँ से आई हैं ? मुझे तो इनका चरित्तर ऐसा-वैसा ही लगता है । हाय रे राम ! लड़कियाँ हैं कि......!

**मुन्नी बिशनी के पास फर्श पर बैठ जाती है ।**

मुन्नी : **(बिशनी के घुटने को सहलाते हुए)** माँ, मैं जो तुमसे कहती हूँ कि अगले मंगल को भैया की चिट्ठी जरूर आएगी । जितनी हमें फिकर है, भैया को भी तो वहाँ उतनी ही फिकर होगी ।

बिशनी : **(आँखें पोछती हुई)** मैं कब कहती हूँ कि उसे फिकर नहीं । पर इतना तो लिख दे कि माँ मैं यहाँ हूँ, अच्छी तरह से हूँ.......।

मुन्नी : और क्या पता माँ, कि भैया आप छुट्टी लेकर आ रहे हों और इसलिए उन्होंने चिट्ठी न लिखी हो......?

बिशनी : **(ठंडी साँस लेकर)** क्या पता ?

मुन्नी : मेरा दिल कहता है कि भैया आप ही आएँगे ।

**बिशनी कुछ न कह कर उसके सिर पर हाथ फेरने लगती है ।**

कुंती : (**अपनी ही सोच से जागकर**) ये लड़कियाँ इतनी बड़ी हो जाती हैं, फिर भी इनके घरवाले इनका ब्याह नहीं करते ?

बिशनी : क्या मालूम ?

**मुन्नी की ठुड्डी उठाकर उसका चेहरा देखती रहती है । फिर उसका माथा चूमकर उसे साथ सटा लेती है ।**

बिशनी : तेरा दिल ठीक कहता है, बेटी ! चिट्ठी न आई तो वह आप ही आएगा !

**मुन्नी लाड़ से माँ के गले में बाँहें डाल देती है । बिशनी उसे चूमकर और साथ सटा लेती है ।**

**पर्दा गिरता है ।**

## दूसरा दृश्य

**वही आँगन । समय रात । दोनों चारपाइयाँ आँगन में बिछी हैं । दाईं ओर की चारपाई पर मुन्नी हथेलियों पर चेहरा टिकाए बैठी है । उस चारपाई पर ओढ़ने के लिए एक फटी हुई लोई रखी है । दूसरी चारपाई पर घिसी हुई दरी बिछी है और ऊपर दोहरा सूती खेस पड़ा है । बिशनी जलती हुई ढिबरी लिए अंदर से आँगन में आती है ।**

बिशनी : (**पास आकर**) तू अभी सोई नहीं ?

मुन्नी : (**चौंककर**) मुझे नींद नहीं आई ।.....अभी सो जाती हूँ ।

**लोई खींचकर अपनी टाँगों पर कर लेती है ।**

बिशनी : इतनी रात चली गई और तुझे अभी नींद नहीं आई !

मुन्नी : तुम भी तो अभी तक जाग रही हो ।

बिशनी : मेरी उमर में तो वैसे ही नींद नहीं आती ।.......अब सो जा, सवेरे उठ कर गोबर लाना है ।

**बिशनी अपनी चारपाई पर आ बैठती है । मुन्नी लेट जाती है । कुछ क्षण निःस्तब्धता रहती है ।**

मुन्नी : (**करवट बदलकर**) माँ, आज तारो ससुराल से वापस आ गई है ।

बिशनी : (**अन्यमनस्क भाव से**) अच्छा !

मुन्नी : उसके घर वाले ने इस बार उसे सुच्चे मोतियों के कड़े बनवा दिए हैं । वह आज गाँव में सबको दिखाती फिर रही थी । उसके कड़ों के मोती तारों की तरह चमकते हैं । बंतो के कड़े भी उसके सामने कुछ नहीं हैं ।

बिशनी : अच्छा, अच्छा ! तेरा भैया आएगा तो तेरे लिए उससे भी अच्छे कड़े और चूड़ियाँ लाएगा । अब सो जा नहीं तो सवेरे तेरी नींद नहीं खुलेगी ।

**मुन्नी अच्छी तरह लोई ओढ़ कर करवट बदल लेती है । बिशनी ढिबरी बुझा कर कोने में रख देती है और आप भी खेस ओढ़ कर लेट जाती है । उसके ढिबरी बुझाते ही प्रकाश का रंग पीले से हल्का**

**नीला हो जाता है । साथ टिड्डियों की चिक-चिक का शब्द सुनाई देने लगता है जो क्रमशः काफी तेज हो जाता है । बिशनी करवट बदलती है । प्रकाश हल्के से गहरा नीला हो जाता है और दूर एक कुत्ते के रोने की आवाज सुनाई देती है । फिर दूर गोली चलने का शब्द सुनाई देता है और कई व्यक्तियों के कराहने की आवाजें आती हैं । बिशनी चौंककर उठ बैठती है । उसके उठने के साथ ही प्रकाश का रंग फिर हल्का नीला हो जाता है ।**

बिशनी : मानक ! (इधर-उधर देखकर) मानक !

**कुछ ऐसा शब्द सुनाई देता है जैसे दूर आँधी चल रही हो ।**

: (घबराए हुए स्वर में) मानक !

**बाहर से एक आहत व्यक्ति की आवाज सुनाई देती है– 'माँ !' बिशनी चारपाई से उठ पड़ती है ।**

: (अस्तव्यस्त भाव से) तो सचमुच तू ही है मानक ?.....कहाँ है बेटे ?

**सुनसान में झिल्लियों के बोलने का-सा शब्द सुनाई देता है और फिर जैसे कोई भागता हुआ आता है । बिशनी अस्तव्यस्त भाव से चारों ओर देखती रहती है । फौजी लिबास पहने एक घायल युवक डगमगाता सा बाहर से आकर बिशनी के पैरों के पास गिर जाता है । बिशनी तड़पकर उसके पास जमीन पर बैठ जाती है ।**

: मानक !

**उसका सिर गोदी में लेकर आवेगवश उस पर झुक जाती है । मानक कठिनता से सिर उठाता है ।**

मानक : माँ !

बिशनी : **(उसका सिर हाथों में लेकर विह्वल स्वर में)** तू ऐसा क्यों हो रहा है बेटे ?....क्या हुआ है तुझे ?

मानक : मैं घायल हूँ, माँ ! मुझे बहुत गोलियाँ लगी हैं । ......और दुश्मन अब भी मेरे पीछे लगा हुआ है ।

बिशनी : दुश्मन ? कौन दुश्मन तेरे पीछे लगा हुआ है ? तेरा कौन दुश्मन है ?

**मानक सीधा होने की चेष्टा करता है पर सफल नहीं हो पाता ।**

मानक : वह....वह...उसे.....उसको मैंने कई गोलियाँ मारी थीं । मगर वह मरा नहीं है । वह जिंदा है। .... वह मेरे पीछे लगा हुआ है ।....वह मुझे मारना चाहता है ।....उसने मेरा सारा शरीर जख्मी कर दिया है ।.....मैं दौड़ता हूँ तो वह मेरे पीछे दौड़ता है । मैं रेंगता हूँ तो वह पीछे रेंगता है। वह मुझे नहीं छोड़ेगा । वह बड़ा खतरनाक है....पानी !

बिशनी : तू उठ, चारपाई पर लेट जा । मैं तेरे लिए दूध गरम करती हूँ ।

मानक : दूध नहीं, पानी । और यहीं । वह अभी यहाँ आ जाएगा । जल्दी । उधर देख । अँधेरे में। वह आ तो नहीं रहा ?

**बिशनी व्याकुलतापूर्वक बाहर की ओर देखती है ।**

बिशनी : नहीं, बेटे ! कोई नहीं है । तू यूँ ही घबरा रहा है । उठ, आराम से चारपाई पर लेट जा...।

मानक : नहीं । .....पानी ।

**बिशनी पल भर असमंजस में रहकर उसे छोड़कर उठ खड़ी होती है और अंदर चली जाती है। दो क्षण बाद वह पीतल के गिलास में पानी लिए हुए बाहर आती है। उसके हाथ काँप रहे हैं।**

बिशनी : यह ले बेटे, पानी। आराम से पीना। छोटा-छोटा घूँट करके। निरे हाल पानी पेट में जाकर लगता है। पहले थोड़ा कुछ खा लेता....।

मानक : नहीं। मेरी भूख मर गई है, माँ! मुझे अब भूख नहीं लगती। पानी....।

**बिशनी गिलास लिए हुए उसके पास बैठ जाती है। मानक गिलास उसके हाथ से लेकर गटागट पानी पी जाता है। उसी समय किसी का हास्य स्वर सुनाई देता है। मानक के हाथ से गिलास गिर जाता है। वह बाहर की ओर देखता है। उधर अँधेरे में एक बंदूक का कुंदा चमकता है। मानक सरककर माँ के नजदीक हो जाता है। बिशनी उसे बाँहों में समेट लेती है।**

मानक : यह वही है। वह देख, माँ! वह आ गया है। वह देख....।

**अँधेरे में बंदूक का कुंदा आगे की ओर बढ़ता है। साथ फिर हास्य स्वर सुनाई देता है और फौजी लिबास में एक और आकृति प्रकट होती है। बिशनी मानक को साथ सटा लेती है। आने वाला सिपाही पास आकर हँसता है।**

सिपाही : तू इसे गोद में लिए बैठी है ?....देखती नहीं, यह मुर्दा है ?

**बिशनी सिर से पाँव तक सिहर जाती है। मानक उठने के लिए जद्दोजहद करता है।**

मानक : यह झूठ कहता है! ...मैं मुर्दा नहीं हूँ। मैं हिल-डुल सकता हूँ, बात कर सकता हूँ....मैं मुर्दा नहीं हूँ।

बिशनी : **(उसे और साथ सटाकर, आश्वस्त स्वर में)** हाँ बेटे! तेरी जान के साथ तेरी माँ की जान है। मैं जीती हूँ तो तुझे कैसे कुछ हो सकता है ?

**सिपाही बंदूक का कुंदा मानक के पास ले आता है।**

सिपाही : इसे कैसे कुछ हो सकता है ? मैं अभी इसका शरीर गोलियों से छलनी कर दूँगा। फिर मैं इसकी लाश ले जाकर जंगल में चील और कौओं के आगे डाल दूँगा......।

**हँसता है और बंदूक का कुंदा मानक के बहुत निकट कर देता है। बिशनी कुंदा हाथ से पकड़ लेती है। मानक खड़ा होने की चेष्टा करता है पर लुढ़क कर बिशनी की गोद में गिर जाता है। बिशनी उसे अच्छी तरह छाती से लगा लेती है। सिपाही बंदूक का कुंदा उसके हाथ से छुड़ाकर उसे घूरकर देखता है।**

: तू इसे बचाना क्यों चाहती है ? तू इसकी क्या लगती है ?

बिशनी : मैं इसकी माँ हूँ। मैं तुझे इसे मारने नहीं दूँगी।

सिपाही : तू इसकी माँ है ? **(उसे भी घूरकर देखकर)** पर तू देखने में तो इस वहशी की माँ नहीं लगती। .......तुझे पता है, यह लड़ाई में वहशियों की तरह गोलियाँ चलाता है ? इसने न जाने कितने सिपाहियों की जान ली है! ....यह इंसान नहीं, जानवर है। और तू कहती है कि तू इसकी माँ है।

बिशनी : मैं इसकी माँ हूँ । मेरा बेटा वहशी नहीं है । इसने किसी की जान नहीं ली । यह किसी की जान नहीं ले सकता । यह तो मरता हुआ कबूतर भी आँखों से नहीं देख सकता । मैं इसे लड़ाई पर नहीं जाने दूँगी । यह घर में मेरे पास रहेगा ....।

सिपाही : यह घर में रहेगा ? .....मगर यह तो हजारों का दुश्मन है । हजारों इसके दुश्मन हैं । वे इसको खोज रहे हैं । वे इसकी जान लेना चाहते हैं । **(मानक को पैर से ठोकर मारकर)** अब इसकी जान नहीं बच सकती । मैदान में हजारों सिपाही मर रहे हैं । यह वहाँ जाएगा तो भी मारा जाएगा और यहाँ रहेगा तो भी .....।

**फिर मानक को ठोकर मारने लगता है पर बिशनी उसका पाँव पकड़ लेती है ।**

बिशनी : नहीं, तू इसे नहीं मार । देख, इसका शरीर कितना घायल है । तू भी तो आदमी है । तेरा भी घर-बार होगा । तेरी भी माँ होगी । तू माँ के दिल को नहीं समझता ? मैं अपने बच्चे को अच्छी तरह से जानती हूँ । यह दिल का बहुत भोला है । इसकी किसी के साथ दुश्मनी नहीं है ।

**सिपाही हँसता है ।**

सिपाही : इसकी किसी के साथ दुश्मनी नहीं है ? .....यह देख **(बटन खोलकर अपना लहू से तरबतर सीना दिखाता है)** ये सब घाव इसी के किए हुए हैं । मैं इन घावों से कब का मर चुका होता । लेकिन मैं सिर्फ इसे मारने के लिए जिंदा हूँ । इसे मारे बिना मैं नहीं मरूँगा ।

बिशनी : तू बात क्यों नहीं समझता ? मैं इसकी माँ हूँ । मैं इसे अच्छी तरह जानती हूँ । यह किसी दुश्मनी से लड़ाई में नहीं गया । इसे मैंने लड़ाई में भेजा था । ......इसकी बहन अब ब्याहने जोग हो गई है । छह महीने-साल में हमें उसका ब्याह करना है । हमारे घर की हालत बहुत खराब है । अगर लड़की के ब्याह की चिंता न होती तो हम लोग आधा पेट खाकर रह लेते पर मैं कभी इसे लड़ाई पर न भेजती । इस लड़के के सिवा घर में कोई कमानेवाला नहीं है । मैंने सोचा था कि लड़की ब्याही जाएगी तो फिर इसे लड़ाई पर नहीं जाने दूँगी । फिर मैं इसका भी ब्याह कर दूँगी और इसे अपने पास घर में रखूँगी । मुझे क्या पता था कि लड़ाई में जाकर इसकी यह हालत हो जाएगी ? आज यह इस हाल में घर आया है । मैं इसे आज अपने से कैसे अलग कर सकती हूँ ? इसकी जगह तू होता तो तेरी माँ तुझे अपने से अलग होने देती ?

सिपाही : मेरी माँ ...? **(जरा सा हँसकर)** मेरी माँ अब पागल हो गई है । वह रोज मेरी मौत का इंतजार करती है । वह हँसकर कहती है कि थोड़े दिनों में मेरे बेटे की लाश घर आएगी । मेरी बीबी ने अभी से बेवा का स्वांग बना लिया है । उसने मुझे लिखा है कि जिस दिन वह मेरे मरने की खबर सुनेगी उस दिन गले में फाँसी लगाकर मर जाएगी । उसके पेट में छह महीने का बच्चा है । उसके साथ ही वह भी मर जाएगा । **(फिर से सीना खोलकर दिखाता है ।)** और तेरे लड़के ने देख मेरा क्या हाल किया ।....यह अभी भी मेरे खून का प्यासा है । इसकी आँखों को देख । इसकी आँखों में तुझे वहशियाना चमक दिखाई नहीं देती ?

बिशनी : नहीं-नहीं, इसकी आँखें ऐसी नहीं हैं । इस समय इसकी आँखें ऐसी लगती हैं । पर इनका असली रंग ऐसा नहीं है ......।

सिपाही : तू इसकी आँखों का रंग नहीं पहचानती । तू इसकी माँ है, पर तू इस रंग का मतलब नहीं जानती । इसकी आँखों में दुश्मनी है । जब तक मैं सामने हूँ इसकी आँखों का रंग नहीं बदलेगा । देख, यह कैसे आँखों में खून भरकर मुझे देख रहा है ।

**मानक सहसा अपने को झटककर उठ खड़ा होता है । वह सिपाही का गला दबाने के लिए उस पर झपटना चाहता है पर सिपाही झट से बंदूक का कुंदा फिर तान देता है । बिशनी जल्दी से बंदूक के कुंदे के आगे आ जाती है ।**

बिशनी : नहीं, तू इसे नहीं मारेगा । तुझे तेरी माँ की सौगंध, तू इसे नहीं मारेगा ।

सिपाही : मैं इसे नहीं मारूँगा तो यह मुझे मार देगा । तू यही चाहती है ?

बिशनी : नहीं यह तुझे नहीं मारेगा । मैं इसकी माँ हूँ । मैं इसे जानती हूँ । यह तुझे कभी नहीं मारेगा ।

मानक : **(वीभत्स स्वर में)** मैं इसे नहीं मारूँगा ? **(रौद्र भाव से आगे बढ़ता हुआ)** नहीं ! मैं इसे जरूर मारूँगा, मैं अभी इसके टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा ।

**आगे बढ़कर सिपाही को धक्का देता है जिससे वह लड़खड़ाकर पीछे गिर जाता है और बंदूक उठा लेता है और उसका कुंदा सिपाही के सीने की ओर तान देता है ।**

: मैं वहशी हूँ ! मैं जानवर हूँ ! मै वहशी और जानवर से भी बढ़कर हूँ । इस तरह मेरी तरफ क्यों देख रहा है ? उठ, उठकर मुझे ठोकर लगा....

**उसी तरह हँसता है जैसे वह सिपाही हँस रहा था । बिशनी जल्दी से बंदूक के कुंदे के सामने आ जाती है ।**

बिशनी : नहीं मानक, तू इसे नहीं मारेगा ! यह भी हमारी तरह गरीब आदमी है । इसकी माँ इसके पीछे रो-रोकर पागल हो गई है । इसके घर में बच्चा होनेवाला है । यह मर गया तो इसकी बीवी फाँसी लगाकर मर जाएगी....।

**मानक बिशनी को झटककर बीच में से हटा देता है ।**

मानक : मैं इसे नहीं छोड़ूँगा । यह दुश्मन है । मैं इसको अभी मार दूँगा, अभी । यहीं.....।

बिशनी : नहीं मानक, तू इसे नहीं मारेगा.......।

**फिर बीच में आने का प्रयत्न करती है पर मानक उसे फिर झटककर हटा देता है । बिशनी चारपाई पर गिरकर हाथों में मुँह छिपा लेती है । सिपाही पार्श्व की ओर हटता है । मानक उसके साथ-साथ आगे बढ़ता है ।**

मानक : मैं इसे अभी मार दूँगा । अभी इसकी बोटी-बोटी अलग कर दूँगा....।

**सिपाही और मानक की आकृतियाँ धीरे-धीरे पार्श्व में जाकर विलीन हो जाती हैं । बिशनी हाथों में मुँह छिपाए हुए चिल्ला उठती है ।**

बिशनी : मानक ! मानक !

एक साथ चार-छह गोलियाँ चलने और उसके साथ सिपाही के कराहने का शब्द सुनाई देता है। सहसा खामोशी छा जाती है। बिशनी उसी तरह चिल्लाती है : मानक ! मानक !
मुन्नी जल्दी से करवट बदलकर उठ बैठती है।

मुन्नी : (घबराए हुए स्वर में) माँ !

बिशनी : (उसी तरह) मानक !

मुन्नी जल्दी से उठकर ढिबरी जला देती है। प्रकाश का रंग हल्के नीले से फिर पीला हो जाता है। मुन्नी बिशनी की चारपाई पर जा बैठती है।

मुन्नी : क्या बात है, माँ ?

बिशनी आँखों से हाथ हटाकर, चुँधियाई सी नजरों से चारों ओर देखती है।

बिशनी : (कुछ खोजती सी) मानक !

मुन्नी : तुम रोज भैया के ही सपने देखती हो, माँ ? मैंने तुमसे कहा था, अगले मंगल को भैया की चिट्ठी जरूर आएगी।

बिशनी : (जैसे आत्मगत) चिट्ठी आएगी ?......और वह आप.....?

मुन्नी : थोड़े दिनों में भैया आप भी आएँगे। तुम आप ही कहती थीं कि वे जल्दी आएँगे और मेरे लिए कड़े और चूड़ियाँ लाएँगे......।

बिशनी : कड़े और चूड़ियाँ ? ......ओ मुन्नी !

उसे अपने साथ सटा लेती है और आँखों से टप-टप पानी बरसने लगता है।

मुन्नी : भैया मेरे लिए जो कड़े लाएँगे, वे तारो और बंतो के कड़ों से भी अच्छे होंगे न, माँ ?

बिशनी आँखें बंद करके नकारात्मक भाव से सिर हिलाती है पर शीघ्र ही अपने को सँभाल लेती है।

बिशनी : हाँ बेटी, तेरे कड़े सबके कड़ों से अच्छे होंगे।

मुन्नी : सुच्चे मोतियों के कड़े होंगे न, माँ ?

बिशनी : हाँ बेटी, सुच्चे मोतियों के कड़े.....!

उसका माथा चूमकर उसे अलग हटा देती है।

: अब सो जा, अभी बहुत रात बाकी है।

मुन्नी अपनी चारपाई पर चली जाती है। बिशनी उठकर ढिबरी बुझा देती है। उसके ढिबरी बुझाते ही गहरा अँधेरा छा जाता है। अँधेरे में बिशनी के बुदबुदाने का स्वर सुनाई देता है।

: ताती वा ना लगाई, पार ब्रह्म सहाई।
राखनहारे राखिआ, प्रभु व्याधि मिटाई......।

**पर्दा गिरता है।**

❑❑❑

# अभ्यास

### एकांकी के साथ

1. बिशनी और मुन्नी को किसकी प्रतीक्षा है, वे डाकिए की राह क्यों देखती हैं ?
2. बिशनी मानक को लड़ाई में क्यों भेजती है ?
3. सप्रसंग व्याख्या करें –
   (क) यह भी हमारी तरह गरीब आदमी है ।
   (ख) वर-घर देखकर ही क्या करना है, कुंती ? मानक आए तो कुछ हो भी । तुझे पता ही है, आजकल लोगों के हाथ कितने बढ़े हुए हैं ।
   (ग) नहीं, फौजी वहाँ लड़ने के लिए हैं, वे नहीं भाग सकते । जो फौज छोड़कर भागता है, उसे गोली मार दी जाती है ।
4. 'भैया मेरे लिए जो कड़े लाएँगे, वे तारो और बंतो के कड़ों से भी अच्छे होंगे न' मुन्नी के इस कथन को ध्यान में रखते हुए उसका परिचय आप अपने शब्दों में दीजिए ।
5. बिशनी मानक की माँ है, पर उसमें किसी भी सिपाही की माँ को ढूँढ़ा जा सकता है, कैसे ?
6. एकांकी और नाटक में क्या अंतर है ? संक्षेप में बताएँ ।
7. आपके विचार से इस एकांकी का सबसे सशक्त पात्र कौन है, और क्यों ?
8. दोनों लड़कियाँ कौन हैं ?
9. कुंती का परिचय आप किस तरह देंगे ?
10. मानक और सिपाही एक दूसरे को क्यों मारना चाहते हैं ?
11. मानक स्वयं को वहशी और जानवर से भी बढ़कर क्यों कहता है ?
12. मुन्नी के विवाह की चिंता न होती तो मानक लड़ाई पर न जाता, यह चिंता भी किसी लड़ाई से कम नहीं है ? क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? अपना पक्ष दें ।
13. सिपाही के घर की स्थिति मानक के घर से भिन्न नहीं है, कैसे । स्पष्ट करें ।
14. पठित एकांकी में दिए गए रंग-निर्देशों की विशेषताएँ बताएँ ।
15. 'सिपाही की माँ' की संवाद योजना की विशेषताएँ बताएँ ।

### एकांकी के आस-पास

1. मोहन राकेश हिंदी के एक अत्यंत समर्थ नाटककार हैं । इनकी नाट्यकृतियों को अपने पुस्तकालय से लेकर पढ़ें एवं उनकी विषय-वस्तु पर कक्षा में चर्चा करें ।
2. आप अपनी पसंद से मोहन राकेश के नाटक का मंचन विद्यालय में करें । इसमें अपने शिक्षकों की भी मदद लें ।
3. पठित एकांकी का मंचन अपने मित्रों के साथ रंग निर्देशों का पालन करते हुए करें ।

4. प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु एवं चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' – दोनों में युद्ध की पृष्ठभूमि है । इन दोनों रचनाओं में क्या समानता-असमानता है ? विचार कीजिए ।
5. एकांकी में जापान और अंग्रेजी फौज के बीच दूसरे विश्वयुद्ध की लड़ाई का उल्लेख है । दूसरे विश्वयुद्ध के क्या परिणाम हुए ?

**भाषा की बात**

1. निम्नलिखित शब्दों के शुद्ध रूप लिखें –
   झाग, पिलसन, शायत, ब्रम्मा, चरित्तर, विदवान, समुंदर, मुलक, फिकर
2. निम्नलिखित वाक्यों से संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण पद चुनें –
   (क) मानक कहता था कि जहाज इत्ता बड़ा होता है कि हमारे जैसे चार गाँव एक जहाज में आ जाएँ ।
   (ख) ये सारा शहर ढूँढ़ आए हैं, पर कहीं दस गज मलमल नहीं मिलती ।
   (ग) हमने रास्ते में सैकड़ों सिपाहियों की गली-सड़ी लाशें देखी थीं ।
   (घ) यह तो मरता हुआ कबूतर भी आँखों से नहीं देख सकता ।
   (ङ) जब तक मैं सामने हूँ इसकी आँखों का रंग नहीं बदलेगा ।
3. 'भैया आप छुट्टी लेकर आ रहे हो' यहाँ 'आप' कौन सा सर्वनाम है ?
4. 'दिल हलका करना' का क्या अर्थ है ?
5. अर्थ की दृष्टि से निम्नलिखित वाक्यों की प्रकृति बताएँ –
   (क) क्या पता है ये ब्रम्मा से आई हैं या कहाँ से आई हैं ?
   (ख) दिनों का कोई हिसाब नहीं है, माँजी ।
   (ग) उसके कड़ों के मोती तारों की तरह चमकते हैं ।
   (घ) तू ऐसा क्यों हो रहा है, बेटे ?
6. रेखांकित अंश किस पदबंध के उदाहरण हैं ?
   (क) यह दिल का बहुत भोला है ।
   (ख) यह तो मरता हुआ कबूतर भी नहीं देख सकता ।
   (ग) क्यों री, डाक वाली गाड़ी ही थी ?
   (घ) हमारे घर की हालत बहुत खराब है ।
   (ङ) तू इसकी आँखों का रंग नहीं पहचानती ।

**शब्द निधि :**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| सीलदार | : | जहाँ हमेशा नमी रहती है | बेवा | : | विधवा |
| खस्ताहाल | : | बुरी स्थिति | मियाद | : | समय-सीमा |
| नदीदे | : | बिना आँखवाला, अंधा | क्रिस्टान | : | ईसाई |
| नि:स्तब्धता | : | मौन, सन्नाटा | हरफ | : | अक्षर |
| लोई | : | मोटी चादर | काली जबान | : | बुरी जबान जो लग जाए |
| सुच्चे | : | शुद्ध | तिरिया | : | स्त्री |
| निरे हाल | : | खाली पेट | मुटियार | : | जवान |
| वहशी | : | क्रूर, उन्मत्त | स्वांग | : | भेष |

# नामवर सिंह

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 28 जुलाई 1927 । |
| जन्म-स्थान | : | जीअनपुर, वाराणसी, उत्तर प्रदेश । |
| माता-पिता | : | वागेश्वरी देवी एवं नागर सिंह ( एक शिक्षक ) । |
| शिक्षा | : | प्राथमिक : आवाजापुर एवं कमालपुर, उत्तर प्रदेश के गाँवों में; हाई स्कूल : हीवेट क्षत्रिय स्कूल, बनारस; इंटर: उदय प्रताप कॉलेज, बनारस; बी०ए० और एम०ए० बी०एच०यू० से क्रमशः 1949 एवं 1951 में । पी-एच० डी० : बी०एच०यू० में 'पृथ्वीराजरासो की भाषा' विषय पर 1956 में । |
| वृत्ति | : | 1953 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में अस्थाई व्याख्याता । 1959-1960 में सागर विश्वविद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर । 1960-65 तक बनारस में रहकर स्वतंत्र लेखन । 'जनयुग' ( साप्ताहिक ), दिल्ली में संपादक और राजकमल प्रकाशन में साहित्य सलाहकार भी रहे । 1967 से 'आलोचना' त्रैमासिक का संपादन, 1970 में जोधपुर विश्वविद्यालय, राजस्थान में हिंदी विभाग के अध्यक्ष पद पर प्रोफेसर के रूप में नियुक्त, 1974 में कुछ समय तक कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा के निदेशक, 1974 में ही जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली के भारतीय भाषा केंद्र में हिंदी के प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति, 1987 में जे० एन० यू० से सेवामुक्ति । पुनः अगले पाँच वर्षों के लिए वहीं पुनर्नियुक्ति । 1993-96 तक राजा राममोहन राय लाइब्रेरी फाउंडेशन के अध्यक्ष । संप्रति : 'आलोचना' त्रैमासिक के प्रधान संपादक । |
| सम्मान | : | 1971 में 'कविता के नए प्रतिमान' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार । |
| कृतियाँ | : | बकलम खुद ( व्यक्ति व्यंजक ललित निबंध ), हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, छायावाद, पृथ्वीराज रासो की भाषा, इतिहास और आलोचना, कहानी : नई कहानी, कविता के नए प्रतिमान, दूसरी परंपरा की खोज, वाद विवाद संवाद ( आलोचना ), कहना न होगा ( साक्षात्कारों का संग्रह ), आलोचक के मुख से ( व्याख्यानों का संग्रह ) एवं अनेक संपादित पुस्तकें । |

डॉ० नामवर सिंह हिंदी आलोचना की एक शिखर प्रतिभा हैं जिनका विकास बीसवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ । स्वतंत्रता के बाद की उत्तरशती में हिंदी भाषा और साहित्य में एक अभिनव उत्कर्ष और उभार आया जिसे सामान्यतः लोकप्रतिबद्ध यथार्थवाद के रूप में पहचाना जा सकता है । आलोचना के क्षेत्र में इस उत्कर्ष और उभार को नामवर सिंह के साहित्य में लक्षित किया जा सकता है । नामवर सिंह की आलोचना में गहरी ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि, परंपरा के रचनात्मक तंतुओं की पहचान एवं सार-सहेज, सूक्ष्म समयबोध और लोकनिष्ठा के साथ-साथ साहित्य-कृतियों में रूप एवं अंतर्वस्तु की मार्मिक समझ दिखाई पड़ती है । साहित्यिक कृतियाँ, संरचनाएँ और प्रवृत्तियाँ गणित के फॉर्मूलों की तरह सहज और सपाट नहीं होतीं । उनमें समाज, व्यक्ति या इतिहास के तथ्य लेखकीय मानस में आभ्यंतरीकृत होकर बहुत कुछ बदल जाते हैं तथा एक जटिल या संश्लिष्ट रूप धारण कर लेते हैं । स्वभावतः आलोचक में सामान्य प्रबुद्ध

या जागरूक पत्रकार अथवा शास्त्रीय विद्वान की तुलना में एक विशेष प्रकार की अभिज्ञता, सहृदयता और कल्पनाशील बौद्धिक निपुणता वांछित होती है । नामवर सिंह में ये खूबियाँ बदस्तूर हैं । आलोचक में संग्रह और त्याग का एक नित्य चेतन विवेक होना चाहिए और साथ ही सहृदय सहानुभूति का नैसर्गिक गुण भी । कहना न होगा कि नामवर सिंह में ये विशेषताएँ अपने निखरे हुए रूप में पाई जाती हैं । हृदय और बुद्धि का आलोचनात्मक तनाव भरा द्वंद्वात्मक संतुलन उनकी आलोचनात्मक दृष्टि की आधारभूत विशेषता है ।

नामवर सिंह का अध्ययन विस्तृत और गहन है । साहित्य के अतिरिक्त इतिहास, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र आदि अनेक विषयों का अंतरानुशासनात्मक अध्ययन नामवर सिंह ने किया है । साहित्य, भाषाशास्त्र, काव्यशास्त्र, पाश्चात्य आलोचना आदि विषय तो सीधे उनकी अभिरुचि और लेखन कर्म के अंग ही हैं । नामवर सिंह पेशे से हिंदी प्राध्यापक रहे हैं, और वे देश के शीर्षस्थ हिंदी प्रोफेसर के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित कर चुके हैं । साहित्य के छात्र और आलोचक के रूप में वे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्य रह चुके हैं । द्विवेदी जी स्वयं रवींद्रनाथ के संसर्ग में विश्वभारती (शांति निकेतन) में हिंदी के आचार्य रह चुके थे । इस तरह आलोचना के क्षेत्र में रवींद्रनाथ ठाकुर और हजारी प्रसाद द्विवेदी की विरासत डॉ० नामवर सिंह को प्राप्त हुई, जिसे वे 'दूसरी परंपरा' कहते रहे हैं । नामवर सिंह अपने गुरु द्विवेदी जी की तरह ही एक ओजस्वी और प्रभावशाली वक्ता के रूप में अंतरराष्ट्रीय यश अर्जित कर चुके हैं ।

नामवर सिंह को हिंदी आलोचना को एक लालित्यपूर्ण सर्जनात्मक भाषा और मुहावरा देने का श्रेय प्राप्त है । उनकी पहचान हिंदी के आलोचकों की गौरवपूर्ण परंपरा की एक अपरिहार्य कड़ी के रूप में की गई है । वे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिशील आधुनिक आलोचक के रूप में आज भी अपनी जीवंत उपस्थिति बनाए हुए हैं ।

इस पाठ्यपुस्तक में संकलित निबंध उनके आलोचनात्मक निबंधों की पुस्तक 'वाद विवाद संवाद' से लिया गया है । इस निबंध में हजार वर्षों में फैली हिंदी काव्य परंपरा पर ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि के साथ विचार करते हुए 'प्रगीत' नामक काव्य रूप की निरंतरता को हिंदी समाज की जातीय प्रकृति और भाव प्रवाह की उपज के रूप में परिभाषित किया गया है । कोई भी काव्य रूप ऐतिहासिक-सामाजिक जरूरतों की उपज और संपूरक हुआ करता है । हिंदी में 'प्रगीत' की सामाजिकता और ऐतिहासिकता क्या है और कैसी रही है, हमारी साहित्यिक परंपरा में उसकी अहमियत क्या है–इन बातों की पड़ताल यह निबंध अत्यंत संयत और प्रसन्न विवेचन शैली तथा भाषा में करता है । आलोचना महज गुण-दोष विवेचन से आगे बढ़कर कुछ और भी है; वह इतिहास और परंपरा की पहचान करती हुई सामयिक समस्याओं और तथ्यों को ऐतिहासिक-सामाजिक अंतर्संगति में गहराई से पहचानना भी सिखाती है; वह वर्तमान को अधिक गहराई के साथ जानने-समझने की अंतर्दृष्टि जगाती है–यह सब इस निबंध से सीखा जा सकता है ।

◆ ◆ ◆

> **"नामवर सिंह की समीक्षा तथा सैद्धांतिक व्याख्या में रचनात्मक साहित्य जैसा लालित्य है । लगता है कोई ललित गद्य पढ़ रहे हैं । आमतौर पर समीक्षा की भाषा शुष्क और उबाऊ होती है । पर नामवर जी की भाषा और शैली बहुत प्रभावी है । सहज ढलान है उनके लेखन में । सीढ़ियाँ चढ़ना या उतरना नहीं पड़ता । वे मुहावरों का अच्छा प्रयोग करते हैं । संबोधन पद्धति से तर्क को जीवंत बनाते हैं । उनकी भाषा में विलक्षण 'लुसीडिटी' है । कटाक्ष है, व्यंग्योक्ति है, वक्रोक्ति है, व्याज स्तुति और व्याज निंदा है और 'विट्' है ।"**
>
> **– हरिशंकर परसाई**

# 'प्रगीत' और समाज

कविता पर समाज का दबाव तीव्रता से महसूस किया जा रहा है । इधर आलोचना भी ज्यादातर कविताओं की सामाजिक सार्थकता ढूँढ़ने में ही व्यस्त है । ऐसे वातावरण में गलत समझे जाने का खतरा उठाकर भी मैं विशेष रूप से उन कविताओं की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ जो सीधे-सीधे सामाजिक न होकर अपनी वैयक्तिकता और आत्मपरकता के कारण 'लिरिक' अथवा 'प्रगीत' काव्य की कोटि में आती हैं । आज चर्चा के लिए इन प्रगीतधर्मी कविताओं को चुनने का एक कारण यह भी है कि समाजशास्त्रीय विश्लेषण अथवा सामाजिक व्याख्या के लिए सबसे कठिन चुनौती भी इन्हीं की ओर से मिलती है ।

कविता में जहाँ तक सामाजिक यथार्थ और व्यापक जीवन के चित्रण का प्रश्न है, सामान्यतः दृष्टि प्रबंधकाव्यों और लंबी कविताओं की ओर ही जाती है । प्रगीतधर्मी कविताएँ न तो सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त समझी जाती हैं, न उनसे इसकी अपेक्षा की जाती है, क्योंकि सामान्य समझ के अनुसार वे अंततः नितांत वैयक्तिक और आत्मपरक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मात्र हैं ।

स्वयं आचार्य रामचंद्र शुक्ल के काव्य सिद्धांत के आदर्श भी प्रबंधकाव्य ही थे, क्योंकि ''प्रबंधकाव्य में मानव जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है ।'' 'सूर सागर' भी उन्हें इसीलिए परिसीमित लगा क्योंकि वह 'गीतिकाव्य' है । आधुनिक कविता से उन्हें शिकायत भी इसीलिए थी कि 'कला कला' की पुकार के कारण यूरोप में प्रगीत मुक्तकों (लिरिक्स) का ही चलन अधिक देखकर यहाँ भी उसी का जमाना यह बताकर कहा जाने लगा कि अब ऐसी लंबी कविताएँ पढ़ने की किसी को फुरसत कहाँ जिनमें कुछ इतिवृत्त भी मिला रहता हो । अब तो विशुद्ध काव्य की सामग्री जुटाकर सामने रख देनी चाहिए जो छोटे-छोटे प्रगीत-मुक्तकों में ही संभव है । इस प्रकार काव्य में जीवन की अनेक परिस्थितियों की ओर ले जानेवाले प्रसंगों या आख्यानों की उद्भावना बंद सी हो गई । इसीलिए ज्यों ही प्रसाद की 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया' तथा 'कामायनी' और निराला की 'राम की शक्तिपूजा' तथा 'तुलसीदास'-जैसे आख्यानक काव्य सामने आए तो आचार्य शुक्ल ने संतोष व्यक्त किया ।

स्वीकार करना चाहता हूँ कि पंद्रह वर्ष पहले 'कविता के नए प्रतिमान' में कविता के प्रतिमान को व्यापकता प्रदान करने के लिए जब मैंने मुक्तिबोध की लंबी कविताओं जैसी वस्तुपरक नाट्यधर्मी कविताओं को भी विचार की सीमा में ले आने के लिए आग्रह किया था तो आत्मपरक प्रगीतधर्मी छोटी कविताओं में निहित सामाजिक सार्थकता की संभावनाओं का पूरा-पूरा एहसास न था । लेकिन इस बात में न तब संदेह था और न अब संदेह है कि नई कविता के अंदर आत्मपरक कविताओं की एक ऐसी प्रबल प्रवृत्ति थी

जो या तो समाज निरपेक्ष थी या फिर जिसकी सामाजिक अर्थवत्ता सीमित थी । इसीलिए इन सीमित अर्थभूमिवाली कविताओं के आधार पर निर्मित एकांगी एवं अपर्याप्त काव्य सिद्धांत के दायरे को तोड़कर एक व्यापक काव्य सिद्धांत की स्थापना के लिए मुक्तिबोध की कविताओं का समावेश ऐतिहासिक आवश्यकता थी । किंतु इनके बाद भी ऐसी अनेक आत्मपरक प्रगीतधर्मी छोटी कविताएँ बच रहती हैं जो अपनी सामाजिक अर्थवत्ता के कारण उस काव्य सिद्धांत को व्यापक बनाने में समर्थ हैं ।

इस दिशा में पुनर्विचार के लिए, सच पूछिए तो, मुझे सबसे पहले प्रेरणा स्वयं मुक्तिबोध के काव्य से ही मिली । मुक्तिबोध ने सिर्फ लंबी कविताएँ ही नहीं लिखीं । उनकी अनेक कविताएँ छोटी भी हैं, और छोटी होने के बावजूद लंबी कविताओं से किसी कदर कम सार्थक नहीं हैं । वे कविताएँ अपने रचना-विन्यास में प्रगीतधर्मी हैं । किसी-किसी के मत में तो ''नाटकीय रूप के बावजूद मुक्तिबोध की काव्यभूमि मुख्यतः प्रगीतभूमि है ।'' इसमें कोई शक नहीं कि मुक्तिबोध का समूचा काव्य मूलतः आत्मपरक है–तीव्रतम रूप में । रचना-विन्यास में कहीं वह पूर्णतः नाट्यधर्मी है, कहीं नाटकीय एकालाप है, कहीं नाटकीय प्रगीत है और कहीं शुद्ध प्रगीत भी: जैसे 'सहर्ष स्वीकारा है' अथवा 'मैं तुम लोगों से दूर हूँ' । जैसा कि कवि ने एक जगह स्वयं लिखा है : ''निस्संदेह उसमें कथा केवल आभास है, नाटकीयता केवल मरीचिका है, वह विशुद्ध आत्मगत काव्य है ।'' जहाँ नाटकीयता है वहाँ भी ''कविता के भीतर की सारी नाटकीयता वस्तुतः भावों की है ।'' जहाँ नाटकीय है वहाँ भी ''कविता के भीतर की सारी नाटकीयता वस्तुतः भावों की गतिमयता है'' क्योंकि ''वहाँ जीवन यथार्थ केवल भाव बनकर प्रस्तुत होता है, या बिंब बनकर या विचार बनकर ।'' इस प्रकार यह आत्मपरकता अथवा भावमयता मुक्तिबोध की सीमा नहीं, बल्कि शक्ति है जो उनकी प्रत्येक कविता को गति और ऊर्जा प्रदान करती है । इस गति और ऊर्जा का मूल स्रोत है इस काव्य के प्रगीत नायक का व्यक्तित्व । यह नई कविता के उन प्रगीत नायकों से एकदम भिन्न है जिनके 'अंतःकरण का आयतन संक्षिप्त है ।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये आत्मपरक प्रगीत भी, नाट्यधर्मी लंबी कविताओं के सदृश ही यथार्थ को प्रतिध्वनित करते हैं । अंतर सिर्फ इतना है कि यहाँ वस्तुगत यथार्थ को अंतर्जगत उस मात्रा में घुला लेता है जितनी उस यथार्थ की ऐंद्रिय उद्बुद्धता के लिए आवश्यक है । इस प्रकार एक प्रगीतधर्मी कविता में वस्तुगत यथार्थ अपनी चरम आत्मपरकता के रूप में ही व्यक्त होता है ।

मुक्तिबोध की आत्मपरक छोटी कविताओं में निहित सामाजिक सार्थकता का बोध स्वभावतः हमारा ध्यान उन्हीं के समानधर्मी एक अन्य कवि त्रिलोचन की ओर ले जाता है जिन्होंने कुछ चरित्र केंद्रित लंबी वर्णनात्मक कविताओं के बावजूद ज्यादातर सॉनेट और गीत ही लिखे हैं । कहने के लिए तो ये प्रगीत हैं लेकिन जीवन, जगत और प्रकृति के जितने रंग-बिरंगे चित्र त्रिलोचन के काव्य संसार में मिलते हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं । किंतु इन भास्वर चित्रों को अंततः जीवंत बनानेवाला प्रगीत नायक का एक अनूठा व्यक्तित्व है जिसका स्पष्ट चित्र 'उस जनपद का कवि हूँ' संग्रह के उन आत्मपरक सॉनेटों में मिलता है । वही त्रिलोचन है वह जिसके तन पर गंदे कपड़े हैं–जैसे आत्मचित्र वस्तुतः एक प्रगीत नायक की निर्वैयक्तिक कल्प-सृष्टि है, जिनसे नितांत वैयक्तिकता के बीच भी एक 'प्रतिनिधि चरित्र' से परिचय की अनुभूति होती है । यदि ऐसे आत्मपरक प्रगीत सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से अप्रासंगिक माने जाएँगे तो फिर हिंदी कविता की स्थिति विपन्न ही कहलाएगी ।

प्रसंगवश यहीं नागार्जुन का भी स्मरण किया जा सकता है, जिनकी बहिर्मुखी आक्रामक काव्य प्रतिभा के बीच आत्मपरक प्रगीतात्मक अभिव्यक्ति के क्षण कम ही आते हैं, लेकिन जब आते हैं तो उनकी विकट तीव्रता प्रगीतों के परिचित संसार को एक झटके से छिन्न-भिन्न कर देती है फिर चाहे वह 'तन गई रीढ़'–जैसी प्रेम तथा ममता की नितांत निजी अनुभूति हो, चाहे जेल के सींखचों से सिर टिकाए चलने वाला अनुचिंतन और अनुताप, नागार्जुन के काव्य संसार के प्रगीत नायक का निष्कवच फक्कड़ व्यक्तित्व उनके प्रगीतों को विशिष्ट रंग तो देता ही है, निश्चित सामाजिक अर्थ भी ध्वनित करता है ।

प्रगीत काव्य के प्रसंग में मुक्तिबोध, त्रिलोचन और नागार्जुन के उल्लेख से यदि कुछ लोगों की भौंहें उठें या तनें तो इसका कारण सिर्फ यह होगा कि यह एक नया प्रगीतधर्मी कवि-व्यक्तित्व है : चिर-परिचित प्रतिमा से नितांत भिन्न । अपनी वैयक्तिकता में विशिष्ट और सामाजिकता में सामान्य । व्यक्तिवादी न होते हुए भी व्यक्ति-विशिष्ट । अपने समाज से लड़ते हुए भी सामाजिक । दुनियादार न होते हुए भी इसी दुनिया का । ये नए प्रगीत इसी नए व्यक्तित्व से संभव हो सके हैं ।

इस नए प्रगीतधर्मी कवि-व्यक्तित्व के समकालीन विकास की दशाओं पर दृष्टिपात करने से पूर्व एक बार हिंदी कविता के इतिहास में प्रगीतधर्मी कविताओं की सामाजिक भूमिका का सिंहावलोकन कर लेना अप्रासंगिक न होगा ।

कितनी बड़ी विडंबना है कि जिस साहित्य में काव्योत्कर्ष के मानदंड प्रबंधकाव्यों के आधार पर बने हों और जहाँ प्रबंधकाव्य को ही व्यापक जीवन के प्रतिबिंब के रूप में स्वीकार किया गया हो, उसकी कविता का इतिहास मुख्यत: प्रगीत मुक्तकों का है, यही नहीं बल्कि गीतों ने ही जनमानस को बदलने में क्रांतिकारी भूमिका अदा की है । 'रामचरितमानस' की महिमा से किसी को इनकार नहीं, लेकिन 'विनय पत्रिका' के पद एक व्यक्ति का अरण्य रोदन मात्र नहीं है । यह तो मानस के मर्मी भी मानते हैं कि तुलसी के विनय के पदों में पूरे युग की वेदना व्यक्त हुई है और उनकी चरम वैयक्तिकता ही परम सामाजिकता है । तुलसी के अलावा कबीर, सूर, मीरा, नानक, रैदास आदि अधिकांश संतों ने प्राय: दोहे और गेय पद ही लिखें हैं । यदि विद्यापति को हिंदी का पहला कवि माना जाए तो हिंदी कविता का उदय ही गीत से हुआ, जिसका विकास आगे चलकर संतों और भक्तों की वाणी में हुआ । गीतों के साथ हिंदी कविता का उदय कोई सामान्य घटना नहीं, बल्कि एक नई प्रगीतात्मकता (लिरिसिज्म) के विस्फोट का ऐतिहासिक क्षण है जिसके धमाके से मध्ययुगीन भारतीय समाज की रूढ़ि-जर्जर दीवारें हिल उठीं, साथ ही जिसकी माधुरी सामान्यजन के लिए संजीवनी सिद्ध हुई । कहने की आवश्यकता नहीं कि लोकभाषा की परिष्कृत प्रगीतात्मकता का यह उन्मेष भारतीय साहित्य की अभूतपूर्व घटना है, जिसकी अभिव्यक्ति हिंदी के साथ ही भारत की सभी आधुनिक भाषाओं में लगभग साथ-साथ हुई ।

प्रगीतात्मकता का दूसरा उन्मेष बीसवीं सदी में रोमांटिक उत्थान के साथ हुआ, जिसका संबंध भारत के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष से है । भक्ति काव्य से भिन्न इस रोमांटिक प्रगीतात्मकता के मूल में एक नया व्यक्तिवाद है, जहाँ 'समाज' के बहिष्कार के द्वारा ही व्यक्ति अपनी सामाजिकता प्रमाणित करता है । इन रोमांटिक प्रगीतों में भक्तिकाव्य जैसी तन्मयता भले न हो, किंतु आत्मीयता और ऐंद्रियता कहीं अधिक है । उल्लेखनीय है कि इस दौरान सीधे-सीधे राष्ट्रीयता संबंधी विचारों तथा भावों को काव्यरूप देनेवाले

मैथिलीशरण गुप्त जैसे राष्ट्रकवि भी हुए और अधिकांशतः उन्होंने प्रबंधात्मक काव्य ही लिखे, जिन्हें उस समय ज्यादा 'सामाजिक' माना गया; लेकिन प्रबुद्धजनों को जल्द ही इस सचाई का एहसास हो गया कि असामाजिक प्रतीत होनेवाले रोमैंटिक प्रगीत उस युग की चेतना को कहीं अधिक गहराई से वाणी दे रहे थे और उनकी 'असामाजिकता' में ही सच्ची सामाजिकता थी ।

आलोचकों की दृष्टि में सच्चे अर्थों में प्रगीतात्मकता का आरंभ यहीं है, जिसका आधार है समाज के विरुद्ध व्यक्ति । इस प्रकार प्रगीतात्मकता का अर्थ हुआ 'एकांत संगीत' अथवा 'अकेले कंठ की पुकार'। प्रगीतात्मकता की यह धारणा इतनी बद्धमूल हो गई है कि आज भी प्रगीत के रूप में प्रायः उसी कविता को स्वीकार किया जाता है जो नितांत वैयक्तिक और आत्मपरक हो । चूँकि इस प्रकार के व्यक्तिवाद को जन्म देने वाली औद्योगिक पूँजीवादी समाजव्यवस्था, समाप्त होने की जगह और भी विकसित हो रही है, इसीलिए फिलहाल प्रगीत कविता की इस मानसिक धारणा से छुटकारा संभव नहीं ।

निश्चय ही इस स्थिति में कुछ परिवर्तन घटित हुआ है । फलतः कवि की मानसिकता भी बदली है । व्यक्ति बनाम समाज जैसे सरल द्वंद्व का स्थान समाज के अपने अंतर्विरोधों ने ले लिया है । व्यक्तिवाद उतना आश्वस्त नहीं रहा । स्वयं व्यक्ति के अंदर भी अंतःसंघर्ष पैदा हुआ । विद्रोह का स्थान आत्मविडंबना ने ले लिया । इस प्रकार प्रगीतात्मकता विडंबनाग्रस्त हुई और उसके रचना-विन्यास में पेचीदगी आई । आत्मपरकता कदाचित और बढ़ी । इसके साथ ही आत्मेतर का दबाव भी । तथाकथित नई कविता की प्रगीतात्मकता में आए नए मोड़ों और मरोड़ों को इसी आलोक में समझा जा सकता है ।

इस प्रसंग में मुझे शमशेर जी की 1941 की लिखी एक कविता याद आ रही है, जिसे संयोग से उन दिनों काशी में एक शाम उन्हीं के मुख से सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । कविता इस प्रकार है–

लेकर सीधा नारा
कौन पुकारा
अंतिम आशाओं की संध्याओं से ?
पलकें डूबी ही सी थीं -
पर अभी नहीं;
कोई सुनता सा था मुझे
कहीं;
पर किसने यह, सातों सागर के पार
एकाकीपन से ही, मानो-हार,
एकाकी उठ मुझे पुकारा
कई बार ?
मैं समाज तो नहीं ; न मैं कुल

जीवन ;

कण-समूह में हूँ मैं केवल

एक कण ।

-कौन सहारा !

मेरा कौन सहारा !

आज दुबारा इस कविता को पढ़ते हुए मुझे थियोडोर एडोर्नो का एक वाक्य याद आ रहा है जिसका भाव यह है कि ''कविता जो कुछ कह रही है उसे सिर्फ वही समझ सकता है जो इसके एकाकीपन में मानवता की आवाज सुन सकता है ।'' मैं इस कविता की व्याख्या करने का साहस न करूँगा, लेकिन यहाँ समाज के उस दबाव को भी महसूस किया जा सकता है और अपने अकेले होने की विडंबना को भी; और यही वे बिंदु हैं जो इस कविता की निराशा को बच्चन जैसे कवियों की सरल सपाट निराशा से अलग करते हुए एक गहरी सामाजिक सचाई को व्यक्त करते हैं ।

इस साँसत की स्थिति से उबरने का एक उपाय तो वह है जिसे एक समय के प्रगतिवाद ने सुझाया था : अंदर से एकदम बाहर निकलकर जनता के पास जाना । निस्संदेह कुछ लोगों ने यह रास्ता अपनाया भी–यहाँ तक कि शमशेर जी भी कभी-कभी उस रास्ते चल पड़ते थे । परिणाम, कविता नितांत सामाजिक हो गई और जिस हद तक हुई उस हद तक प्रगीतात्मकता से ही नहीं बल्कि कवित्व से भी वंचित हुई। जल्द ही रघुवीर सहाय के शब्दों में कवि ने, यदि वह संवेदनशील हुआ तो, अनुभव किया कि ''बाहर बाहर जाते जाते/अब अपना मन खाली है ।'' इस अनुभव के बाद या तो फिर वही अंतर्गुहावास ! या फिर आत्मसंघर्ष । नई कविता के अनेक कवियों ने अंतर्गुहावास का रास्ता अपनाया तो मुक्तिबोध ने आत्मसंघर्ष का, जो उन्हें प्रायः बहिःसंघर्ष में भी झोंकता रहा । एक में प्रगीतात्मकता सीमित हुई तो दूसरे में प्रगीतात्मकता के कुछ नए आयाम उद्घाटित हुए । कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दो छोरों के बीच तथा इनके अलावा और भी अनेक स्थितियाँ रही हैं, जिनके ब्यौरे में जाने का समय संप्रति नहीं है । प्रसंगवश इतना ही कहना काफी होगा कि अभी कुछ साल पहले एक दशक ऐसा फिर आया था जब अनेक कवि अपने अंदर का दरवाजा तोड़कर एकदम बाहर निकल आए थे और व्यवस्था के विरोध के जुनून में उन्होंने ढेर सारी 'सामाजिक' कविताएँ लिख डालीं, जिन्हें देखकर कविता को भी शर्म आए । गनीमत है कि वह दौर जल्द ही खत्म हो गया ।

पिछले पाँच वर्षों से हिंदी कविता के वातावरण में फिर कुछ परिवर्तन के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं । यह परिवर्तन न बहुत बड़ा है, न क्रांतिकारी ही ! लेकिन कविता की पुनःप्रतिष्ठा, प्रत्यभिज्ञान अथवा प्रत्याश्वस्ति जैसा कुछ अवश्य है । संयोग से यह परिवर्तन इधर उभरनेवाली एक युवा पीढ़ी के कवियों के द्वारा घटित हुआ है, लेकिन इसमें पहले की पीढ़ी के कवियों के किंचित बदले हुए स्वर का भी योगदान है । इसे मैं एक नई प्रगीतात्मकता का उभार कहना चाहूँगा । आज कवि को न तो अपने अंदर झाँककर देखने में संकोच है, न बाहर के यथार्थ का सामना करने में कोई हिचक । अंदर न तो किसी असंदिग्ध विश्वदृष्टि का मजबूत खूँटा गाड़ने की जिद है और न बाहर व्यवस्था को एक विराट पहाड़ के रूप में आँकने की हवस । बाहर छोटी से छोटी घटना, स्थिति, वस्तु आदि पर नजर है और कोशिश है उसे अर्थ

देने की। इसी प्रकार बाहर की प्रतिक्रियास्वरूप अंदर उठनेवाली छोटी से छोटी लहर को भी पकड़कर उसे शब्दों में बाँध लेने का उत्साह है। अब यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि न रोमैंटिक ढंग का व्यक्तिवादी विद्रोह संभव है और न अपने अंदर सिमटकर मानसिक जुगाली करने में ही निष्कृति है। गरज कि एक नए स्तर पर कवि-व्यक्ति अपने और समाज के बीच के रिश्ते को साधने की कोशिश कर रहा है और इस प्रक्रिया में जो व्यक्तित्व बनता दिखाई दे रहा है वह निश्चय ही एक नए ढंग की प्रगीतात्मकता के उभार का संकेत है! कहने की आवश्यकता नहीं कि यह रोमैंटिक गीतों की वापसी नहीं है और न ही कविता को नितांत वैयक्तिक मोड़ देने की कोई साजिश! इसका अर्थ उन आत्मपरक कविताओं की ओर आलोचक की वापसी भी नहीं है जिसे पहले मुक्तिबोध ने 'एक साहित्यिक की डायरी' में और फिर मैंने 'कविता के नए प्रतिमान' में ''जड़ीभूत सौंदर्यानुभूति'' के रूप में तिरस्कृत किया था। जरूरी नहीं कि यह प्रगीतात्मकता छंदों की ओर लौटकर ही अपनी विशिष्टता प्रमाणित करे। इधर की कविताओं से धीरे-धीरे यह बात पुष्ट होती जा रही है कि मितकथन में अतिकथन से अधिक शक्ति होती है और ठंढे स्वर की तासीर भी कभी-कभी काफी गरम होती है।

यदि सिर्फ दो ठोस उदाहरणों से अपनी बात स्पष्ट करनी हो तो इस नई प्रगीतात्मकता का एक पहलू केदारनाथ सिंह की इस कविता से व्यक्त होता है–

उसका हाथ
अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा
दुनिया को
हाथ की तरह गर्म और सुंदर होना चाहिए।

और दूसरा पहलू शरद विल्लौरे की 'तय तो यही था' कविता की इन अंतिम पंक्तियों से–

हारकर मैं
समूचा तराजू पर ही चढ़ गया
आसमान से फूल नहीं बरसे
कबूतर ने कोई दूसरा रूप नहीं लिया
और मैंने देखा
बाज की दाढ़ में
आदमी का खून लग चुका है!

❑❑❑

# अभ्यास

### पाठ के साथ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के काव्य-आदर्श क्या थे, पाठ के आधार पर स्पष्ट करें ।
2. 'कला कला के लिए' सिद्धांत क्या है ?
3. प्रगीत को आप किस रूप में परिभाषित करेंगे । इसके बारे में क्या धारणा प्रचलित रही है ?
4. वस्तुपरक नाट्यधर्मी कविताओं से क्या तात्पर्य है ? आत्मपरक प्रगीत और नाट्यधर्मी कविताओं की यथार्थ-व्यंजना में क्या अंतर है ?
5. हिंदी कविता के इतिहास में प्रगीतों का क्या स्थान है, सोदाहरण स्पष्ट करें ।
6. आधुनिक प्रगीत काव्य किन अर्थों में भक्ति काव्य से भिन्न एवं गुप्त जी आदि के प्रबंध काव्य से विशिष्ट है ? क्या आप आलोचक से सहमत हैं ? अपने विचार दें ।
7. ''कविता जो कुछ कह रही है उसे सिर्फ वही समझ सकता है जो इसके एकाकीपन में मानवता की आवाज सुन सकता है ।'' इस कथन का आशय स्पष्ट करें । साथ ही, किसी उपयुक्त उदाहरण से अपने उत्तर की पुष्टि करें ।
8. मुक्तिबोध की कविताओं पर पुनर्विचार की आवश्यकता क्यों है, आलोचक के इस विषय में क्या निष्कर्ष हैं ?
9. त्रिलोचन और नागार्जुन के प्रगीतों की विशेषताएँ क्या हैं ? पाठ के आधार पर स्पष्ट करें । नामवर सिंह ने त्रिलोचन के सॉनेट 'वही त्रिलोचन है वह' और नागार्जुन की कविता 'तन गई रीढ़' का उल्लेख किया है, ये दोनों रचनाएँ 'पाठ के आस-पास' खंड में दी गई हैं, उन्हें भी पढ़ते हुए अपने विचार दें ।
10. 'मितकथन में अतिकथन से अधिक शक्ति होती है', केदारनाथ सिंह की उद्धृत कविता से इस कथन की पुष्टि करें । दिगंत (भाग – 1) में प्रस्तुत 'हिमालय' कविता के प्रसंग में भी इस कथन पर विचार करें ।
11. हिंदी की आधुनिक कविता की क्या विशेषताएँ आलोचक ने बताई हैं ?

### पाठ के आस-पास

1. पाठ में अनेक कवियों और कविताओं के नाम आए हैं । उन्हें अलग-अलग लिखें तथा उनसे परिचय विकसित करें ।
2. नामवर सिंह हिंदी आलोचना के शीर्षस्थ पुरुष हैं । इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संबंध में अपने शिक्षक से जानकारी प्राप्त करें ।
3. मुक्तिबोध अपनी लंबी कविताओं के लिए ख्यात हैं । 'अँधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस' आदि उनकी बहुचर्चित लंबी कविताएँ हैं । इन कविताओं के संबंध में अपने शिक्षक से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करें ।
4. नामवर सिंह ने त्रिलोचन के सॉनेट 'वही त्रिलोचन है वह' और नागार्जुन की कविता 'तन गई रीढ़' का उल्लेख किया है । दोनों रचनाएँ यहाँ दी जा रही हैं ।

**वही त्रिलोचन है वह**

वही त्रिलोचन है, वह-जिसके तन पर गंदे
कपड़े हैं । कपड़े भी कैसे फटे-लटे हैं,
यह भी फैशन है, फैशन से कटे-कटे हैं ।

कौन कह सकेगा इसका यह जीवन चंदे
पर अवलंबित है, चलना तो देखो इसका -
उठा हुआ सिर, चौड़ी छाती, लंबी बाँहें,
सधे कदम, तेजी, वे टेढ़ी-मेढ़ी राहें,
मानो डर से सिकुड़ रही हैं, किसको किसका
ध्यान इस समय खींच रहा है । कौन बताए,
क्या हलचल है, इसके रुँधे रुँधाए जी में
कभी नहीं देखा है इसको चलते धीमे ।
धुन का पक्का है, जो चेते वही चिताए ।
जीवन इसका जो कुछ है पथ पर बिखरा है,
तप तपकर ही भट्ठी में सोना निखरा है ।

## तन गई रीढ़

झुकी पीठ को मिला
किसी हथेली का स्पर्श
तन गई रीढ़

महसूस हुई कंधों को
पीछे से,
किसी नाक की सहज उष्ण निराकुल साँसें
तन गई रीढ़

कौंधी कहीं चितवन
रंग गए कहीं किसी के होंठ
निगाहों के जरिए जादू घुसा अंदर
तन गई रीढ़

गूँजी कहीं खिलखिलाहट
टूक टूक होकर छितराया सन्नाटा
भर गए कर्णकुहर
तन गई रीढ़

आगे से आया
अलकों के तैलाक्त परिमल का झोंका
रग-रग में दौड़ गई बिजली
तन गई रीढ़

4. 'मानस के मर्मी भी मानते हैं कि तुलसी के विनय के पदों में पूरे युग की वेदना व्यक्त हुई है और उनकी चरम वैयक्तिकता ही परम सामाजिकता है ।' आपकी पाठ्यपुस्तक में विनय पत्रिका के दो पद संकलित हैं । उन्हें पढ़ते हुए आलोचक के इस कथन पर विचार करें ।

5. आलोचक ने नई पीढ़ी के जिन कवियों की ओर संकेत किया है, आपकी पुस्तक में संकलित ज्ञानेंद्रपति और दिगंत (भाग – 1) में संकलित अरुण कमल उन्हीं में से हैं । इस पीढ़ी के अन्य कवियों के नाम मालूम करें ।

### भाषा की बात

1. दिए गए शब्दों से विशेषण बनाइए –
   तीव्रता, समाज, व्यक्ति, आत्मा, प्रसंग, विचार, इतिहास, स्मरण, शर्म, लक्षण, इंद्रिय ।
2. नीचे लिखे वाक्यों से अव्ययों और कारक चिह्नों को अलग करें, कारक के चिह्न किस कारक के हैं, यह भी बताएँ –
   (क) कहने की आवश्यकता नहीं कि ये आत्मपरक प्रगीत भी नाट्यधर्मी लंबी कविताओं के सदृश ही यथार्थ को प्रतिध्वनित करते हैं ।
   (ख) इस दिशा में पुनर्विचार के लिए सच पूछिए तो मुझे सबसे पहले प्रेरणा स्वयं मुक्तिबोध के काव्य से ही मिली ।
   (ग) आज भी प्रगीत के रूप में प्रायः उसी कविता को स्वीकार किया जाता है जो नितांत वैयक्तिक और आत्मपरक हो ।
   (घ) एक में प्रगीतात्मकता सीमित हुई तो दूसरे में प्रगीतात्मकता के कुछ नए आयाम उद्घाटित हुए ।
3. रचना की दृष्टि से निम्नलिखित वाक्यों की प्रकृति बताएँ एवं संयुक्त वाक्य को सरल वाक्य में बदलें–
   (क) कविता पर समाज का दबाव तीव्रता से महसूस किया जा रहा है ।
   (ख) यह परिवर्तन न बहुत बड़ा है, न क्रांतिकारी ।
   (ग) मुक्तिबोध ने सिर्फ लंबी कविताएँ ही नहीं लिखी हैं ।
   (घ) आलोचकों की दृष्टि में सच्चे अर्थों में प्रगीतात्मकता का आरंभ यहीं है, जिसका आधार है समाज के विरुद्ध व्यक्ति ।
   (ङ) पिछले पाँच-छह वर्षों से हिंदी कविता के वातावरण में फिर कुछ परिवर्तन के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं ।

### शब्द निधि

नितांत : बिलकुल
निष्कृति : मुक्ति, छुटकारा
उद्भावना : कल्पना
प्रतिमान : मूल्य, माप
इतिवृत्त : तथ्य, कथासार, घटनासार
एकांगी : एकपक्षीय
उद्बुद्धता : मानसिक जागृति
निर्वैयक्तिक : जो व्यक्तिगत न हो, वस्तुपरक
कल्प-सृष्टि : काल्पनिक सृष्टि
अरण्य रोदन : निर्जन वन में रोना, जिसे कोई सुननेवाला न हो
संजीवनी : मुर्दों को जिलाने वाली जड़ी
मर्मी : मर्मवाला, हार्दिक
परिष्कृत : निखरा हुआ, साफ
आत्मेतर : आत्म से भिन्न
उन्मेष : जगना, नई समझ
अंतर्गुहावास : मन की गुफा में रहना जहाँ कोई देख पहचान न सके
प्रत्याश्वस्ति : किसी वस्तु या भाव को देखकर मन में संतोष होना
तासीर : प्रभाव, असर
अनुचिंतन : किसी वस्तु या घटना के अनुरूप चिंतन
अनुताप : किसी घटना या बात के बाद का दुख
कर्णकुहर : कानों के भीतर के हिस्से

# ओमप्रकाश वाल्मीकि

जन्म : 30 जून 1950 ।

जन्म-स्थान : बरला, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश ।

माता-पिता : मकुंदी देवी और छोटनलाल ।

शिक्षा : अक्षरज्ञान का प्रारंभ मास्टर सेवक राम मसीही के खुले, बिना कमरे, बिना टाट-चटाईवाले स्कूल से । उसके बाद बेसिक प्राइमरी स्कूल में दाखिला । 11वीं की परीक्षा बरला इंटर कॉलेज, बरला से उत्तीर्ण । लेकिन 12वीं की परीक्षा में अनुत्तीर्ण । फलस्वरूप बरला कॉलेज छोड़कर डी० ए० वी० इंटर कॉलेज, देहरादून में दाखिला । कई वर्षों तक पढ़ाई बाधित । 1992 में हेमवंती नंदन बहुगुणा, गढ़वाल, श्रीनगर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम० ए० ।

वृत्ति : 12वीं कक्षा में ही ऑर्डिनेंस फैक्ट्री, देहरादून में अप्रेंटिस की नौकरी । फिर ऑर्डिनेंस फैक्ट्री, चाँदा ( चंद्रपुर, महाराष्ट्र ) में ड्राफ्टमैन की नौकरी । संप्रति, भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के उत्पादन विभाग के अधीन ऑर्डिनेंस फैक्ट्री की ऑप्टो-इलेक्ट्रॉनिक्स फैक्टरी, देहरादून में अधिकारी के रूप में कार्यरत।

सम्मान : डॉ० अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार ( 1993 ), परिवेश सम्मान ( 1995 ), जयश्री सम्मान ( 1996 ), कथाक्रम सम्मान ( 2000 ) ।

कृतियाँ : जूठन ( आत्मकथा ); सलाम, घुसपैठिए ( कहानी संग्रह ); सदियों का संताप, बस्स ! बहुत हो चुका, अब और नहीं ( कविता संकलन ); दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र ( आलोचना ) ।

महाराष्ट्र में 'मेघदूत' नाम की नाट्य संस्था स्थापित की । इस संस्था के माध्यम से अनेक नाटकों में अभिनय के साथ-साथ मंचन-निर्देशन भी किया ।

हिंदी क्षेत्र में पिछले दशकों में आए सामाजिक उभार और गहराती राजनीतिक चेतना के कारण दक्षिण और महाराष्ट्र प्रदेशों की तरह हिंदी साहित्य में भी दलित चेतना एवं भावधारा का विकास हुआ है । यह समाज एवं साहित्य के लिए हितकर एवं शुभ है । इससे यह तथ्य प्रमाणित होता है कि समाज में सामंती जकड़बंदियाँ टूट रही हैं या ढीली पड़ रही हैं । वैज्ञानिक परिदृष्टि, समाजवादी वैचारिक जागरण, मानवाधिकारवाद और लोकतंत्र के युग में सामंती सोच और भेदबुद्धि पर टिकी समाज व्यवस्था आमूल बदलनी चाहिए । उसे मध्ययुगीन संस्कारों से उबरकर समता, न्याय, बंधुत्व और सामाजिक सद्भाव की दिशा में अपना कायाकल्प करना चाहिए । सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में दिखाई पड़ते पिछड़ा-दलित उभार और संप्रदाय, जाति, लिंग आदि के विभेदों के विरुद्ध आंदोलनों के पीछे की कामना, संकल्प और विचार का यही सार है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी में दलित आंदोलन से जुड़े महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं । उनके साहित्य में महज आक्रोश और प्रतिक्रिया से परे समता, न्याय और मानवीयता पर टिकी एक नई पूर्णतर सामाजिक चेतना और संस्कृतिबोध की आहट है । वे सिर्फ किन्हीं विचारधाराओं के संसर्ग और ताप पर निर्भर समीकरणों और फॉर्मूलों के सहारे नहीं लिखते । उनके लेखन में उनके अपने जीवनानुभवों की सचाई और वास्तव बोध से उपजी नवीन रचना संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है । दलित जीवन के रोष और आक्रोश को वे अपने संवेदनात्मक रचनानुभवों की भट्ठी में गलाकर रचना की एक नई इबारत पेश करते हैं, जिसका परिप्रेक्ष्य व्यापक अर्थों में मानवीय है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' ने व्यापक पाठक वर्ग का ध्यान आकृष्ट किया था । उनकी आत्मकथा का यहाँ प्रस्तुत संकलित अंश बानगी के रूप में है । इस अंश से संपूर्ण आत्मकथा पढ़ने की प्रेरणा जगती है । आत्मकथा और उसका यहाँ संकलित अंश अनतिरंजित और वास्तविक है । वास्तविकता का माटी और पानी सरीखा रंग ही इसके रचनात्मक गद्य की विशेषता है । अपनी संवेदना और मर्मस्पर्शिता के कारण प्रस्तुत अंश मन पर गहरा असर छोड़ जाता है ।

◆ ◆ ◆

**"सैकड़ों जातियों में विभक्त दलित समाज का जीवन जितना विविध आयामी है उसकी समस्याओं के भी उतने ही रूप हैं । प्रत्येक जाति की कुछ विशिष्ट समस्याएँ हैं, किंतु अभाव और उत्पीड़न सभी दलित जातियों का सामान्य और सबसे बड़ा सत्य है । हजारों साल से दलितों के अन्याय, अपमान, उत्पीड़न और अभाव के पीछे प्रमुख कारण उनका अशिक्षित होना रहा है । अशिक्षित होने के कारण दलित न तो अपने विरुद्ध रचे गए शास्त्रीय विधानों को ठीक से समझ सके और न उनका प्रतिकार कर सके बल्कि इसके विपरीत वे इस शास्त्रसम्मत शोषण को अपनी नियति मानते रहे । जीवन के लिए शिक्षा कितनी आवश्यक है, इसका एहसास उनको नहीं हुआ ।"**

**– जयप्रकाश कर्दम**

# जूठन

...एक रोज हेडमास्टर कलीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा, ''क्या नाम है बे तेरा ?''

''ओमप्रकाश'', मैंने डरते-डरते धीमे स्वर में अपना नाम बताया । हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे । पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी ।

''चूहड़े का है ?'' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला ।

''जी ।''

''ठीक है...वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़ के झाड़ू बणा ले, पत्तों वाली झाड़ू बणाना । और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा । तेरा तो यो खानदानी काम है । जा फटाफट लग जा काम पे ।''

हेडमास्टर के आदेश पर मैंने कमरे, बरामदे साफ कर दिए, तभी वे खुद चलकर आए और बोले, ''इसके बाद मैदान भी साफ कर दे ।''

लंबा-चौड़ा मैदान मेरे वजूद से कई गुना बड़ा था । जिसे साफ करने से मेरी कमर दर्द करने लगी थी । धूल से चेहरा, सिर अट गया था । मुँह के भीतर धूल घुस गई थी । मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था । हेडमास्टर अपने कमरे में बैठे थे लेकिन निगाह मुझ पर टिकी हुई थी । पानी पीने तक की इजाजत नहीं थी । पूरा दिन मैं झाड़ू लगाता रहा । तमाम अनुभवों के बीच कभी इतना काम नहीं किया था । वैसे भी घर में भाइयों का मैं लाड़ला था ।

दूसरे दिन स्कूल पहुँचा । जाते ही हेडमास्टर ने फिर झाड़ू के काम पर लगा दिया । पूरे दिन झाड़ू ही देता रहा । मन में एक तसल्ली थी कि कल से कक्षा में बैठ जाऊँगा ।

तीसरे दिन मैं कक्षा में चुपचाप जाकर बैठ गया । थोड़ी देर बाद उनकी दहाड़ सुनाई दी । उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर-थर काँपने लगा था । एक त्यागी लड़के ने चिल्ला कर कहा, मास्साब वो बैठा है कोणे में ।

हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली । उनकी उँगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था । जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोच कर उठा लेता है । कक्षा से बाहर खींच कर उसने मुझे बरामदे में ला पटका । चीख कर बोले, ''जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू...''

भयभीत होकर मैंने तीन दिन पुरानी वही शीशम की झाड़ू उठा ली । मेरी तरह ही उसके पत्ते सूख कर झड़ने लगे थे । सिर्फ बची थी पतली-पतली टहनियाँ । मेरी आँखों से आँसू बहने लगे थे । रोते-रोते मैदान में झाड़ू लगाने लगा । स्कूल के कमरे की खिड़की-दरवाजों से मास्टरों और लड़कों की आँखें छिप-छिप कर तमाशा देख रही थी । मेरा रोम-रोम यातना की गहरी खाई में लगातार गिर रहा था ।

मेरे पिताजी अचानक स्कूल के पास से गुजरे । मुझे स्कूल के मैदान में झाड़ू लगाता देख कर ठिठक गए । बाहर से ही आवाज देकर बोले, ''मुंशीजी, यो क्या कर रहा है ?'' वे प्यार से मुझे मुंशीजी कहा करते थे । उन्हें देखकर मैं फफक पड़ा । वे स्कूल के मैदान में मेरे पास आ गए । मुझे रोता देखकर बोले, ''मुंशीजी रोते क्यों हो ? ठीक से बोल क्या हुआ है ?''

मेरी हिचकियाँ बँध गई थीं । हिचक-हिचक कर पूरी बात पिताजी को बता दी कि तीन दिन से रोज झाड़ू लगवा रहे हैं । कक्षा में पढ़ने भी नहीं देते ।

पिताजी ने मेरे हाथ से झाड़ू छीन कर दूर फेंक दी । उनकी आँखों में आग की गर्मी उतर आई थी । हमेशा दूसरों के सामने कमान बने रहने वाले पिताजी की लंबी-लंबी घनी मूँछें गुस्से से फड़फड़ाने लगी थीं । चीखने लगे, ''कौन सा मास्टर है वो, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे है...?''

पिताजी की आवाज पूरे स्कूल में गूँज गई थी, जिसे सुनकर हेडमास्टर सहित सभी मास्टर बाहर आ गए थे । कलीराम हेडमास्टर ने गाली देकर मेरे पिताजी को धमकाया । लेकिन पिताजी पर धमकी का कोई असर नहीं हुआ । उस रोज जिस साहस और हौसले से पिताजी ने हेडमास्टर का सामना किया, मैं उसे कभी भूल नहीं पाया ।

## ( 2 )

........मेरी माँ मेहनत मजदूरी के साथ-साथ आठ दस तगाओं (हिंदू-मुसलमान) के घर तथा घेर (मर्दों का बैठकखाना तथा मवेशियों को बाँधने की जगह) में साफ-सफाई का काम करती थी । इस काम में मेरी बहन, बड़ी भाभी तथा जसवीर और जनेसर (दो भाई) माँ का हाथ बटाते थे । बड़ा भाई सुखवीर तगाओं के यहाँ वार्षिक नौकर की तरह काम करता था ।

प्रत्येक तगा के घर में दस से पंद्रह मवेशी (गाय, भैंस और बैल) सामान्य बात थी । उनका गोबर उठाकर गाँव से बाहर कुरड़ियों पर या उपले बनाने की जगह पर डालना पड़ता था । प्रत्येक घेर से हर रोज पाँच-छह टोकरे गोबर निकलता था । सर्दी के महीनों में यह काम बहुत ही कष्टदायक होता था । गाय, बैल और भैंस को सर्दी से बचाने के लिए बड़े-बड़े दालानों में बाँधा जाता था जिनमें गन्ने की सूखी पाती या फूस बिछा होता था । रातभर जानवरों का गोबर और मूत्र उसी दालान में फैलता रहता था । दस-पंद्रह दिनों बाद एक बार पाती बदली जाती थी या उसके ऊपर सूखी पाती बिछा दी जाती थी । इतने दिनों में दालानों में भरी दुर्गंध से गोबर ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकालना बहुत तकलीफदेह होता था । दुर्गंध से सिर भिन्ना जाता था ।

इन सब कामों के बदले में मिलता था दो जानवर पीछे फसल के समय पाँच सेर अनाज । यानी लगभग ढाई किलो अनाज । दस मवेशी वाले घर से साल भर में 25 सेर (12-13 किलो) अनाज । दोपहर

के समय हर घर से बची खुची रोटी जो खासतौर पर चूहड़ों को देने के लिए आटे में भूसी मिलाकर बनाई जाती थी । कभी-कभी जूठन भी भंगन की टोकरी में डाल दी जाती थी ।

शादी-ब्याह के मौकों पर जब मेहमान या बाराती खाना खा रहे होते थे तो चूहड़े दरवाजे के बाहर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते थे । बारात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरों में डाल दी जाती थीं, जिन्हें घर ले जा कर वे जूठन इकट्ठा कर लेते थे । पूरी के बचे खुचे टुकड़े, एक-आध मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाँछें खिल जाती थीं । जिस बारात की पत्तलों से जूठन कम उतरती थी, कहा जाता था कि भुक्खड़ लोग आ गए हैं सारा चट कर गए हैं । अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े-बूढ़े ऐसी बारातों का जिक्र बहुत रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बारात से इतनी जूठन आई कि महीनों खाते रहे थे ।

पत्तलों से जो पूरियों के टुकड़े एकत्र होते थे उन्हें धूप में सुखा लिया जाता था । चारपाई पर कोई कपड़ा डालकर उन्हें फैला दिया जाता था । अक्सर मुझे पहरे पर बैठाया जाता था क्योंकि सूखने वाली पूरियों पर कौए, मुर्गियाँ, कुत्ते अक्सर टूट पड़ते थे । जरा सी आँख बची कि पूरियाँ साफ, इसलिए डंडा लेकर चारपाई के पास बैठना पड़ता था ।

ये सूखी पूरियाँ बरसात के कठिन दिनों में बहुत काम आती थीं । उन्हें पानी में भिगोकर उबाल लिया जाता था । उबली हुई पूरियों पर बारीक मिर्च और नमक डालकर खाने में मजा आता था । कभी-कभी गुड़ डालकर लुगदी जैसा बनाया जाता था, जिसे सभी बड़े चाव से खाते थे ।

आज जब मैं इन सब बातों के बारे में सोचता हूँ तो मन के भीतर काँटे जैसे उगने लगते हैं । कैसा जीवन था ।

दिन-रात मर-खप कर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र जूठन, फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं । कोई शर्मिंदगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं ।

जब मैं छोटा था, माँ के साथ जाता था । माँ-पिताजी का हाथ बँटाने । तगाओ (त्यागियों) के खाने को देखकर अक्सर सोचा करता था कि हमें ऐसा खाना क्यों नहीं मिलता है ? आज जब सोचता हूँ तो जी मितलाने लगता है ।

अभी पिछले वर्ष मेरे निवास पर सुखदेव सिंह त्यागी का पोता सुरेंद्र सिंह आया था, किसी इंटरव्यू के सिलसिले में । गाँव से मेरा पता लेकर आया था । रात में रुका ।

मेरी पत्नी ने उसे यथासंभव अच्छा खाना खिलाया । खाना खाते-खाते वह बोला, "भाभी जी, आपके हाथ का खाना तो बहुत जायकेदार है । हमारे घर में तो कोई भी ऐसा खाना नहीं बना सकता है ।"

उसकी बात सुनकर मेरी पत्नी तो खुश हुई लेकिन मैं काफी देर तक विचलित रहा । बचपन की घटनाएँ स्मृति का दरवाजा खटखटाने लगीं ।

सुरेंद्र तब पैदा भी नहीं हुआ था । उसकी बड़ी बुआ यानी सुखदेव सिंह त्यागी की लड़की की शादी थी । उनके यहाँ मेरी माँ सफाई करती थी । शादी से दस-बारह दिन पहले से माँ-पिताजी ने सुखदेव सिंह त्यागी के घर-आँगन से लेकर बाहर तक के अनेक काम किए थे । बेटी की शादी का मतलब गाँवभर

की इज्जत का सवाल था । कहीं कोई कमी नहीं रह जाए । गाँवभर की चारपाइयों को ढो-ढोकर इकट्ठा किया था पिताजी ने ।

बारात खाना खा रही थी । माँ टोकरा लिए दरवाजे से बाहर बैठी थी । मैं और मेरी छोटी बहन माया माँ से सिमटे बैठे थे, इस उम्मीद में कि भीतर से जो मिठाई और पकवानों की महक आ रही है वह हमें भी खाने को मिलेंगे ।

जब सब लोग खा-खाकर चले गए तो मेरी माँ ने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते देखकर कहा, "चौधरी जी, ईब तो सब खाणा खा के चले गए ....... म्हारे जाकतों कू भी एक पत्तल पर धर कू कुछ दे दो ! वो बी तो इस दिन का इंतजार कर रे ते ।"

सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा, "टोकरा भरके जो जूठन ले जा रही है...ऊपर से जाकतों के लिए खाणा मांग री है । अपणी औकात में रह चूहड़ी । उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन ।"....

(3)

.......उन दिनों मैं नौवीं कक्षा में था । घर की आर्थिक हालत कमजोर थी । एक-एक पैसे के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को खटना पड़ता था । मेरे पास पाठ्यपुस्तकें हमेशा कम रहती थीं । दोस्तों से माँग कर काम चलाना पड़ता था । कपड़ों की भी वही स्थिति थी । जो मिल गया वही पहन लिया । जो वक्त पर मिला खा लिया, उन दिनों गाँव में मरने वाले पशुओं को उठाने का काम भी चूहड़ों के जिम्मे था । जिसके घर में जो काम करता था, उसके मरे हुए पशु भी उसी को उठाने पड़ते थे । इसके बदले कोई मेहनताना या मजदूरी नहीं मिलती थी । एक गाय, बैल या भैंस को उठाने के लिए चार से छह लोगों की जरूरत होती थी । जिसका मवेशी मर जाता था उसे जल्दी लगी रहती थी । इसीलिए वह बार-बार बस्ती में आकर चिल्लाता था । देर होने पर गालियाँ बकता था । उठाने वालों को इकट्ठा करने में अक्सर देर हो ही जाती थी ।

मरे हुए पशुओं को उठाना बड़ा कठिन काम होता है । उसके अगले-पिछले पैरों को रस्सी से बाँध कर बाँस की मोटी-मोटी बाहियों से उठाना पड़ता था । इतने श्रमसाध्य काम के बदले में मात्र गालियाँ...।

कितने क्रूर समाज में रहे हैं हम, जहाँ श्रम का कोई मोल ही नहीं बल्कि निर्धनता को बरकरार रखने का एक षड्यंत्र ही था यह सब ।

मरे हुए पशु की खाल मुजफ्फरनगर के चमड़ा बाजार में बिक जाती थी । उन दिनों एक पशु की खाल बीस से पच्चीस रुपए में बिकती थी । आने-जाने और मरे हुए पशु को उठाने की मजदूरी देकर मुश्किल से एक खाल के बदले दस-पंद्रह रुपए हाथ में आते थे । तंगी के दिनों में दस-पंद्रह रुपए भी बहुत बड़ी रकम दिखाई पड़ते थे ।

चमड़ा खरीदने वाला दूकानदार खाल में बहुत मीन-मेख निकालता था । कट-फट जाने पर खाल बेकार हो जाती थी । खाल को निकालते ही उस पर नमक लगाना पड़ता था, वर्ना दूसरे दिन ही खाल

खराब हो जाती थी, जिसे दूकानदार खरीदने से मना कर देता था ।

एक रोज ब्रह्मदेव तगा का बैल खेत से लौटते समय रास्ते में गिर पड़ा । उठ नहीं पाया, मर गया । कुछ ही देर बाद ब्रह्मदेव ने हमारे घर खबर कर दी थी । पिताजी और मुझसे बड़े भाई जनेसर उस रोज किसी रिश्तेदारी में गए थे । घर पर माँ, मेरी बहन माया, और सब से बड़ी भाभी देवी ही रहती थी। जसवीर उन दिनों देहरादून में था मामा के पास ।

माँ परेशान हो गई थी । बैल की खाल उतारने किसे भेजे ? बस्ती में एक-दो लोग थे लेकिन कोई भी उस समय जाने को तैयार नहीं था । माँ ने चाचा से बात की । वे तैयार हो गए थे । लेकिन उनके साथ किसी को जाना चाहिए । अकेले वे खाल नहीं उतार पाएँगे ।

मैं उस समय स्कूल में था । माँ ने थक-हार कर मुझे ही बुला लिया । माँ नहीं चाहती थी कि वह काम मुझे करना पड़े लेकिन खाल बेचकर जो दस-पंद्रह रुपए मिलने वाले थे, उन्हें छोड़ पाने की स्थिति में माँ नहीं थी । हार कर माँ ने मुझे चाचा के साथ भेज दिया । मेरे चाचा, सोल्हड़ महाकामचोर थे बस, सारा दिन ढोल ताशों में लगे रहते थे, मेहनत के काम से कतराते थे ।

माँ को फिकर लगी थी कि कहीं हमारे पहुँचने से पहले ही बैल पर गिद्ध या जंगली जानवर न टूट पड़ें ।

चाचा ने खाल उतारनी शुरू की । मैं उनकी मदद कर रहा था । चाचा का हाथ धीरे-धीरे चल रहा था । पिताजी जैसी कुशलता उनमें नहीं थी । थोड़ी देर बाद वे थक कर बीड़ी पीने बैठ गए ।

चाचा ने एक छुरी मेरे हाथ में पकड़ा दी । बोले, धीरे-धीरे खाल उतारो । अकेले से तो शाम तक नहीं उतरेगी ।

छुरी पकड़ते ही मेरे हाथ काँप रहे थे । अजीब से संकट में फँस गया था । चाचा ने छुरी चलाने का ढंग सिखाया । उस रोज मेरे भीतर बहुत कुछ था जो टूट रहा था । चाचा की हिदायत पर मैंने बैल की खाल उतारी थी । मैं जैसे स्वयं ही गहरे दलदल में फँस रहा था । जहाँ से मैं उबरना चाहता था । हालात मुझे उसी दलदल में घसीट रहे थे । चाचा के साथ तपती दुपहरी में जिस यातना को मैंने भोगा था आज भी उसके जख्म मेरे तन पर ताजा हैं ।

जैसे-जैसे खाल उतर रही थी मेरे भीतर का रक्त जम रहा था । खाल उतारने में हमें कई घंटे लग गए थे चाचा ने खाल को जमीन पर फैला दिया । उस पर लगे खून को सूखी जमीन ने सोख लिया था।

चाचा ने खाल को चादर में बाँध दिया था । गठरी उठाकर सर पर रख ली थी । लगभग दो मील की दूरी पर हमारा घर था । बोझ के कारण चाचा को तेज चलना पड़ रहा था । मैं हाथ में छुरी पकड़ उनके पीछे-पीछे लगभग दौड़ता जाता था । बसेड़ा जाने वाली पक्की सड़क से हम लोग बस-अड्डे के पास पहुँच गए थे । गठरी सिर से उतार कर चाचा ने जमीन पर रख दी थी । ''यहाँ से आगे तुम ले जाओ, मैं थक गया हूँ ।''

उस रोज मैंने चाचा से बहुत कहा लेकिन वे नहीं माने । ''चाचा बस-अड्डे की भीड़ पार करा

दो, मेरे स्कूल की छुट्टी का समय है । मेरे स्कूल के सभी साथी यह ले जाते हुए देखेंगे तो वे स्कूल में मुझे तंग करेंगे ।'' मैंने गिड़गिड़ा कर रुआँसी आवाज में चाचा से कहा था । किंतु वे नहीं पसीजे । गठरी उठाकर मेरे सिर पर रख दी । गठरी का वजन मेरे वजन से ज्यादा था । मजबूरन उठाकर चलना पड़ा। बस-अड्डे की परिचित भीड़ से मैं उस रोज जिस तरह से निकला, मेरा ही मन जानता है । एक भय लगातार मेरा पीछा कर रहा था कोई देख ने ले । कोई सहपाठी न मिल जाए । अगर कोई पूछ बैठेगा तो क्या बताऊँगा ?

घर तक पहुँचते-पहुँचते मेरी टाँगें जवाब दे गई थीं । लग रहा था कि अब गिरा । गाँव के किनारे-किनारे चलकर, लंबा चक्कर काटा था, बस्ती तक पहुँचने के लिए ।

मुझे उस हालत में देखकर माँ रो पड़ी थी । मैं सिर से लेकर पाँव तक गंदगी से भरा हुआ था। कपड़ों पर खून के धब्बे साफ दिखाई दे रहे थे । बड़ी भाभी ने उस रोज माँ से कहा था, ''इनसे ये न कराओ ...भूखे रह लेंगे ....इन्हें इस गंदगी में ना घसीटो !'' भाभी के ये शब्द आज भी मेरे लिए अँधेरे में रोशनी बन कर चमकते हैं । मैं उस गंदगी से बाहर निकल आया हूँ लेकिन लाखों लोग आज भी उस घिनौनी जिंदगी को जी रहे हैं ।

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. विद्यालय में लेखक के साथ कैसी घटनाएँ घटती हैं ?
2. पिताजी ने स्कूल में क्या देखा ? उन्होंने आगे क्या किया ? पूरा विवरण अपने शब्दों में लिखें ।
3. बचपन में लेखक के साथ जो कुछ हुआ, आप कल्पना करें कि आपके साथ भी हुआ हो– ऐसी स्थिति में आप अपने अनुभव और प्रतिक्रिया को अपनी भाषा में लिखिए ।
4. किन बातों को सोचकर लेखक के भीतर काँटे जैसे उगने लगते हैं ?
5. 'दिन रात मर खप कर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र जूठन, फिर भी किसी को शिकायत नहीं । कोई शर्मिंदगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं ।'' ऐसा क्यों ? सोचिए और उत्तर दीजिए ।
6. सुरेंद्र की बातों को सुनकर लेखक विचलित क्यों हो जाते हैं ?
7. घर पहुँचने पर लेखक को देख उनकी माँ क्यों रो पड़ती हैं ?
8. व्याख्या करें –

   'कितने क्रूर समाज में रहे हैं हम, जहाँ श्रम का कोई मोल ही नहीं बल्कि निर्धनता को बरकरार रखने का षड्यंत्र ही था यह सब ।'

9. लेखक की भाभी क्या कहती हैं ? उनके कथन का महत्त्व बताइए ।
10. इस आत्मकथांश को पढ़ते हुए आपके मन में कैसे भाव आए, सबसे अधिक उद्वेलित करने वाला अंश कौन है, अपनी टिप्पणी लिखिए ।

### पाठ के आस-पास

1. बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में हिंदी में दलित लेखन की शुरुआत हुई । यद्यपि इन विषयों पर पहले भी लिखा जाता रहा है । प्रेमचंद की कहानी 'कफन' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है, इसी के साथ यह भी बहस चल पड़ी कि दलित साहित्य के अंतर्गत उसे ही स्वीकृति मिल सकती है जो स्वानुभूत है, आप क्या सोचते हैं, मित्रों से चर्चा कीजिए ।
2. जिन स्थितियों में लेखक का बचपन गुजरा है, क्या आप अपने बचपन से उसकी तुलना करना चाहेंगे, अपने बचपन की किन यादों को आप लिखना चाहेंगे ।
3. वे कौन से कारण हैं जिनसे पाठ में वर्णित स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न न हों, इसके लिए क्या किया जाना चाहिए ?
4. हिंदी के प्रमुख दलित साहित्यकारों के बारे में जानकारी एकत्र करें ।
5. अपने गाँव-नगर या आस-पड़ोस के किसी दलित परिवार का पूरा ब्यौरा लिखिए और उसका स्कूल की गोष्ठी में पाठ कीजिए ।

### भाषा की बात

1. नीचे लिखे वाक्यों से सर्वनाम छाँटें –
   (क) लंबा-चौड़ा मैदान मेरे वजूद से कई गुना बड़ा था ।
   (ख) उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर-थर काँपने लगा था ।
   (ग) हेडमास्टर अपने कमरे में बैठे थे लेकिन निगाह मुझ पर टिकी हुई थी ।
   (घ) मेरी हिचकियाँ बँध गई थीं ।
2. निम्नलिखित शब्दों के लिए उपयुक्त विशेषण दें –
   खाई, कक्षा, मैदान, बारात, जिंदगी, टाँगें, चादर, गठरी, छुरी, खाल
3. नीचे लिखे शब्दों के पर्याय दें –
   चाव, अक्सर, कीमत, तकलीफदेह, इसलिए
4. रचना की दृष्टि से निम्नलिखित वाक्यों की प्रकृति बताएँ –
   (क) चाचा ने खाल उतारना शुरू किया ।
   (ख) उस रोज मैंने चाचा से बहुत कहा लेकिन वे नहीं माने ।
   (ग) जैसे-जैसे खाल उतर रही थी मेरे भीतर रक्त जम रहा था ।
   (घ) जाते ही हेडमास्टर ने फिर झाड़ू के काम पर लगा दिया ।
   (ङ) एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा, मास्साब वो बैठा है कोणे में ।

### शब्द निधि

कुरड़ियाँ : कूड़ा फेंकने की जगह, घूरा
मीन-मेख : दोष निकालना
दहाड़ : गर्जना

# मलयज

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 1935 । |
| निधन | : | 26 अप्रैल 1982 । |
| जन्म-स्थान | : | 'महुई', आजमगढ़, उत्तरप्रदेश । |
| मूलनाम | : | भरतजी श्रीवास्तव । |
| माता-पिता | : | प्रभावती एवं त्रिलोकी नाथ वर्मा । |
| शिक्षा | : | एम० ए० ( अंग्रेजी ), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उत्तरप्रदेश । |
| विशेष | : | छात्र जीवन में क्षयरोग से ग्रसित । ऑपरेशन में एक फेफड़ा काटकर निकालना पड़ा । शेष जीवन में दुर्बल स्वास्थ्य और बार-बार अस्वस्थता के कारण दवाओं के सहारे जीते रहे । |
| स्वभाव | : | अंतर्मुखी, प्रायः अवसादग्रस्त किंतु कठिन जिजीविषाधर्मी, गंभीर, एकांतप्रिय और मितभाषी । |
| विशिष्ट संपर्क | : | शमशेर बहादुर सिंह, विजयदेव नारायण साही, 'परिमल' ( संस्था, इलाहाबाद ) । |
| वृत्ति | : | कुछ दिनों तक के० पी० कॉलेज, इलाहाबाद में प्राध्यापन । 1964 में कृषि मंत्रालय, भारत सरकार की अंग्रेजी पत्रिकाओं के संपादकीय विभाग में नौकरी । |
| विशेष अभिरुचि | : | ड्राइंग और स्केचिंग । संगीत, कला प्रदर्शनी एवं सिनेमा में गहरी रुचि । |
| संपादन | : | 'लहर' कविता का विशेषांक ( 1960 ), 'शमशेर' पुस्तक का सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के साथ सह-संपादन । |
| कृतियाँ | : | कविता : जख्म पर धूल ( 1971 ), अपने होने को अप्रकाशित करता हुआ ( 1980 ) । आलोचना : कविता से साक्षात्कार ( 1979 ), संवाद और एकालाप ( 1984 ), रामचंद्र शुक्ल ( 1987 ) । सर्जनात्मक गद्य : हँसते हुए मेरा अकेलापन ( 1982 ), डायरी ;3 खंड, संपादक : डॉ० नामवर सिंह । |

सन् 1960 के आसपास 'नई कविता' आंदोलन के अंतिम दौर में मलयज का उदय एक कवि के रूप में हुआ था । आरंभ में भाषा, रचनाशैली और संवेदना के तल पर वे नई कविता के परवर्ती रूपों के प्रभाव में थे; किंतु आगे के सामाजिक-राजनीतिक विकास के साथ आए साहित्यिक यथार्थ संबंधी परिवर्तनों के बीच एक ओर वे अपनी कविता में रचना-दर-रचना अनेक महत्त्वपूर्ण बदलावों से गुजरते रहे तो दूसरी ओर उनकी आलोचना का विकास हुआ जो हिंदी में सातवें-आठवें दशक की उपलब्धि कही जा सकती है । कवि के रूप में सृजन प्रक्रिया के दौरान वे जो कुछ अनुभव करते थे उसे ही निरीक्षण-पर्यवेक्षण के द्वारा आलोचना में रूपांतरित करते थे । इस प्रकार मुक्तिबोध की तरह उनकी कविता और आलोचना एक ही समग्र सर्जन-प्रक्रिया की द्विविध अभिव्यक्तियों के रूप में एक दूसरी के साक्ष्य या प्रमाण की तरह विकसित हुई । मलयज के लिए कविता, और स्वभावतः आलोचना भी, व्यक्ति के भीतर और बाहर के परंपरागत स्रोतों की अवधारणाओं को एक और अखंड करती हुई रूपाकार ग्रहण करती है । एक कवि के रूप में जहाँ वे अपनी काव्यानुभूति के उन रासायनिक तत्त्वों और प्रक्रियाओं के प्रति सचेत और जागरूक रहते हैं जिनमें परिवेश और बाह्य यथार्थ के अंशावदान हैं तो एक आलोचक के रूप में वे तीक्ष्ण संवेदनशीलता और गहन मानवीय

लगाव के साथ रचना के आंतरिक संसार में उतरकर सर्जनात्मक स्रोतों, संश्लेषों और प्रक्रियाओं पर सहृदय सहानुभूति एवं सजग बौद्धिकता के साथ दृष्टि जमाए रखते हैं । सहज ही उनकी आलोचना में कविता का समतुल्य सुख प्राप्त होता है । अपने जीवन के अंतिम दस-एक वर्षों में कवि-आलोचक अशोक वाजपेयी और उनके संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'पूर्वग्रह' से जुड़कर उन्होंने हिंदी आलोचना में आई जड़ता, परजीविता और छद्म के विरुद्ध 'सर्जनात्मक आलोचना' के आह्वान और अभियान में प्रमुख भूमिका निभाई । आठवें दशक में हिंदी आलोचना को नई भाषा, नई तकनीक, नई विश्लेषण पद्धति और एक स्फूर्तिपूर्ण रचनात्मक ऊष्मा देने में मलयज की भूमिका रेखांकित करने योग्य है । रचना में भाषा की सघनता, अनुभूति का सर्जनात्मक तनाव और अंतर्निष्ठा मलयज के आगे हमेशा महत्त्वपूर्ण बनी रही । रचना को मूल्यवत्ता प्रदान करनेवाले इन तत्त्वों पर बल देने का एक सुखद परिणाम आगे यह हुआ कि व्यापक तौर पर रचना जगत में अनेक स्तरों पर हो रहे अवमूल्यन और क्षरण के प्रति रचनाकारों-आलोचकों और पाठकों में भी एक जागरूकता आई । अवमूल्यन और क्षरण के कारणों की मीमांसा बढ़ चली और रचना-आलोचना और पाठकीयता में आत्मसजग आलोचनात्मकता की प्रवृत्ति का विकास हुआ । साहित्य में परिवर्तन और विकास स्वायत्त नहीं होता; वह सामाजिक परिवर्तन और विकास से जुड़ा होता है । किंतु यह भी सच है कि साहित्य, कला आदि के परिवर्तन और विकास भी समाज को परोक्षतः प्रभावित करते हैं । बीसवीं शती के अंतिम दशकों से शुरू हुआ परिवर्तन और विकास का सिलसिला अभी जारी है । इसे समझने के लिए कला, साहित्य और समाज को एक साथ समग्रता में पक्षधर पूर्वग्रहों से मुक्त होकर देखना होगा । मलयज जैसे लेखक और उनके साहित्य की यही सिखावन है ।

मलयज की कविता और आलोचना से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं उनकी डायरियाँ । एक प्रतिभाशाली, संवेदनशील कवि-आलोचक के आत्मनिर्माण का वे प्रामाणिक अंतरंग साक्ष्य हैं । उन्हें पढ़कर यह जानना और अनुभव कर पाना संभव होता है कि साहित्यकर्म निरा शब्द व्यापार नहीं है । साहित्य लिखने और साहित्यकार बनने के लिए लेखन से परे जीवन में भी कितना सजग, सावधान और स्वाधीन होना जरूरी है । एक व्यक्ति को कितना खुला, ईमानदार और विचारशील होना चाहिए । व्यक्ति के क्या दायित्व हैं और अपने दायित्वों के प्रति कैसा लगाव, कैसी सन्नद्धता होनी चाहिए । प्रस्तुत हैं मलयज की डायरी के कुछ छोटे से अंश । इनसे लगभग डेढ़ हजार पृष्ठों में फैली हुई मलयज की डायरियों की एक छोटी सी झलक मिलती है ।

◆ ◆ ◆

**"मलयज अत्यंत आत्मसजग किस्म के बौद्धिक व्यक्ति थे । डायरी लिखना मलयज के लिए जीवन जीने के कर्म जैसा ही था । डायरी की शुरुआत 15 जनवरी 1951 से शुरू होती है, जब उनकी आयु केवल 16 वर्ष थी । डायरी लिखने का यह सिलसिला 9 अप्रैल 1982 तक चलता रहा, जब उन्होंने अंतिम साँस ली । अर्थात 47 साल तक के जीवन में 32 साल तक मलयज ने डायरी लिखी है ।........डायरी के ये पृष्ठ कवि-आलोचक मलयज के समय की उथल-पुथल और उनके निजी जीवन की तकलीफों-बेचैनियों के साथ एक गहरा रिश्ता बनाते हैं ।.....इस डायरी में एक औसत भारतीय लेखक के परिवेश को आप उसकी समस्त जटिलताओं में देख सकते हैं ।"**

**– विजय कुमार**

# हँसते हुए मेरा अकेलापन

**''डायरी लेखन मेरे लिए एक दहकता हुआ जंगल हो, एक तटस्थ घोंसला नहीं, जिसमें अपने पर घुसेड़ मैं जब चाहूँ, चुपके पड़ा रहूँ। डायरी मेरे कर्म की साक्षी हो, मेरे संघर्ष की प्रवक्ता हो यही मेरी सुरक्षा है – डायरी के कोरे पृष्ठों पर अंकित शब्दों में नहीं, उनपर जलती आग के बीच।''**

**रानीखेत :**

**14 जुलाई 56**

सुबह से ही पेड़ काटे जा रहे हैं। मिलिट्री की छावनी के लिए ईंधन–पूरे 'सीजन' और आगे आनेवाले जाड़ों के लिए भी ! पेड़ गोकि पूरे हरे तो नहीं लेकिन चारों ओर के सरसब्ज पेड़ों ने मानो उदारतावश अपने में से थोड़ी-थोड़ी हरिताभा प्रदान कर उन्हें भी अपने गिरोह में मिला लिया है–अपने उदात्त और विशाल और प्राणवान गिरोह में ! उस गिरोह की आत्मा एक है, क्योंकि उस आत्मा का नाद एक है ..... वे जब बोलते हैं, तब एक भाषा में, गाते हैं, तब एक भाषा में; रोते हैं, तब भी एक भाषा में...

कुहरा है, खूब घना और खूब सफेद–दृष्टि के विस्तार को बीच ही से कच्चे फीते की तरह काट देता है।.....किंतु ये ध्वनियाँ ?......इन ध्वनियों की मेरे दरवाजे पर दस्तकें ? यह अस्फुट याचना जो दीवार पर टँगे उस 'कुमाऊँ ग्लोरी' के खूबसूरत कैलेंडर में है ......यह कोने में टिकाकर रखी हुई ऐशवुड की छड़ी रह-रह काँपती क्यों है ? नोटबुक के पन्ने यूँ बेतरह फड़फड़ाते क्यों हैं ? जिनमें बेशुमार पत्तियों और फूलों की रेखानुकृतियाँ स्मृति के उदास गुलदानों में बतौर गुलदस्ते आज भी जिंदा हैं।

मौसम एकदम से ठंढा हो गया है। बूँदा-बाँदी और हवा। .....एक कलाकार के लिए यह निहायत जरूरी है कि उसमें 'आग' हो....और वह खुद 'ठंढा' हो।

अब देखिए न ! पोस्ट ऑफिस के सामने–बिलकुल सामने, बाईं ओर – ग्यारह अदद देवदार हैं, पूरे ग्यारह गिनकर !......जैसे एकादश रुद्र ! खामख्वाह ही सोचता हूँ कि वे दस क्यों न हुए या बारह क्यों नहीं ? जब भी उधर से गुजरा हूँ, यही ख्याल उमड़ते हैं।–यानी मैं किस कदर 'बोर' हूँ....

किसी चित्रकारी की किताब में रंग सिद्धांत के विषय में पढ़ते-पढ़ते मालूम हुआ कि शोख और भड़कीले रंग संवेदनाओं को बड़ी तेजी से उभारते हैं, उन्हें बड़ी तेजी से चरम बिंदु की ओर ले जाते हैं

और उतनी ही तेजी से उन्हें ढाल की ओर खींचते हैं......

मैं संवत हूँ...यानी 'ठंढा' । अभी जब बाहर निकलूँगा तब खूब घना और खूब सफेद कुहरा मुझसे लिपट जाएगा, सब ओर छा जाएगा । मेरे अतीत और मेरे वर्तमान का समीकरण वह भविष्य जो फीते की तरह बीच ही से कटा हुआ है, इस कुहरे में समा जाएगा–अज्ञात भाषा में अज्ञात गान और अज्ञात रुदन लिए हुए कागज के एक नन्हें से टुकड़े की तरह–इस कुहरे की ताबीज में ।

तब तक ईंधन यानी 'आग' पूरे 'सीजन' और आगेवाले जाड़ों के लिए भी चाहिए ।

(2)

**18 जून 57**

एक खेत की मेड़ पर बैठी कौवों की कतार देखकर :

...उम्र की फसल पककर तैयार–सपनों का सुहाना रंग अब जर्द पड़ चला है । एक मधुर आशापूर्ण फल जिसने अनुभव की तिताई के छिलके उतार फेंके हैं : विगत के वे मूल्य, जिनपर बचपना कभी सान धरता था, कितने बेमानी भोंथरे हो उठे हैं...जैसे कि वह जड़ पौधे का आत्मदान स्वीकार कर लेने के बाद, विकास की एक सीमा के उधर....

हवाओं में ये कैसी महक है ! धरती में ये कैसी चिलक है कि फसलें कटने भी नहीं पाईं : जड़ों को उखाड़कर किसी चाणक्य ने दही छिड़का ही नहीं और ये बाँट-बखरेदार !

प्रश्न हैं ये, बालों के गुच्छे नहीं जिन्हें जब चाहा जुनून में सिर-से नोच लिया !

(3)

**4 जुलाई 62: कौसानी**

आज भी कोई चिट्ठी नहीं । तबियत किस क़दर बेजार हो उठी है । दोपहर तक आशा रहती है कि कोई चिट्ठी आएगी पर भारी-भारी सी दोपहर बीत जाती है और कुछ नहीं होता । इतनी भी ताब नहीं कि डाकघर में ही जाकर पूछ आऊँ ।....

अजब सी बेचैनी मन में होती है । उस वक्त सारा परिवेश एक मिटे हुए अक्षर की तरह लगता है–किसी शब्द के बीच एक अक्षर की तरह जिसके मिट जाने से पूरे शब्द का अस्तित्व संदिग्ध हो उठता है ।

ऐसी मनःस्थिति में कुछ काम वैसे भी नहीं होने का, यूँ भी पहले ही कौन तीर मार रहे थे....चिंतन और रचना की सब प्रक्रिया कुंठित है । एक आशंका में हर दम झूलता रहनेवाला मन जिसमें हर आहट रहस्यमय लगती है, हर खटका चौंका जाता है, अठखेलियाँ करती हुई हवा कनफुसियाँ सी करती लगती है, जैसे मेरे विरुद्ध कोई साजिश ठाने बैठे है ।.....

(4)

**5 जुलाई 62 : कौसानी**

कल यहाँ के सूचना केंद्र में एक अधेड़ से व्यक्ति ने आकर्षित किया । प्रायः वे और मैं एक ही

समय शाम को वहाँ अखबार देखने पहुँचते थे । कल पुस्तकों के छपने-वपने की बात किसी को तेज स्वर में बता रहे थे तो बरबस ध्यान खिंचा । परिचय पूछा...बलभद्र ठाकुर ! नाम से अपरिचित नहीं था, उनकी एक किताब शमशेरजी के यहाँ देखी थी । मुझे विद्यार्थी जानकर अपने अन्य श्रोताओं को भूल वे धीरे-धीरे आत्मश्लाघा के मूड में उतर आए । उनकी पुस्तकों का जनता में कैसा स्वागत हुआ, किस बड़े ओहदेदार व्यक्ति ने पढ़कर क्या कहा, फलाने अंडर-सेक्रेटरी उसे माँगकर पढ़ने ले गए तो ऐसी पसंद आई कि लौटाया तक नहीं....आदि-आदि के प्रसंग उत्साह से सुनाते रहे । सुनकर रस आता रहा । उनके चेहरे की छटा अच्छी लगी-चश्मे के भीतर उनकी आँखें लेखक के सहज गर्व से भर उठी थीं ।...ठिगना गठा हुआ शरीर, रंग साँवले से कुछ अधिक । लुंगी और जैकेट पहने ।....

सात बज रहे थे, खाना भी पकाना था, क्योंकि भूख लग आई थी । अतः विदा ली...

शाम को घटा उमड़ी और थोड़ी बारिश ।...

घंटे-डेढ़ घंटे नेगी परिवार के साथ बिताया । घर की बूढ़ी माँ जीवट की कामकाजी महिला हैं । उनका एक स्केच बिठाकर बनाया और उन्हें दिया । उनके मकान का एक रंगीन स्केच बनाया था-जगतसिंह की भाभी ने माँगा तो देना पड़ा ।....मैं रेडियो से गाने सुनता रहा उधर चाय-पानी का प्रबंध होने लगा । अपनी स्थिति के अनुकूल (और वह तो मैं देख ही रहा था) मेहमाननवाजी का यह भाव मन को अच्छा लगा...मैं उनका सिर्फ किराएदार न था, एक मेहमान भी था । दुख इस बात का हुआ कि इस परिवार के साथ पहले क्यों नहीं घुला-मिला । अब तो शायद परसों तक चल ही देना होगा ।

यहाँ के स्कूल के दो अध्यापकों से परिचय । टिपिकल पहाड़ी जन । सीधे-सादे तरल-बिलकुल पानी जैसे, जिनमें अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दिख जाएँ । बुराइयाँ-बल्कि कमजोरियाँ कहना अधिक उचित होगा-ऐसी कि प्यार करने की तबियत हो ।....कुचली हुई आकांक्षाओं के व्यक्ति जो किसी तरह 'दिन काट रहे हैं' । अधिक बलबूते वाले आदमी नहीं रहे थे, अतः किसी बड़े सपने के भंग होने का दर्द नहीं, बस एक रिसन है- एक स्थिर जीवन की चढ़ाई, जिस पर रोज-रोज चढ़ने-उतरने का अभ्यास हो गया है इसलिए वह अखरता नहीं, पर यह नहीं अखरना किसी अंतःस्फूर्ति के कारण न होकर एक अपना ली गई विवशता है, एक समझौता जो बस एक बेबूझ सी सर्द आह छोड़ जाता है, उस पर ठहरकर चिंतन नहीं करता-चिंतन करने की कोई गुंजाइश ही नहीं । सब कुछ यूँ ही चल रहा है-बहुत कट गई, बाकी भी कट जाएगी ।

(5)

**8 जुलाई 62 : कौसानी**

....कल शाम से रोज इसी समय एक बहुत प्यारी सी गंध हवा में उड़कर मेरे बारजे तक आती है-इतनी कोमल और मिठास सी लिए हुए कि आँखें खुद-ब-खुद क्षणों के लिए बंद हो जाती हैं ।

(6)

**दिल्ली : 30 अगस्त 76**

सेब बेचती लड़की । उसकी कलाइयों में इतना जोर न था कि वह चाकू से सेब की एक फाँक काटकर ग्राहक को चखाती । दो-चार बार उसने कोशिश की, फिर एक खिसियाई हुई हँसी हँसकर चाकू

मेरे हाथ में थमा दिया–'खुद ही चख लो, मीठे हैं सेब ।' सेब तो वैसे ही मीठे थे–उनका रंग और खुशबू देखकर उनकी किस्म मैं पहले ही जान चुका था । पर वह सात-आठ साल की लड़की जिसने शायद नई-नई दुकान सँभाली थी या जिसे हाल में ही दुकान सँभलवा दी गई थी, अपने ग्राहक को अपने सौदे के बारे में शक की जरा गुंजाइश न देने को आतुर थी ।

मैंने उसके पतले लगभग झँवराए जिस्म, उसके चेहरे और खुली कलाइयों को देखा और उन सेबों की तरफ, जिसके ढेर को जल्दी से जल्दी कम करने की ललक उसकी आँखों में थी ।

(7)

**10 मई 78**

आदमी यथार्थ को जीता ही नहीं, यथार्थ को रचता भी है ।

–ये मेरे बच्चे मेरे रचे हुए यथार्थ हैं । इनसे जुड़ी हुई फिक्रें और सरोकार मेरे अपने रचे हुए हैं, और ये सब मुझसे रचे जाकर मुझसे स्वतंत्र हो गए हैं । इस अपने रचे हुए यथार्थ से मैं बँध गया हूँ और उसका दबाव अपनी नाड़ी में प्रतिपल महसूस करता हूँ ।

रचा हुआ यथार्थ भोगे हुए यथार्थ से अलग है । भोगा हुआ यथार्थ एक दिया हुआ यथार्थ है । हर आदमी अपना-अपना यथार्थ रचता है और उस रचे हुए यथार्थ का एक हिस्सा दूसरों को दे देता है । हरएक का भोगा हुआ यथार्थ दूसरों के दिए हुए हिस्से-हिस्से यथार्थ का एक सामूहिक नाम है । इसीलिए यथार्थ को रचना एक नैतिक कर्म है, क्योंकि वह एक सामाजिक सत्य की भी सृष्टि करता है ।

यथार्थ के इस लेन-देन का नाम ही संसार है । इस संसार से संपृक्ति एक रचनात्मक कर्म है । इस कर्म के बिना मानवीयता अधूरी है ।

हर आदमी उस संसार को रचता है जिसमें वह जीता है और भोगता है । आदमी के होने की शर्त यह रचा जाता, भोगा जाता संसार ही है ।

रचने और भोगने का रिश्ता एक द्वंद्वात्मक रिश्ता है । एक के होने से ही दूसरे का होना है । दोनों की जड़ें एक दूसरे में हैं और वहीं से वे अपना पोषण रस खींचते हैं । दोनों एक दूसरे को बनाते हैं । दोनों एक दूसरे को मिटाते हैं । दोनों एक दूसरे को बनाते-मिटाते हैं ।

(8)

**11 जून 78**

मेरे भीतर इन दिनों कितने शब्द भरे पड़े हैं, या अर्थ ? जो लिखता हूँ अगर उसमें शब्द अधिक हैं तो अर्थ कम, या अगर अर्थ ज्यादा हैं तो उसके हिसाब से शब्द कम पड़ रहे हैं ।

डायरी में शब्दों और अर्थों के बीच तटस्थता कम रहती है, इसी से उसका लिखा जाना मुमकिन नहीं, याकि मुश्किल है ? लिखना मात्र एक तटस्थता की माँग रखता है । डायरी लिखना भी ।

कभी-कभी मैंने कविता के मूड में डायरी लिखी है, तब शब्द और अर्थ के बीच दूरी का अहसास किसी माप के अनुसार निर्धारित नहीं होता, शब्द अर्थ में और अर्थ शब्द में ढलते चले जाते हैं, एक दूसरे

को पकड़ते, एक दूसरे को छोड़ते हुए। जिस पल में वे एक दूसरे का हाथ छोड़ देते हैं वह आकाश होता है और उसमें रचना बिजली के फूल की तरह खिल उठती है। जिस पल शब्द और अर्थ एक दूसरे का हाथ पकड़ते हैं वह धरती का क्षण होता है और उसमें रचना अपनी जड़ पा लेती है, अपने प्रस्फुटन का आदिस्रोत।

(9)

**20 जून 78**

सुरक्षा डायरी में भी नहीं। वहाँ सिर्फ पलायन है। सुरक्षा अगर कहीं हो सकती है तो बाहर सूरज की रोशनी में, अँधेरे में नहीं। अँधेरे में सिर्फ छिपा जा सकता है, एक पल-पल की धुकधुकी के साथ। सुरक्षा चुनौती को झेलने में ही है, लड़ने में, पिसने में और खटने में। बचाने में नहीं, अपने को सेने में नहीं।

(10)

**9 दिसंबर 78**

जो कुछ लिखता हूँ वह सबका सब रचना नहीं होती। ये पृष्ठ तो और भी नहीं। जितना कुछ मैं भोगता हूँ उस सबमें रचना के बीज नहीं होते। उस भोगे हुए अनुभव का कोई वंश आगे–रचना में–नहीं चलता। जो आगे चले और मुझे भी साथ आगे ले चले–चाहे एक संभावना में–वही रचना है। शेष सिर्फ दस्तावेज।

लेकिन यह दस्तावेज भी जरूरी है। दस्तावेज रचना का कच्चा माल है। सिर्फ इतना ही नहीं, दस्तावेज : मेरे जीवन का भोग-अनुभव : रचना रूपी करेंसी को वास्तविक मूल्य प्रदान करने वाला मूलधन है। वह मिट्टी है जिसके बिना न बीज की सत्ता है न बीज अपने को चरितार्थ करता है। रचना में छिपा हुआ भविष्य मिट्टी के अतीत में सुगबुगाता है।...

जंगले से आती हुई धूप–मेरे बदन पर आड़ी तिरछी लकीरें बनाती हुई धूप–और मेरे बालों से खेलती हुई तीसरे पहर की हवा, शीतल और स्वच्छ, इनकी कोई राजनीति नहीं है।

(11)

**25 जुलाई 80**

इधर–पता नहीं कितने सालों से–मेरे जीवन का केंद्रीय अनुभव लगता है कि डर है। मैं भीतर से बेतरह डरा हुआ व्यक्ति हूँ।

इस डर के कई रूप हैं।

बुरी-बुरी बीमारियों का डर–घर का जब भी कोई आदमी बीमार पड़ता है मुझे डर लगता है कि कहीं इसे कोई भयंकर बीमारी न लग गई हो और तब मैं क्या करूँगा–उसे किस अस्पताल में ले जाऊँगा, इलाज की कैसे व्यवस्था करूँगा।

इस डर की वजह से कितने-कितने घंटे मैंने तनाव में गुजारे हैं–एक पत्ते की तरह काँपते हुए, होंठों

में प्रार्थनाएँ बुदबुदाते हुए कि किसी तरह संकट का यह क्षण कटे ।

बाहर गए हुए आदमी को जब घर लौटने में देर होती है, जब उसके लौटने की संभावित घड़ी भी बीतने लगती है, मन डर से घिर जाता है । मन तमाम तरह की अप्रिय कल्पनाएँ करने लगता है । फिर अनायास ही प्रार्थनाएँ, समय बीतते जाने का अहसास नसों में धड़-धड़ की तरह गूँजने लगता है । प्रतीक्षा का डर । फिर जब लगता है कि प्रतीक्षा की घड़ी बीत गई, समय गुजर गया, तब बाहर वाला आदमी लौट आता है, सही-सलामत; और नसों का तनाव दिल की कई धड़कनों के साथ छूट जाता है ।

पार्क में खेलने गए बच्चे–शाम का अँधेरा घिर आने के बाद–एकाएक जब वहाँ नहीं दिखने लगते, तब 'कहाँ गए' की अकुलाहट कोई उत्तर देर तक न पाकर डर में बदलने लगती है ।

मन इतना कमजोर हो गया है कि उसमें डर बड़ी आसानी से घुस आता है ।

(12)

**3 मार्च 81**

अपने को काटता-पीटता हुआ यह आदमी दुनिया के आगे एकजुट और साबुत बने रहने की जिजीविषा में हरदम तना हुआ–किसी लक्ष्य पार छूटने को कसा हुआ रहता है ।

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. डायरी क्या है ?
2. डायरी का लिखा जाना क्यों मुश्किल है ?
3. किस तारीख की डायरी आपको सबसे प्रभावी लगी और क्यों ?
4. डायरी के इन अंशों में मलयज की गहरी संवेदना घुली हुई है । इसे प्रमाणित करें ।
5. व्याख्या करें–
   (क) आदमी यथार्थ को जीता ही नहीं, यथार्थ को रचता भी है ।
   (ख) इस संसार से संपृक्ति एक रचनात्मक कर्म है । इस कर्म के बिना मानवीयता अधूरी है ।
6. 'धरती का क्षण' से क्या आशय है ?
7. रचे हुए यथार्थ और भोगे हुए यथार्थ में क्या संबंध है ?
8. लेखक के अनुसार सुरक्षा कहाँ है ? वह डायरी को किस रूप में देखना चाहता है ?
9. डायरी के इन अंशों से लेखक के जिस 'मूड' का अनुभव आपको होता है, उसका परिचय अपने शब्दों में दीजिए ।
10. अर्थ स्पष्ट करें –
    एक कलाकार के लिए यह निहायत जरूरी है कि उसमें 'आग' हो – और वह खुद 'ठंढा' हो ।
11. चित्रकारी की किताब में लेखक ने कौन सा रंग सिद्धांत पढ़ा था ?
12. 11 जून 78 की डायरी से शब्द और अर्थ के संबंध पर क्या प्रकाश पड़ता है ? अपने शब्दों में लिखें ।

13. रचना और दस्तावेज में क्या फर्क है ? लेखक दस्तावेज को रचना के लिए कैसे जरूरी बताता है ?
14. लेखक अपने किस डर की बात करता है ? इस डर की खासियत क्या है ? अपने शब्दों में लिखिए ।

**पाठ के आस-पास**

1. डायरी क्यों लिखनी चाहिए ? डायरी लिखना आपके व्यक्तित्व में क्या परिवर्तन ला सकता है ? सोचिए । अपने मित्रों से चर्चा कीजिए और तब बताइए ।
2. क्या आप डायरी लिखते हैं, यदि नहीं तो क्यों; यदि हाँ तो आप अपनी डायरी को मलयज की डायरी से किस तरह भिन्न कहेंगे ?
3. बापू नियमित डायरी लिखते थे, क्या आपने उनकी डायरी पढ़ी है ? इसे उपलब्ध कीजिए और पढ़िए ।
4. हिंदी के कई साहित्यकारों जैसे – अज्ञेय, दिनकर, शमशेर बहादुर सिंह आदि की डायरियाँ प्रकाशित हैं । पुस्तकालय से इन्हें उपलब्ध कर पढ़ें ।
5. डायरी लेखन में लेखक से क्या अपेक्षा रहती है ?

**भाषा की बात**

1. अर्थ की दृष्टि से निम्नलिखित वाक्यों की प्रकृति बताएँ –
   (क) मौसम एकदम से ठंढा हो गया है ।
   (ख) हवाओं में ये कैसी महक है ।
   (ग) आज भी कोई चिट्ठी नहीं ।
   (घ) तबियत किस कदर बेजार हो उठी है ।
   (ङ) सुरक्षा डायरी में भी नहीं ।
   (च) मेरे भीतर इन दिनों कितने शब्द भरे पड़े हैं, या अर्थ ?
2. नीचे लिखे वाक्यों से सरल, मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों को छाँटें –
   (क) हर आदमी उस संसार को रचता है जिसमें वह जीता है और भोगता है ।
   (ख) आदमी यथार्थ को जीता ही नहीं, यथार्थ को रचता भी है ।
   (ग) सुबह से ही पेड़ काटे जा रहे हैं ।
   (घ) कल शाम से रोज इसी समय एक बहुत प्यारी सी गंध हवा में उड़कर मेरे बारजे तक आती है ।
3. उत्पत्ति की दृष्टि से निम्नलिखित शब्दों की प्रकृति बताएँ –
   अस्फुट, मौसम, निहायत, गुलदान, संयत, रुदन, आग, मेंड़, जर्द, महक, स्फूर्ति, गुंजाइश, चढ़ाई, सत्य, यथार्थ, सुरक्षा, रिश्ता, मुश्किल, घोसला

**शब्द निधि**

| | | | |
|---|---|---|---|
| सरसब्ज | : हरा-भरा | बेजार | : परेशान, बदहाल |
| हरिताभा | : हरी चमक | ताब | : उत्साह |
| अस्फुट | : दबी-दबी, पूरी तरह प्रकट नहीं | बारजे | : गैलरी |
| ऐशवुड | : आग से तुरंत न जलने वाली लकड़ी | संपृक्ति | : जुड़ाव (संपर्क से बना शब्द) |
| जर्द | : पीला | आदिस्रोत | : मूलस्रोत |
| चिलक | : सूखकर फटने की आवाज या स्थिति | प्रस्फुटन | : खिलना |

# उदय प्रकाश

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 1 जनवरी 1952 । |
| जन्म-स्थान | : | सीतापुर, अनूपपुर, मध्य प्रदेश । |
| माता-पिता | : | गंगा देवी एवं प्रेम कुमार सिंह । |
| शिक्षा | : | बी० एससी०; एम० ए० ( हिंदी ), सागर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश । |
| वृत्ति | : | जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के भारतीय भाषा विभाग में कुछ समय तक अध्यापन । संस्कृति विभाग, मध्य प्रदेश सरकार में विशेष कर्त्तव्यस्थ अधिकारी । 'दिनमान' के संपादन विभाग में कार्य । 'संडेमेल' ( नई दिल्ली ) में सहायक संपादक । प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया के टेलीविजन विभाग में विचार और पटकथा प्रमुख । टाइम्स रिसर्च फाउंडेशन में पत्रकारिता का अध्यापन । अंग्रेजी पत्रिका 'एमिनेंस' का संपादन, आदि । |
| संप्रति | : | स्वतंत्र लेखन । फिल्म निर्माण, अखबारों तथा फिल्मों के लिए लेखन । |
| कृतियाँ | : | दरियाई घोड़ा, तिरिछ, और अंत में प्रार्थना, पॉल गोमरा का स्कूटर, पीली छतरी वाली लड़की, दत्तात्रेय के दुख, अरेबा-परेबा, मोहनदास, मेंगोसिल – कहानी । सुनो कारीगर, अबूतर-कबूतर, रात में हारमोनियम – कविता संग्रह । ईश्वर की आँख ( निबंध-आलोचना ) । कला-अनुभव, इंदिरा गाँधी की आखिरी लड़ाई, लाल घास पर नीले घोड़े, रोम्याँ रोलाँ का भारत – अनुवाद । |
| फिल्म–टी०वी० | : | अनेक धारावाहिकों और टी० वी० फिल्मों के स्क्रिप्ट लिखे । यह कार्य जारी है । |

उदय प्रकाश के लेखन का यह तीसरा दशक चल रहा है । पिछले दो दशकों में समसामयिक हिंदी लेखन में उन्होंने एक अग्रणी एवं महत्त्वपूर्ण लेखक की छवि और पहचान अर्जित की है । 1980 के आसपास वे एक कवि के रूप में पाठकों के समक्ष उदित हुए थे । अपने विषय-चयन, सीधी संबोधित भाषा, ताजगी भरे मुहावरे और अनौपचारिक संवेदना के कारण उन्होंने कविताओं द्वारा सुधीजनों को आकृष्ट किया था; नए पाठकों में अपने प्रति और नई रचनाशीलता के प्रति, गरमाहट भरी उत्सुकता पैदा की थी । कविता के क्षेत्र में उनका कार्य चलता रहा और इसी बीच उन्होंने कहानी विधा पर अपना ध्यान केंद्रित किया ।

तत्सामयिक कहानी की हालत न केवल अच्छी नहीं थी, बल्कि बुरी और चिंताजनक थी । तरह-तरह के आंदोलनात्मक नारों-आह्वानों और गैर रचनात्मक छद्म वैचारिक अभियानों के बीच वह बदहाली में पड़ी हुई थी । तथाकथित कहानियाँ खूब छपती थीं, किंतु उनका पाठकों से संवाद नहीं दिखाई पड़ता था । प्राय: वे कृत्रिम और स्थूल थीं । उनकी हालत कुपोषण के शिकार उन बच्चों जैसी थी जिनके हाथ-पैर पतले और हड़ियल पड़ गए हों तथा पेट असाधारण रूप से बड़ा हो गया हो । वे तथ्य और कथ्य दोनों ही धरातलों पर रक्ताल्पता से ग्रसित दिखाई पड़ती थीं । साठोत्तरी पीढ़ी के कहानीकारों की पकड़ ढीली पड़ चुकी थी, समांतर आदि आंदोलनों से जुड़े पिछली पीढ़ी के कथाकार अपने को

लगातार दुहराए जा रहे थे । उनके अनुभव फीके पड़ चुके थे जैसे रोशनाई में काफी पानी पड़ चुका हो । निश्चय ही दो-एक अपवाद थे, किंतु उनपर समूची आशा टिकाई न जा सकती थी । समसामयिक अनुभव और यथार्थ जो उत्तरोत्तर जटिल पड़ते गए थे, उनकी गहरी प्रतीति से उपजे शिल्प और भाषा की दरकार थी, जो लेखक और पाठक दोनों को झिंझोड़ सके; जड़ता और उदासीनता को तोड़ सके । ऐसे समय में कविदृष्टि संपन्न कुछ कथाकार, जिनमें कुछ पुरानी पीढ़ी के भी थे, सामने आए । उन्होंने कहानी पर ध्यान केंद्रित किया । उसे गंभीरता से लिया और ऐसी नई रचनाएँ दीं जिनसे परिदृश्य धीरे-धीरे बदल चला । ऐसे कथाकारों में उदय प्रकाश अग्रणी और महत्त्वपूर्ण हैं। वे तब से लगातार समसामयिक रचनाशीलता में अपनी कद्दावर भागीदारी निभाते आ रहे हैं । कविता, कहानी, निबंध, लेख-टिप्पणियाँ, आलोचना और टेलीविजन फिल्म आदि के लिए स्क्रिप्ट लेखन–तमाम क्षेत्रों में उन्होंने नित्य नवीन प्रयोग किए । ऐसे प्रयोग, जिनसे कहानी का फॉर्म बदल गया और वह सचमुच दो-एक प्रधान साहित्यरूपों में शुमार होकर विशेष सार्थकता अर्जित कर सकी ।

पिछले बीस वर्षों में लिखी गई श्रेष्ठ हिंदी कहानियों की अगर सूची बनाई जाए तो उसमें आधी से ज्यादा कहानियाँ उदय की होंगी । कथ्य-शिल्प- भाषा आदि सभी दृष्टियों से । उदय प्रकाश की कहानियों का यह असर हुआ कि बड़े पैमाने पर अपनी तथाकथित रचनाओं से ऊब पैदा करनेवाले, फार्मूलाबद्ध लेखन करनेवाले और गैररचनात्मक कारणों से अपनी चर्चा करवानेवाले लेखकों की भीड़ छँट चली । एक स्वस्थ रचनात्मक माहौल बना और हिंदी कहानी का विकास दृष्टिगोचर हुआ; उसकी दशा-दिशा उजागर हो चली । एक सही, प्रतिभाशाली और अंतर्निष्ठा से परिपूर्ण क्रियाशील लेखक के उठ खड़े होने का अर्थ उदय प्रकाश के रचनात्मक विकास पर नजर डालते ही स्पष्ट हो जाता है । आजीविका और वृत्ति की दृष्टि से लगातार अनिश्चय, स्वास्थ्य के लिहाज से लगातार बदहाली झेलते हुए इस संघर्षशील कवि-कथाकार ने अद्भुत जीवट से भरी सर्जनशीलता दिखाई है ।

उदय प्रकाश के यहाँ अनुभव और उसके अनुरूप अभिव्यक्ति के लिए कथाशिल्प का कभी टोटा नहीं पड़ा । वे कभी खुद को दुहराते नहीं । सामयिक यथार्थ को गहरे इतिहासबोध के साथ उसकी पूरी तल्खी, क्रूरता और भयानकता के साथ तदनुरूप शिल्प और भाषा में बयान करते हैं । उनके अनुभव में खासा वैविध्य है । गाँव और शहर, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग आदि के परंपरागत विभाजन उनके यहाँ अप्रासंगिक हो चुके हैं । उनका अनुभववृत्त, उनकी कथाभूमि, उनकी रचनादृष्टि लगातार बड़ी, बेधक और गहन होती जाती है । वे कारीगर और कलाकार एक साथ हैं, ऐसा कारीगर और कलाकार, जिसके आगे काम का टोटा नहीं, अंबार है; जिसपर उसे अभी तुरंत भिड़ जाना है । कभी पीछे मुड़कर न देखता हुआ एक अशांत, असंतुष्ट और विक्षुब्ध कलाकार जिसके आगे तथ्य और कथ्य का विपुल विस्तार लिए ठाठें मारता संसार चुनौतियाँ देता अपनी ओर खींच रहा है ।

यहाँ प्रस्तुत उनकी प्रसिद्ध कहानी 'तिरिछ' एक उत्तर आधुनिक त्रासदी है । आज के युग में समय बहुत दूर तक वैश्विक और सार्वभौम हो चुका है । विकास की दृष्टि से दुनिया के देशों का चाहे अब भी विभाजन किया जा सकता हो, पर कहीं ऐसे विभाजन अप्रासंगिक भी हो चुके हैं । ऐसे में भारत जैसे देश में यथार्थ और समय के बीच बहुसंख्यक समाज के लिए एक ऐसी अलंघ्य खाई उभरी है जिसके चलते जीवन में बेगानगी और अजनबियत आई है । कहानी नई पीढ़ी के प्रतिनिधि बेटे के दृष्टिकोण से लिखी गई है और बाबूजी के बारे में है, जो सुदूर गाँव में रहते हैं । वे शहर जाते हैं और फिर शहर में उनके साथ जो कुछ घटित होता है, कहानी उसी के बारे में है । जो घटित हुआ वह अत्यंत अप्रत्याशित, दारुण और भयावह है । आमूल बदले हुए समय का यह नया, भीषण यथार्थ, जिसके शिकार बाबूजी बनते हैं, बेटे के सपने में 'तिरिछ' बनकर प्रकट होता है । तिरिछ एक विषैला और भयानक जंतु है जो कहानी में प्रतीक बन जाता है । इस कहानी को 'जादुई यथार्थ' की कहानी कहा जाता है । यह यथार्थ बाबूजी की गँवई वास्तविकता को पीछे छोड़कर और आगे-बहुत आगे बढ़ चुके शहर के तथाकथित आधुनिक समय के द्वंद्व से उपजता है । दुनिया के उन देशों में जहाँ यथार्थ और समय के बीच ऐसी खाई उभरी वहाँ जादुई यथार्थ प्रकट हुआ ।

# तिरिछ

इस घटना का संबंध पिताजी से है । मेरे सपने से है और शहर से भी है । शहर के प्रति जो एक जन्मजात भय होता है, उससे भी है ।

पिताजी तब पचपन साल के हुए थे । दुबला शरीर । बाल बिलकुल मक्के के भुए जैसे सफेद । सिर पर जैसे रुई रखी हो । वे सोचते ज्यादा थे–बोलते बहुत कम । जब बोलते तो हमें राहत मिलती, जैसे देर से रुकी हुई साँस निकल रही हो । साथ-साथ हमें डर भी लगता । हम बच्चों के लिए वे एक बहुत बड़ा रहस्य थे । हमें पता था कि संसार की सारी भाषाएँ वे बोल सकते हैं । दुनिया उनको जानती है और हमारी तरह ही उनसे डरती हुई उनका सम्मान करती है ।

हमें उनकी संतान होने का गर्व था ।

कभी-कभी, वैसे ऐसा सालों में एकाध बार ही होता, वे शाम को हमें अपने साथ टहलाने कहीं बाहर ले जाते । चलने से पहले वे मुँह में तंबाकू भर लेते । तंबाकू के कारण वे कुछ बोल नहीं पाते थे। वे चुप रहते । यह चुप्पी हमें बहुत गंभीर, गौरवशाली, आश्चर्यजनक और भारी-भरकम लगती । छोटी बहन कभी उनसे रास्ते में कुछ पूछना चाहती तो फौरन मैं उसका जवाब देने की कोशिश करता, जिससे पिताजी को बोलना न पड़े ।

वैसे यह काम काफी मुश्किल और जोखिम भरा होता । क्योंकि मैं जानता था कि अगर मेरा जवाब गलत हुआ तो पिताजी को बोलना पड़ जाएगा । बोलने में उन्हें परेशानी होती थी । एक तो तंबाकू की पीक निकालनी पड़ती थी, फिर जिस दुनिया में वे रहते थे, वहाँ से निकलकर यहाँ तक आने में उन्हें एक कठिन दूरी तय करनी पड़ती थी । वैसे बहन के सवालों में कोई खास बात होती नहीं थी । जैसे वह यही पूछ लेती कि सामने छिउले की सूखी टहनी पर बैठी उस चिड़िया को क्या कहते हैं ? मैं चूँकि सारी चिड़ियों को जानता था इसलिए बता सकता था कि वह नीलकंठ है और दशहरे के दिन उसे जरूर देखना चाहिए। मेरी कोशिश रहती थी कि पिताजी को आराम रहे और वे सोचते रहें ।

मेरी और माँ की, दोनों क़ी पूरी कोशिश रहती कि पिताजी अपनी दुनिया में सुख-चैन से रहें । वह दुनिया हमारे लिए बहुत रहस्यपूर्ण थी, लेकिन हमारे घर की और हमारे जीवन की बहुत सी समस्याओं का अंत पिताजी वहीं रहते हुए करते थे । जैसे जब मेरी फीस की बात आई, उस समय हमारे पास का आखिरी गिलास भी गुम गया था और सब लोग लोटे में पानी पीते थे । पिताजी दो दिन तक बिलकुल चुप

रहे । माँ को भी शक हुआ कि पिताजी फीस की बात बिलकुल भूल गए हैं या फिर इसका हल उनके वश की बात नहीं है । लेकिन तीसरे दिन, सुबह-सुबह, पिताजी ने मुझे एक पत्र लिफाफे में रखकर दिया और शहर के डॉक्टर पंत के पास भेजा । मुझे बहुत आश्चर्य हुआ जब डॉक्टर ने मुझे शरबत पिलाई, घर के भीतर ले जाकर अपने बेटे से परिचय कराया और सौ-सौ के तीन नोट मुझे दिए ।

हम पिताजी पर गर्व करते थे, प्यार करते थे, उनसे डरते थे और उनके होने का अहसास ऐसा था जैसे हम किसी किले में रह रहे हों । ऐसा किला, जिसके चारों ओर गहरी नहरें खुदी हुई हों, बुर्जें बहुत ऊँची हों, दीवारें सख्त लाल चट्टानों की बनी हुई हों और हर बाहरी हमले के सामने हमारा किला अभेद्य हो ।

पिताजी एक खूब मजबूत किला थे । उनके परकोटे पर हम सब कुछ भूलकर खेलते थे, दौड़ते थे । और, रात में खूब गहरी नींद मुझे आती थी ।

लेकिन उस दिन, शाम को, जब पिताजी बाहर से टहलकर आए तो उनके टखने में पट्टी बँधी थी । थोड़ी देर में गाँव के कई लोग वहाँ आ गए । पता चला कि पिताजी को जंगल में तिरिछ (विषखापर, जहरीला लिजार्ड) ने काट लिया है ।

हम सब जानते थे कि तिरिछ के काटने पर आदमी बच ही नहीं सकता । रात में, लालटेन की धुँधली-मटैली रोशनी में गाँव के बहुत से लोग आँगन में जमा हो गए थे । पिताजी उनके बीच थे, जमीन पर बैठे हुए । फिर पास के गाँव का चुटुआ नाई भी आया । वह अरंड के पत्ते और कंडे की राख से जहर उतारता था ।

तिरिछ एक बार मैंने देखा था ।

तालाब के किनारे जो बड़ी-बड़ी चट्टानों के ढेर थे, और जो दोपहर में खूब गर्म हो जाते थे, उनमें से किसी चट्टान की दरार से निकलकर वह पानी पीने तालाब की ओर जा रहा था ।

मेरे साथ थानू था । उसने बतलाया कि वह तिरिछ है, काले नाग से सौ गुना ज्यादा उसमें जहर होता है । उसी ने बताया कि साँप तो तब काटता है, जब उसके ऊपर पैर पड़ जाए या कोई जब जबरदस्ती उसे तंग करे । लेकिन तिरिछ तो नजर मिलते ही दौड़ता है । पीछे पड़ जाता है । उससे बचने के लिए कभी सीधे नहीं भागना चाहिए । टेढ़ा-मेढ़ा, चक्कर काटते हुए, गोल-मोल दौड़ना चाहिए ।

दरअसल जब आदमी भागता है तो जमीन पर वह सिर्फ अपने पैरों के निशान ही नहीं छोड़ता, बल्कि हर निशान के साथ, वहाँ की धूल में, अपनी गंध भी छोड़ जाता है । तिरिछ इसी गंध के सहारे दौड़ता है । थानू ने बतलाया कि तिरिछ को चकमा देने के लिए आदमी को यह करना चाहिए कि पहले तो वह बिलकुल पास-पास कदम रखकर, जल्दी-जल्दी कुछ दूर दौड़े फिर चार-पाँच बार खूब लंबी-लंबी छलाँग दे । तिरिछ सूँघता हुआ दौड़ता आएगा, जहाँ पास-पास पैर के निशान होंगे, वहाँ उसकी रफ्तार खूब तेज हो जाएगी-और जहाँ से आदमी ने छलाँग मारी होगी, वहाँ आकर वह उलझन में पड़ जाएगा । वह इधर-उधर तब तक भटकता रहेगा जब तक उसे अगले पैर का निशान और उसमें बसी गंध नहीं मिल जाती ।

हमें तिरिछ के बारे में दो बातें और पता थीं । एक तो यह कि जैसे ही वह आदमी को काटता है, वैसे ही वह वहाँ से भागकर किसी जगह पेशाब करता है और उस पेशाब में लोट जाता है । अगर तिरिछ ने ऐसा कर लिया तो आदमी बच नहीं सकता । अगर उसे बचना है तो तिरिछ के पेशाब में लोटने के पहले ही, खुद किसी नदी, कुएँ या तालाब में डुबकी लगा लेनी चाहिए या फिर तिरिछ के ऐसा करने के पहले ही उसे मार देना चाहिए ।

दूसरी बात यह कि तिरिछ काटने के लिए तभी दौड़ता है, जब उससे नजर टकरा जाए । अगर तिरिछ को देखो तो उससे कभी आँख मत मिलाओ । आँख मिलते ही वह आदमी की गंध पहचान लेता है और फिर पीछे लग जाता है । फिर तो आदमी चाहे पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा ले, तिरिछ पीछे-पीछे आता है ।

मैं भी तमाम बच्चों की तरह उस समय तिरिछ से बहुत डरता था । मेरे दुःस्वप्न के सबसे खतरनाक पात्र दो ही थे–एक हाथी और दूसरा तिरिछ । हाथी तो फिर भी दौड़ता-दौड़ता थक जाता था और मैं पेड़ पर चढ़कर बच जाता था, या फिर उड़ने लगता था, लेकिन तिरिछ ठसके सामने तो मैं किसी इंद्रजाल में बँध जाता था । मैं सपने में कहीं जा रहा होता तो अचानक ही किसी जगह वह मिल जाता, उसकी जगह तय नहीं होती थी । कोई जरूरी नहीं था कि वह चट्टानों की दरार में, पुरानी इमारतों के पिछवाड़े या किसी झाड़ी के पास दिखे–वह मुझे बाज़ार में, सिनेमा हाल में, किसी दुकान या मेरे कमरे में भी दिख सकता था ।

मैं सपने में कोशिश करता था कि उससे नजर न मिलने पाए, लेकिन वह इतनी परिचित आँखों से मुझे देखता कि मैं अपने-आपको रोक नहीं पाता था और बस आँख मिलते ही उसकी नजर बदल जाती थी–वह दौड़ता था और मैं भागता था ।

मैं गोल-गोल चक्कर लगाता था, जल्दी-जल्दी पास-पास डग भरकर अचानक खूब लंबी-लंबी छलाँगें लगाने लगता, उड़ने की कोशिश करता, किसी ऊँची जगह पर चढ़ जाता, लेकिन मेरी हजार कोशिशों के बावजूद वह चकमा नहीं खाता था । वह मुझे बहुत घाघ, समझदार, चतुर और खतरनाक लगता । मुझे लगता कि वह मुझे खूब अच्छी तरह से जानता है । उसकी आँखों में मेरे लिए परिचय की जो चमक थी, उससे मुझे लगता कि वह मेरा ऐसा शत्रु है जिसे मेरे दिमाग में आनेवाले हर विचार के बारे में पता है ।

मेरा सबसे खौफनाक, यातनादायक, भयाक्रांत और बेचैनी से भरा यही सपना था । भागते-भागते मेरा पूरा शरीर थक जाता, फेफड़े फूल जाते, मैं पसीने में लथ-पथ होकर बेदम होने लगता और एक बहुत ही डरावनी, सुन्न कर डालनेवाली मृत्यु मेरे बिलकुल करीब आने लगती । मैं जोरों से चीखता, रोने लगता । पिताजी को, थानू को या माँ को पुकारता और फिर मैं जान जाता कि यह सपना है । लेकिन यह पता चल जाने के बावजूद मैं अच्छी तरह से जानता कि तब भी मैं अपनी इस मृत्यु से नहीं बच सकता । मृत्यु नहीं–तिरिछ द्वारा अपनी हत्या से–और ऐसे में मैं सपने में ही कोशिश करता कि किसी तरह जाग जाऊँ । मैं पूरी ताकत लगाता, सपने के भीतर आँखें खोलकर फाड़ता, रोशनी को देखने की कोशिश करता और जोर से कुछ बोलता । कई बार बिलकुल ऐन मौके पर मैं जागने में सफल भी हो जाता ।

माँ बतलाती कि मुझे सपने में बोलने और चीखने की आदत है । कई बार उन्होंने मुझे नींद में

रोते हुए भी देखा था। ऐसे में उन्हें मुझे जगा डालना चाहिए, लेकिन वे मेरे माथे को सहला कर मुझे रजाई से ढँक देती थीं और मैं उसी खौफनाक दुनिया में अकेला छोड़ दिया जाता था। अपनी मृत्यु–बल्कि अपनी हत्या से बचने की कोशिश में भागता, दौड़ता, चीखता।

वैसे, धीरे-धीरे मैंने अनुभवों से यह जान लिया था कि आवाज ही ऐसे मौके पर मेरा सबसे बड़ा अस्त्र है, जिससे मैं तिरिछ से बच सकता था। लेकिन दुर्भाग्य से, हर बार, इस अस्त्र की याद मुझे बिलकुल अंतिम समय पर आती थी। तब, जब वह मुझे बिलकुल पा लेनेवाला होता। अपनी हत्या की साँसें मुझे छूने लगतीं, मौत के नशे से भरे एक निर्जीव लेकिन डरावने अँधेरे से मैं घिर जाता, लगता मेरे नीचे कोई ठोस आधार नहीं है–मैं हवा में हूँ और वह पल आ जाता, जब मेरे जीवन का अंत होनेवाला होता। तभी, बिलकुल इसी एक बहुत ही छोटे और नाजुक पल में मुझे अपने इस अस्त्र की याद आती और मैं जोर-जोर से बोलने लगता और इस आवाज के सहारे मैं सपने से बाहर निकल आता। मैं जाग जाता।

कई बार माँ मुझसे पूछतीं भी कि मुझे क्या हो गया था। तब मेरे पास इतनी भाषा नहीं थी कि मैं उन्हें सब कुछ, एक-एक चीज उसी तरह बता पाता। अपनी इस असमर्थता के बारे में मुझे खूब पता था और इसी वजह से मैं एक अजीब से तनाव, बेचैनी और असहायता से भर जाता। अंत में हारकर इतना ही कह पाता कि "बहुत डरावना सपना था।"

जाने क्यों मुझे शक था कि पिताजी को उसी तिरिछ ने काटा था, जिसे मैं पहचानता था और जो मेरे सपने में आता था।

लेकिन एक अच्छी बात यह हुई कि जैसे ही वह तिरिछ पिताजी को काटकर भागा, पिताजी ने उसका पीछा करके उसे मार डाला था। तय था कि अगर वे फौरन उसे नहीं मार पाते तो वह पेशाब करके उसमें जरूर लोट जाता। फिर पिताजी किसी हाल में न बचते। यही वजह थी कि पिताजी को लेकर मुझे उतनी चिंता नहीं रह गई थी। बल्कि एक तरह की राहत और मुक्ति की खुशी मेरे भीतर धीरे-धीरे पैदा हो-रही थी। कारण, एक तो यही कि पिताजी ने तिरिछ को तुरंत मार डाला था और दूसरा यह कि मेरा सबसे खतरनाक, पुराना परिचित शत्रु आखिरकार मर चुका था। उसका वध हो गया था और अब मैं अपने सपने के भीतर, कहीं भी, बिना किसी डर के, सीटी बजाता घूम सकता था।

उस रात देर तक हमारे आँगन में भीड़ रही आई। पिताजी की झाड़फूँक चलती रही। काटे के जख्म को चीर कर खून भी बाहर निकाला गया और कुएँ में डालनेवाली लाल दवा (पोटेशियम परमैंगनेट) जख्म में भरा गया। मैं निश्चिंत था।

अगली सुबह पिताजी को शहर जाना था। अदालत में पेशी थी। उनके नाम सम्मन आया था। हमारे गाँव से लगभग दो किलोमीटर दूर निकलनेवाली सड़क से शहर के लिए बसें गुजरती थीं। उनकी संख्या दिन भर में मुश्किल से दो या तीन थीं। गनीमत थी कि पिताजी जैसे ही सड़क तक पहुँचे, शहर जानेवाला पास के गाँव का एक ट्रैक्टर उन्हें मिल गया। ट्रैक्टर में बैठे हुए लोग पहचान के थे। ट्रैक्टर दो-ढाई घंटे में शहर पहुँच जानेवाला था। यानी अदालत खुलने से काफी पहले।

रास्ते में तिरिछ वाली बात चली। पिताजी ने अपना टखना उन लोगों को दिखलाया। ट्रैक्टर में

पंडित राम औतार भी थे । उन्होंने बतलाया कि तिरिछ के जहर की एक खासियत यह भी है कि कभी-कभी यह चौबीस घंटे बाद, ठीक उसी वक्त जिस वक्त पिछले दिन तिरिछ काटता है, अपना असर दिखाता है। इसलिए अभी पिताजी को निश्चिंत नहीं होना चाहिए । ट्रैक्टर के लोगों ने पिताजी का ध्यान एक और बड़ी गलती की ओर खींचा । उनका कहना था कि यह तो पिताजी ने ठीक किया कि तिरिछ को फौरन मार डाला, लेकिन इसके बाद भी तिरिछ को यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए था । उसे कम से कम जला जरूर देना चाहिए था ।

उन लोगों का कहना था कि बहुत से कीड़े-मकोड़े और जीव-जंतु रात में चंद्रमा की रोशनी में दुबारा जी उठते हैं । चाँदनी में जो ओस और शीत होती है उसमें अमृत होता है और कई बार ऐसा देखा गया है कि जिस साँप को मरा हुआ समझकर रात में यों ही फेंक दिया जाता है, उसका शरीर चाँद की शीत में भीग कर दुबारा जी उठता है और वह भाग जाता है । फिर वह हमेशा बदला लेने की ताक में रहता है ।

ट्रैक्टर के लोगों को शक था कि कहीं ऐसा न हो कि रात में जी उठने के बाद तिरिछ पेशाब करके उसमें लोट जाए । ऐसा हुआ तो चौबीस घंटे बीतते-बीतते, ठीक उसी घड़ी के आने पर, तिरिछ का जानलेवा जहर पिताजी पर चढ़ना शुरू हो जाएगा । उन लोगों ने सलाह भी दी कि पिताजी को वहीं से वापस लौट जाना चाहिए और अगर संयोग से, उस तिरिछ की लाश उसी जगह पड़ी हुई हो, तो उसे अच्छी तरह जलाकर राख कर देना चाहिए । लेकिन पिताजी ने उन्हें बताया कि पेशी कितनी जरूरी थी । यह तीसरा सम्मन था और अगर इस बार भी वे अदालत में हाजिर न हुए तो गैर-जमानती वारंट निकलने का डर था। पेशी भी हमारे उसी मकान को लेकर थी, जिसमें हमारा परिवार रह रहा था । वकील को पिछले दो बार की पेशी में फीस भी नहीं दी जा सकी थी और कहीं अगर उसने लापरवाही दिखला दी और जज सनक गया तो वह हमारी कुड़की-डिक्री भी करवा सकता था ।

विचित्र स्थिति थी कि अगर पिताजी उस तिरिछ की लाश को जलाने के लिए ट्रैक्टर से उतरकर, वहीं से, गाँव लौट आते तो गैर-जमानती वारंट के तहत वे गिरफ्तार कर लिए जाते और हमारा घर हमसे छिन जाता । अदालत हमारे खिलाफ हो जाती ।

लेकिन पंडित राम औतार एक वैद्य भी थे । ज्योतिष पंचांग के अलावा उन्हें जड़ी-बूटियों की भी बड़ी गहरी जानकारी थी । उन्होंने सुझाया कि एक तरीका ऐसा है, जिससे पिताजी पेशी में हाजिर भी हो सकते हैं और तिरिछ के जहर से चौबीस घंटे के बाद बच भी सकते हैं । उन्होंने बताया कि चरक का निचोड़ इस सूत्र में है कि विष ही विष की औषधि होता है । अगर धतूरे के बीज कहीं मिल जाएँ तो वह तिरिछ के जहर की काट तैयार कर सकते हैं ।

अगले गाँव सामतपुर में ट्रैक्टर रोक दिया गया और एक तेली के खेत में धतूरे के पौधे आखिरकार खोज निकाले गए । धतूरे के बीजों को पीसकर उसे ताँबे के पुराने सिक्के के साथ उबालकर काढ़ा तैयार किया गया । काढ़ा बहुत कड़वा था इसलिए उसे चाय में मिलाया गया और पिताजी को वह चाय पिला दी गई । इसके बाद सभी निश्चिंत हो गए । एक बहुत बड़े खतरे से पिताजी को निकालने की कोशिश हो रही थी ।

वैसे मुझे तिरिछ के बारे में तीसरी बात भी पता थी, जो पिताजी के जाने के कई घंटे बाद अचानक याद आ गई थी । यह बात साँप की उस बात से मिलती-जुलती थी, जिसके फलस्वरूप आगे चलकर कैमरे का आविष्कार हुआ था ।

माना यह जाता था कि अगर कोई आदमी साँप को मार रहा हो तो अपने मरने से पहले वह साँप, अंतिम बार, अपने हत्यारे के चेहरे को पूरी तरह से, बहुत गौर से देखता है । आदमी उसकी हत्या कर रहा होता है और साँप टकटकी बाँधकर उस आदमी के चेहरे की एक-एक बारीकी को अपनी आँख के भीतरी पर्दे में दर्ज कर रहा होता है । साँप की मृत्यु के बाद साँप की आँख के भीतरी पर्दे पर उस आदमी का चित्र स्पष्ट दर्ज हो जाता है ।

बाद में, आदमी के जाने के बाद, उस साँप का दूसरा जोड़ा आकर उस मरे हुए साँप की आँख के भीतर झाँकता है और इस तरह वह हत्यारा पहचान लिया जाता है । सारे साँप उसे पहचानने लगते हैं । फिर वह कहीं भी चला जाए, उससे बदला लेने की फिराक में वे रहते हैं । हर साँप उसका शत्रु होता है ।

मुझे शक था कि मरे हुए तिरिछ की आँख के भीतरी पर्दे पर पिताजी का चेहरा दर्ज होगा । कोई दूसरा तिरिछ आकर उस लाश की आँख में झाँकेगा और पिताजी वहाँ पहचान लिए जाएँगे । मेरे भीतर इस बात को लेकर बेचैनी पैदा हुई कि पिताजी ने यह सतर्कता क्यों नहीं बरती ? उन्हें तिरिछ को मारने के साथ ही किसी पत्थर से उसकी दोनों आँखों को कुचलकर फोड़ देना चाहिए था । लेकिन अब क्या हो सकता था ? पिताजी शहर जा चुके थे और मेरे सामने उलझन और चुनौती थी कि गाँव के पास फैले इतने बड़े जंगल में किस जगह तिरिछ को मारकर उन्होंने छोड़ा था, वह जगह मैं खोज निकालूँ ।

मैं थानू के साथ बोतल में मिट्टी का तेल, दियासलाई और डंडा लेकर जंगल में तिरिछ की खोज में भटकता रहा । मैं उसे अच्छी तरह पहचानता था । बहुत अच्छी तरह । थानू निराश था ।

फिर, मुझे अचानक ही लगने लगा कि इस जंगल को मैं अच्छी तरह जानता हूँ । एक-एक पेड़ मेरा परिचित निकलने लगा । इसी जगह से कई बार सपने में मैं तिरिछ से बचने के लिए भागा था । मैंने गौर से हर तरफ देखा-बिलकुल यही जगह थी । मैंने थानू को बताया कि एक सँकरा सा नाला इस जगह से कितनी दूर दक्षिण की तरफ बहता है । नाले के ऊपर जहाँ बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं, वहाँ कीकर का एक बहुत पुराना पेड़ है, जिस पर बड़े शहद के छत्ते हैं । उन्हें देखकर लगता है कि वे कई शताब्दियों पुराने हैं । मैं उस भूरे रंग की चट्टान को जानता था, जो बरसात भर नाले के पानी में आधी डूबी रहती थी और बारिश के बीतने के बाद जब बाहर निकलती थी तो उसकी खोहों में कीचड़ भर जाती थी और अजब-अजब वनस्पतियाँ वहाँ से उग आती थीं । चट्टान के ऊपर हरी काई की एक परत सी जम जाती थी । इसी चट्टान की सबसे ऊपरवाली दरार में तिरिछ रहता था । थानू इस बात को मेरी कल्पना मान रहा था ।

लेकिन बहुत जल्द हमें वह नाला मिल गया । कीकर का वह बूढ़ा पेड़ भी, जिस पर शहद के छत्ते थे, और वह चट्टान भी । तिरिछ की लाश चट्टान से जरा हटकर, जमीन पर, घास के ऊपर चित पड़ी हुई थी । बिलकुल यह वही तिरिछ था । मेरे भीतर हिंसा और उत्तेजना और खुशी की एक सनसनी

दौड़ रही थी ।

थानू ने और मैंने सूखे पत्ते और लकड़ियाँ इकट्ठी कीं, खूब सारा मिट्टी का तेल उसमें डाला और उसमें आग लगा दी । तिरिछ उसमें जल रहा था । उसके जलने की चिरायंध गंध हवा में फैल रही थी। मेरा मन जोर से चिल्लाने को हुआ लेकिन मैं डरा कि कहीं मैं जाग न जाऊँ और यह सब कुछ सपना न साबित हो जाए । मैंने थानू की ओर देखा । वह रो रहा था । वह मेरा बहुत अच्छा दोस्त था ।

मेरे सपने में इसी जगह से निकलकर उस तिरिछ ने कई बार मेरा पीछा करना शुरू किया था । आश्चर्य था कि इतने लंबे अर्से से उसके अड्डे को इतनी अच्छी तरह से जानने के बावजूद कभी दिन में आकर मैंने उसे मारने की कोई कोशिश नहीं की थी ।

मैं आज बेतहाशा खुश था ।

पंडित राम औतार ने बतलाया था कि ट्रैक्टर ने पौने दस बजे के लगभग शहर का चुंगीनाका पार किया था । वहाँ उन्हें नाके का टोल टैक्स चुकाने के लिए कुछ देर रुकना भी पड़ा था । वहाँ पर पिताजी ट्रैक्टर से उतरकर पेशाब करने गए थे । लौटने पर उन्होंने बताया कि उनका सिर कुछ घूम सा रहा है, तब तक पिताजी को धतूरे का काढ़ा पिए हुए तकरीबन डेढ़ घंटा हो चुका था । ट्रैक्टर ने पिताजी को शहर में दस बजकर पाँच-सात मिनट के आसपास छोड़ दिया था । ट्रैक्टर में ही बैठे पलड़ा गाँव के मास्टर नंदलाल का कहना था कि जब शहर में, मिनर्वा टाकीज के पासवाले चौराहे पर पिताजी को ट्रैक्टर से उतारा गया, तब उन्होंने शिकायत की थी कि उनका गला कुछ सूख सा रहा है । वे थोड़ा परेशान भी थे क्योंकि अदालत जाने का रास्ता उन्हें मालूम नहीं था और शहर के लोगों से पूछ-पूछकर कहीं जाने में उन्हें बहुत तकलीफ होती थी ।

पिताजी के साथ एक दिक्कत यह भी थी कि गाँव या जंगल की पगडंडियाँ तो उन्हें याद रहती थीं, शहर की सड़कों को वे भूल जाते थे । शहर वे बहुत कम जाते थे । जाना ही पड़े तो अंतिम समय तक वे टालते रहते थे, तब तक, जब तक जाना बिलकुल ही जरूरी न हो जाए । कई बार तो ऐसा भी हुआ कि पिताजी सारा सामान लेकर शहर के लिए रवाना हुए और बस-अड्डे से लौट आए । बहाना यह कि बस छूट गई । जब कि हम सब जानते थे कि ऐसा नहीं हुआ होगा । पिताजी ने बस को देखा होगा, फिर वे कहीं बैठ गए होंगे–पेशाब करने या पान खाने । फिर उन्होंने देखा होगा कि बस छूट रही है । उन्होंने जरा सा और इंतजार किया होगा । जब बस ने रफ्तार पकड़ ली होगी–तब वे कुछ दूर तक दौड़े होंगे । फिर उनके कदम धीमे पड़ गए होंगे और अफसोस और गुस्सा प्रकट करते वे लौट आए होंगे । ऐसा करते हुए स्वयं भी लगा होगा कि बस सचमुच छूट गई है । ऐसे में, जब कि हम मान चुके होते कि वे शहर जा चुके हैं, वे लौटकर हमें चकित कर देते ।

ट्रैक्टर से मिनर्वा टाकीज के पास वाले चौराहे पर, सिंध वाच कंपनी के ठीक सामने लगभग दस बजकर सात मिनट पर उतरने के बाद से लेकर शाम के छह बजे तक पिताजी के साथ शहर में जो कुछ भी हुआ, उसका सिर्फ एक धुँधला सा अनुमान ही लगाया जा सकता है । यह जानकारी भी कुछ लोगों से बातचीत और पूछताछ के बाद मिली है । किसी की भी मृत्यु के बाद, अगर वह मृत्यु आकस्मिक और

अस्वाभाविक ढंग से हुई हो, ऐसी जानकारियाँ मिल ही जाती हैं । उस दिन, बुधवार 17 मई 1972 को सुबह दस-दस से लेकर शाम छह बजे तक लगभग पौने आठ घंटे में पिताजी कहाँ-कहाँ गए, कहाँ-कहाँ उनके साथ क्या-क्या हुआ, इसका बहुत सही और विस्तृत ब्यौरा तो मिलना मुश्किल है । जो सूचनाएँ या जानकारियाँ बाद में मिलीं, उनके जरिए उन घटनाओं का सिर्फ अनुमान ही लगाया जा सकता है ।

जैसा कि पलड़ा गाँव के मास्टर नंदलाल का कहना था कि जब पिताजी ट्रैक्टर से उतरे, तभी उन्होंने गला सूखने की शिकायत की थी । इसके पहले चुंगीनाका के पास, जब पेशाब करके पिताजी लौटे थे तो उन्होंने सिर घूमने की बात की थी । यानी पिताजी पर धतूरे के बीजों का असर होना शुरू हो गया था । वैसे भी शहर पहुँचने तक पिताजी को काढ़ा पिए हुए लगभग दो घंटे हो चुके थे । मेरा अनुमान है कि उस समय पिताजी को प्यास बहुत लगी होगी । गला भिगोने के लिए वे किसी होटल या ढाबे की तरफ गए भी होंगे, लेकिन जैसा कि मुझे उनके स्वभाव के बारे में पता है, वे वहाँ कुछ देर तक खड़े रहे होंगे, और फिर एक गिलास पानी माँगने का फैसला न कर सके होंगे । एक बार उन्होंने बताया भी था कि कुछ साल पहले गर्मियों के दिनों में जब उन्होंने किसी होटल में पानी माँगा था, तो वहाँ काम करने वाले नौकर ने उन्हें गाली दी थी । पिताजी बहुत संवेदनशील थे, इसलिए उन्होंने अपनी प्यास को दबाया होगा और वे वहाँ से चल पड़े होंगे ।

सवा दस बजे से लेकर ग्यारह बजे के बीच, पैंतालीस मिनट तक पिताजी कहाँ-कहाँ गए, इसकी कोई जानकारी कहीं से नहीं मिलती । इस बीच ऐसी कोई खास घटना भी नहीं हुई, जिससे कोई कुछ कह सके । फिर शहर में सड़क पर आते-जाते लोगों में से किसी ने उन पर ध्यान दिया हो, उन्हें देखा हो, इसका पता लगाना भी मुश्किल है । वैसे मेरा अपना अंदाजा है कि इस बीच पिताजी ने कुछ लोगों से अदालत जाने का रास्ता पूछा होगा और उनके दिमाग में यह बात भी रही होगी कि वहाँ पहुँचकर वे अपने वकील एस० एन० अग्रवाल से पानी माँग लेंगे । लेकिन उनके पूछने पर या तो लोग चुप रह कर तेजी से आगे बढ़ गए होंगे या किसी ने इतनी बौखलाहट और जल्दबाजी में उन्हें कुछ बताया होगा, जो पिताजी ठीक से समझ नहीं सके होंगे और सिर्फ अपमानित, दुखी और परेशान होकर रह गए होंगे । शहर में ऐसा होता ही है ।

वैसे बीच के पौन घंटे के बारे में मेरा अपना अनुमान है कि इस बीच पिताजी पर काढ़े का असर काफी बढ़ गया होगा । मई की धूप और प्यास ने इस असर को और भी तेज, और भी गहरा कर दिया होगा । उनके पैर लड़खड़ाने भी लगे होंगे और बहुत सभव है कि एकाध बार, इस बीच, उन्हें चक्कर भी आ गए हों ।

पिताज़ी ग्यारह बजे, शहर में देशबंधु मार्ग पर स्थित स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की इमारत में घुसे थे । वे वहाँ क्यों गए, इसकी वजह ठीक-ठीक समझ में नहीं आती । वैसे हमारे गाँव का रमेश दत्त शहर में भूमि विकास सहकारी बैंक में क्लर्क है । हो सकता है पिताजी के दिमाग में सिर्फ बैंक रहा हो और वहाँ से गुजरते हुए अचानक स्टेट बैंक लिखा हुआ देखा हो और वे उधर घूम गए हों । उन्होंने अब तक पानी नहीं पिया था इसलिए उन्होंने सोचा होगा कि वे रमेश दत्त से पानी भी माँग लेंगे, अदालत जाने का रास्ता भी पूछ लेंगे और बता सकेंगे कि उनका सिर घूम सा रहा है, यह भी कि कल शाम को उन्हें तिरिछ ने

काटा था । स्टेट बैंक के कैशियर अग्निहोत्री के अनुसार वह उस समय कैश रजिस्ट्री चेक कर रहा था। उसकी मेज पर लगभग अट्ठाइस हजार रुपयों की गड्डियाँ रखी हुई थीं । उस वक्त ग्यारह से दो-तीन मिनट ऊपर हुए होंगे, तभी पिताजी वहाँ आए । उनके चेहरे पर धूल लगी हुई थी, चेहरा डरावना था और अचानक ही उन्होंने जोर से कुछ कहा था । अग्निहोत्री का कहना था कि मैं अचानक डर गया । अमूमन ऐसे लोग बैंक के इतने भीतर, कैशियर के टेबिल तक नहीं पहुँच जाते । अग्निहोत्री का कहना यह भी था कि अगर वह पिताजी को एकाध मिनट पहले से अपनी ओर आता हुआ देख लेता, तब शायद न डरता । लेकिन हुआ यह कि वह पूरी तरह से कैश रजिस्टर के हिसाब-किताब में डूबा हुआ था, तभी अचानक ही पिताजी ने आवाज निकाली और सिर उठाते ही उन्हें देखकर वह डर गया और चीख पड़ा । उसने घंटी भी बजा दी ।

बैंक के चपरासियों, दो चौकीदारों और दूसरे कर्मचारियों के अनुसार अचानक ही कैशियर की चीख और घंटी की आवाज से वे सब चौंक गए और उस तरफ दौड़े, तब तक नेपाली चौकीदार थापा ने पिताजी को दबोच लिया था और मारता हुआ कॉमन रूम की तरफ ले जा रहा था । एक चपरासी रामकिशोर, जिसकी उम्र पैंतालीस के आसपास थी, ने कहा कि उसने समझा कि कोई शराबी दफ्तर में घुस आया है, या पागल और चूँकि उसकी ड्यूटी बैंक के मुख्य दरवाजे पर थी इसलिए ब्रांच मैनेजर उसे चार्जशीट कर सकता था । लेकिन हुआ यह कि जब पिताजी को मारा जा रहा था, तभी उन्होंने अंग्रेजी में कुछ बोलना शुरू कर दिया । इसी वजह से चपरासियों का शक बढ़ गया । इसी बीच शायद असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर मेहता ने यह कह दिया कि इस आदमी की अच्छी तरह से तलाशी ले लेना तभी बाहर निकलने देना । वैसे चपरासी रामकिशोर का कहना था कि पिताजी का चेहरा अजीब तरह से डरावना हो गया था । उस पर धूल जमा हो गई थी और उल्टी की बास आ रही थी । बैंक के चपरासियों ने पिताजी को ज्यादा मारने-पीटने की बात से इनकार किया, लेकिन बैंक के बाहर, ठीक दरवाजे के पास जो पान की दुकान है, उसमें बैठने वाले बुन्नू का कहना था कि जब साढ़े ग्यारह बजे के आस-पास पिताजी बैंक से बाहर आए तो उनके कपड़े फटे हुए थे और निचला होंठ कट गया था, जहाँ से खून निकल रहा था । आँखों के नीचे सूजन और कत्थई चकत्ते थे । ऐसे चकत्ते बाद में बैंगनी या नीले पड़ जाते हैं ।

इसके बाद, यानी साढ़े ग्यारह बजे से लेकर एक बजे के बीच पिताजी कहाँ-कहाँ गए, इसके बारे में जानकारी नहीं मिलती । हाँ स्टेट बैंक के बाहर पान की दुकान लगानेवाले बुन्नू ने एक बात बताई थी हालाँकि इस बारे में वह पूरी तरह स्पष्ट नहीं था, या हो सकता है कि स्टेट बैंक के कर्मचारियों से डर की वजह से वह साफ-साफ बतलाने से कतरा रहा हो । बुन्नू ने बतलाया था कि स्टेट बैंक से बाहर निकलने पर शायद (वह 'शायद' पर बहुत जोर डाल रहा था) पिताजी ने कहा था कि उनके रुपए और कागजात बैंक के कर्मचारियों ने छीन लिए हैं । लेकिन बुन्नू का कहना था कि हो सकता है पिताजी ने कोई और बात कही हो, क्योंकि वे ठीक से बोल नहीं पा रहे थे, उनका निचला होंठ काफी कट गया था, मुँह से लार भी बह रही थी और उनका दिमाग सही नहीं था ।

मेरा अंदाजा है कि इस समय तक पिताजी पर काढ़े का असर बहुत ज्यादा हो चुका था । हालाँकि पंडित राम औतार इस बात से इनकार करते हैं । उनका कहना था कि धतूरे के बीज तो होली के दिनों

में भाँग के साथ भी घोटे जाते हैं, लेकिन कभी ऐसा नहीं होता कि आदमी पूरी तरह से पागल हो जाए। पंडित राम औतार का मानना है कि या तो तिरिछ का जहर उस समय पिताजी के शरीर में चढ़ना शुरू हो गया था और उसका नशा उनके दिमाग तक पहुँचने लगा था । या फिर बहुत संभव है कि जब स्टेट बैंक में पिताजी को थापा चौकीदार और चपरासियों ने मारा-पीटा था तब उनके सिर के पीछे की तरफ कोई चोट लग गई हो और उस धक्के से उनका दिमाग सनक गया हो । लेकिन मुझे लगता है कि उस समय तक पिताजी को थोड़ा-बहुत होश था और वे पूरी कोशिश कर रहे थे कि किसी तरह वे शहर से बाहर निकल जाएँ । शायद रुपए और कागजात बैंक में छिन जाने की वजह से उन्होंने सोचा हो कि अब यहाँ रहने का कोई मतलब भी नहीं है । उन्होंने शायद एकाध बार सोचा भी होगा कि वापस स्टेट बैंक जाकर अपने कागजात तो कम से कम माँग लाएँ । फिर ऐसा कहने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ी होगी । वे डर गए होंगे । उन्हें उनके जीवन में पहली बार इस तरह से मारा गया था, इसलिए वे ठीक से सोच पाने में सफल नहीं हो पा रहे होंगे । उनका शरीर बहुत दुबला था और बचपन से ही उन्हें एपेंडिसाइटिस की शिकायत थी । यह भी हो सकता है कि उस वक्त तक उन पर काढ़े का असर इतना ज्यादा हो गया हो कि वे एक चीज पर देर तक सोच ही नहीं पा रहे हों और दिमाग में हर पल पैदा होनेवाले, छोटे-छोटे बुलबुलों जैसे विचारों या नए-नए झटकों के वश में आकर इधर से उधर चल पड़ते रहे हों । लेकिन मैं यह जानता हूँ, मुझे अच्छी तरह से महसूस होता है कि उनके दिमाग में घर लौट आने और शहर से बाहर निकल जाने की बात–एक स्थाई, बार-बार कहीं अँधेरे से उभरनेवाली, भले ही बहुत क्षीण और बहुत धुँधली बात–जरूर रही होगी ।

पिताजी लगभग सवा बजे शहर के पुलिस थाना पहुँचे थे । थाना शहर के बाहरी छोर पर सर्किट हाउस के पास बने विजय स्तंभ के पास है । आश्चर्य यह है कि थाने से बमुश्किल एक किलोमीटर दूर अदालत पहुँच सकते थे । समझ में यह नहीं आता कि पिताजी अगर यहाँ तक पहुँचे थे, क्या तब तक उनके दिमाग में अदालत जाने की बात रह भी गई थी ? उनके कागजात तो नहीं रह गए थे ।

थाने के एस. एच. ओ. राघवेंद्र प्रताप सिंह ने कहा कि उस वक्त एक बजकर पंद्रह मिनट हुए थे । वे घर से लाए गए टिफिन को खोलकर लंच लेने की तैयारी कर रहे थे । आज टिफिन में पराठों के साथ करेले रखे हुए थे । करेले वे खा नहीं पाते और इसी उलझन में थे कि अब क्या करें । तभी पिताजी वहाँ आए थे । उनके शरीर पर कमीज नहीं थी, पैंट फटी हुई थी । लगता था कि वे कहीं गिरे होंगे या किसी वाहन ने उन्हें टक्कर मारी होगी । थाने में उस वक्त एक ही सिपाही गजाधर प्रसाद शर्मा मौजूद था । सिपाही का कहना था कि उसने सोचा कि शायद कोई भिखमंगा थाने में घुस आया है । उसने आवाज भी दी लेकिन पिताजी तब तक एस. एच. ओ. राघवेंद्र प्रताप सिंह की टेबिल तक पहुँच चुके थे। एस. एच. ओ. ने कहा कि करेलों की वजह से वैसे भी उनका मूड़ ऑफ था । तेरह साल के विवाहित जीवन के बावजूद पत्नी यह नहीं जान पाई थी कि उन्हें कौन सी चीजें बिलकुल नापसंद हैं, इतनी नापसंद कि वे उन चीजों से घृणा करते हैं । उन्होंने जैसे ही निवाला मुँह में रखा, पिताजी बिलकुल उनके करीब पहुँच गए । पिताजी के चेहरे और कंधों के नीचे उल्टी लगी हुई थी और उसकी बहुत तेज गंध उठ रही थी । एस. एच. ओ. ने पूछा कि क्या बात है । तो जवाब में पिताजी ने जो कुछ कहा उसे समझना बहुत मुश्किल था । एस. एच. ओ. राघवेंद्र प्रताप सिंह बाद में पछता रहे थे कि अगर उन्हें मालूम होता कि यह

आदमी बकेली ग्राम का प्रधान और भूतपूर्व अध्यापक है तो वे उसे थाने में ही कम से कम दो-चार घंटे बिठा लेते। बाहर न जाने देते। लेकिन उस समय उन्हें लगा कि यह कोई पागल है और उन्हें खाते हुए देखकर यहाँ तक घुस आया है इसीलिए उन्होंने सिपाही गजाधर शर्मा को गुस्से में आवाज दी। सिपाही पिताजी को घसीटता हुआ बाहर ले गया। गजाधर शर्मा का कहना था कि उसने पिताजी के साथ कोई मार-पीट नहीं की थी और उसने देखा कि जब वे थाने आए थे तब उनका निचला होंठ कटा था। ठुड्डी पर कहीं रगड़ा खाकर गिरने से खरोंच के निशान थे और कुहनियाँ छिली हुई थीं। वे कहीं न कहीं गिरे जरूर थे।

यह कोई नहीं जानता कि थाने से निकलकर लगभग डेढ़ घंटे पिताजी कहाँ-कहाँ भटकते रहे। सुबह दस बजकर सात मिनट पर, जब वे शहर आए थे और मिनर्वा टाकीज के पास वाले चौराहे पर ट्रैक्टर से उतरे थे, तब से लेकर अब तक उन्होंने कहीं पानी पिया था या नहीं, इसे जानना मुश्किल है। इसकी संभावना भी कम ही बनती है। हो सकता है तब तक उनका दिमाग इस काबिल न रह गया हो कि वे प्यास को भी याद रख सकें। लेकिन अगर वे पुलिस थाने तक पहुँचे तो उनके मस्तिष्क में, नशे के बावजूद, कहीं बहुत कमजोर सा, अँधेरे में डूबा यह ख्याल रहा होगा कि वे किसी तरह अपने गाँव जाने का रास्ता वहाँ पूछ लें, या उस ट्रैक्टर का पता पूछें या फिर अपने रुपए और अदालती कागजात छिन जाने की रिपोर्ट वहाँ लिखा दें। यह सोचने के करीब पहुँचना ही बुरी तरह से बेचैन कर डालने वाला है कि उस समय पिताजी सिर्फ तिरिछ के जहर और धतूरे के नशे के खिलाफ ही नहीं लड़ रहे थे, बल्कि हमारे मकान को बचाने की चिंता भी कहीं न कहीं उनके नशे की नींद में से बार-बार सिर उठा रही थी। शायद उन्हें अब तक यह लगने लगा हो कि यह सब कुछ जो हो रहा है, सिर्फ एक सपना है, पिताजी इससे जागने और बाहर निकलने की कोशिश करते रहे होंगे।

सवा दो बजे के आस-पास पिताजी को शहर के बिलकुल उत्तरी छोर पर बसी सबसे संपन्न कोलोनी—इतवारी कोलोनी में घिसटते हुए देखा गया था। कोलोनी सर्राफा के जौहरियों, पी. डब्ल्यू. डी. के बड़े ठेकेदारों और रिटायर्ड अफसरों की कोलोनी थी। कुछ समृद्ध पत्रकार, कवि भी वहीं ठहरते थे। यह कोलोनी हमेशा शांत और घटनाहीन रहती थी। जिन लोगों ने यहाँ पिताजी को देखा था, उन्होंने बताया कि उस वक्त तक उनके शरीर में सिर्फ एक पट्टेदार जाँघिया बचा था, जिसका नाड़ा शायद टूट गया था और वे उसे अपने बाएँ हाथ से बार-बार सँभाल रहे थे। जिसने भी उन्हें वहाँ देखा, उसने यही समझा कि कोई पागल है। कुछ ने कहा कि वे बीच-बीच में खड़े होकर जोर-जोर से गालियाँ बकने लगे थे। बाद में, उसी कोलोनी में रहनेवाले एक रिटायर्ड तहसीलदार सोनी साहब और शहर के सबसे बड़े अखबार के विशेष संवाददाता और कवि सत्येंद्र थपलियाल ने बताया कि उन्होंने पिताजी के बोलने को ठीक से सुना था और दरअसल वे गालियाँ नहीं बक रहे थे बल्कि बार-बार कह रहे थे—''मैं रामस्वारथ प्रसाद, एक्स स्कूल हेडमास्टर...एंड विलेज हेड ऑफ......ग्राम बकेली...!'' कवि पत्रकार थपलियाल साहब ने दुख जाहिर किया। दरअसल उसी समय वे अमरीकी दूतावास की किसी खास पार्टी में संगीत सुनने दिल्ली जा रहे थे इसलिए जल्दबाजी में वे चले गए। हाँ तहसीलदार सोनी साहब का कहना था कि ''मुझे उस आदमी पर बहुत तरस आया और मैंने लड़कों को डाँटा भी। लेकिन दो-तीन लड़कों ने कहा कि यह आदमी रामरतन सर्राफ की बीवी और साली पर हमला करने वाला था।'' तहसीलदार ने कहा कि ऐसा सुनने के बाद उन्हें भी लगा

कि हो सकता है यह कोई बदमाश हो और नाटक कर रहा हो । लड़के उन्हें तंग करने में लगे थे और पिताजी बीच-बीच में जोर-जोर से बोलते थे, ''मैं रामस्वारथ प्रसाद....एक्स स्कूल हेडमास्टर...''

अगर हिसाब लगाया जाए तो मिनर्वा टाकीज के पास वाला चौराहा, जहाँ पिताजी ट्रैक्टर से सुबह दस बजकर सात मिनट पर उतरे थे, वहाँ से लेकर देशबंधु मार्ग का स्टेट बैंक फिर विजय स्तंभ के पास का थाना और शहर के बाहरी उत्तरी छोर पर बसी इतवारी कोलोनी को मिलाकर वे अब तक लगभग तीस-बत्तीस किलोमीटर की दूरी तक भटक चुके थे । ये जगहें ऐसी हैं जो एक ही दिशा में नहीं हैं । इसका मतलब यह हुआ कि पिताजी की दिमागी हालत यह थी कि उन्हें ठीक-ठीक कुछ सूझ नहीं रहा था और वे अचानक ही, किसी भी तरफ चल पड़ते थे । जहाँ तक सर्राफ की पत्नी और साली पर हमले करने की बात है, जिसे थपलियाल साहब सच मानते हैं, मेरा अनुमान है कि पिताजी उनके पास या तो पानी माँगने गए होंगे या बकेली जानेवाली सड़क के बारे में पूछने । उस एक पल के लिए पिताजी को होश जरूर रहा होगा । लेकिन इस हुलिए के आदमी को अपने इतना करीब देखकर वे औरतें डरकर चीखने लगी होंगी । वैसे, पिताजी की दाहिनी आँख के ऊपर भौंह पर जो चोट लगी थी और जिसका खून रिसकर उनकी आँख पर आने लगा था, वह चोट उनको इतवारी कोलोनी में ही लगी थी, क्योंकि बाद में लोगों ने बताया कि लड़के बीच-बीच में ढेले मार रहे थे ।

वह जगह इतवारी कोलोनी से बहुत दूर नहीं है, जिस जगह पिताजी को सबसे ज्यादा चोटें लगीं । नेशनल रेस्टोरेंट नाम के एक सस्ते से ढाबे के सामने की खाली जगह पर पिताजी घिर गए थे । इतवारी कोलोनी से लड़कों का जो झुंड उनके पीछे पड़ गया था, उसमें कुछ बड़ी उम्र के लड़के भी शामिल हो गए थे । नेशनल रेस्टोरेंट में काम करनेवाले नौकर सत्ते का कहना था कि पिताजी ने गलती यह की थी कि एक बार उन्होने गुस्से में आकर भीड़ पर ढेले मारने शुरू कर दिए थे । शायद उन्हीं का एक बड़ा सा ढेला सात-आठ साल के लड़के विकी अग्रवाल को लग गया था जिसे बाद में कई टाँके लगे थे । सत्ते का कहना था कि इसके बाद झुंड ज्यादा खतरनाक हो गया था । वे हल्ला मचा रहे थे और हर तरफ से पिताजी पर पत्थर मार रहे थे । ढाबे के मालिक सरदार सतनाम सिंह ने बताया कि उस वक्त पिताजी के जिस्म पर सिर्फ पट्टेवाली एक चड्डी थी । दुबले शरीर की हड्डियाँ और छाती के सफेद बाल दिख रहे थे । पेट पिचका हुआ था । वे धूल और मिट्टी में लिथड़े हुए थे, सिर के सफेद बाल बिखर गए थे, दाहिनी आँख के ऊपर से और निचले होंठ से खून बह रहा था । सतनाम सिंह ने दुख और पछतावे के साथ कहा-''मेरे को क्या मालूम था कि यह आदमी सीधा-सादा, इज्जतदार, साख-रसूख का इंसान है और नसीब के फेर में इसकी ये हालत हो गई है ।'' वैसे ढाबे में कप-प्लेट धोनेवाले नौकर हरी का कहना था कि बीच-बीच में पिताजी भीड़ को अंड-बंड गालियाँ दे-देकर ढेले मारने लगते थे-'आओ ससुरो...आओ.... एक-एक को मार डालूँगा ....वालो तुम्हारी ....की....' लेकिन मुझे संदेह है कि पिताजी ने ऐसी कोई गाली दी होगी । हमने कभी भी उन्हें गाली देते नहीं सुना था ।

मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ, क्योंकि पिताजी को मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ कि, इस समय तक, उन्हें कई बार लगा होगा कि उनके साथ जो कुछ हो रहा है, वह वास्तविकता नहीं है, एक सपना है । पिताजी को ये सारी घटनाएँ ऊल-जलूल, उटपटांग और बेमतलब लगी होंगी । वे इस सब

पर अविश्वास करने लगे होंगे । उन्होंने सोचा होगा कि यह सब क्या बकवास है ? वे तो गाँव से शहर आए ही नहीं हैं, उन्हें किसी तिरिछ ने नहीं काटा है । बल्कि तिरिछ तो होता ही नहीं है, एक मनगढ़ंत और अंधविश्वास है.....और धतूरे का काढ़ा पीने की बात तो हास्यापद है, वह भी एक तेली के खेत में उसका पौधा खोजकर । उन्होंने सोचा होगा और पाया होगा कि भला उन पर कोई मुकदमा क्यों चलेगा ? उन्हें अदालत में जाने की क्या जरूरत है ?

मैं जानता हूँ कि सुरंग जैसा लंबा, सम्मोहक लेकिन डरावना सपना जैसा मुझे आता था, पिताजी को भी आता रहा होगा । मेरी और उनकी बहुत सी बातें बिलकुल मिलती-जुलती थीं । मुझे लगता है कि इस समय तक पिताजी पूरी तरह से मान चुके होंगे कि यह जो कुछ हो रहा है सब झूठ और अवास्तविक है । इसीलिए वे बार-बार उस सपने से जागने की कोशिश करते रहे होंगे । अगर वे बीच-बीच में जोर-जोर से कुछ बोलने लगते थे, या शायद गालियाँ बकने लगते थे, तो इसी कठिन कोशिश में कि वे उस आवाज के सहारे उस दुःस्वप्न से बाहर निकल आएँ । नेशनल रेस्टोरेंट के नौकरों और मालिक सरदार सतनाम सिंह ने जैसा बताया था उसके अनुसार उस ज़गह पर पिताजी को बहुत चोटें आई थीं । उनकी कनपटी, माथे, पीठ और शरीर के दूसरे हिस्सों पर कई ईंट और ढेले आकर लग गए थे । सड़क का ठेका लेनेवाले ठेकेदार अरोड़ा के बीस-बाइस साल के लड़के संजू ने उन्हें दो-तीन बार लोहे की रॉड से भी मारा था । सत्ते का तो कहना था कि इतनी चोटों से कोई भी आदमी मर सकता था ।

मुझे यह सोचकर एक अजीब सी राहत मिलती है और मेरी फँसती हुई साँसें फिर से ठीक हो जाती हैं कि उस समय पिताजी को कोई दर्द महसूस नहीं होता रहा होगा; क्योंकि वे अच्छी तरह से, पूरी तार्किकता और गहराई के साथ विश्वास करने लग गए होंगे कि यह सब सपना है और जैसे ही वे जागेंगे, सब ठीक हो जाएगा या नीचे फर्श पर सोते हुए मैं और छोटी बहन दिख जाएँगे....या गौरैयों का झुंड.... हो सकता है कि उन्हें बीच-बीच में अपने इस अजीबोगरीब सपने पर हँसी भी आई हो ।

अगर पिताजी ने गुस्से में लड़कों की तरफ खुद भी ढेले मारने शुरू कर दिए तो इसके पीछे पहली वजह तो यही थी कि उन्हें यह बहुत अच्छी तरह से पता था कि ये ढेले सपने के भीतर जा रहे हैं और इससे किसी को कोई चोट नहीं आएगी । यह भी हो सकता है कि पूरी ताकत से ढेला मारकर वे उत्सुकता और बेचैनी से यह इंतजार करते रहे हों कि जैसे ही वह जाकर किसी लड़के के सिर से टकराएगा, उसका माथा नष्ट होगा और एक ही झटके में इस दुःस्वप्न के टुकड़े-टुकड़े बिखर जाएँगे और चारों ओर से वास्तविक संसार की बेतहाशा रोशनी अंदर आने लगेगी । उनका जोर-जोर से चीखना भी दरअसल गुस्से के कारण नहीं था, वे असल में मुझे, छोटी बहन को, माँ को या किसी को भी पुकार रहे थे कि अगर वे अपने आप इस सपने में जाग पाने में सफल न भी हो पाएँ, तब भी कोई आकर उन्हें जगा दे ।

एक सबसे बड़ी विडंबना भी इसी बीच हुई । हमारे गाँव की ग्राम पंचायत के सरपंच और पिताजी के बचपन के पुराने दोस्त पंडित कंधई राम तिवारी लगभग साढ़े तीन बजे नेशनल रेस्टोरेंट के सामने, सड़क से गुजरे थे । वे रिक्शे पर थे । सामने इकट्ठी भीड़ को देखा और उन्हें यह पता भी चल गया कि वहाँ पर किसी आदमी को मारा जा रहा है । उनकी यह इच्छा भी हुई कि वहाँ जाकर देखें कि आखिर मामला क्या है । उन्होंने रिक्शा रुकवा भी लिया । लेकिन उनके पूछने पर किसी ने कहा कि कोई पाकिस्तानी

जासूस पकड़ा गया है जो पानी की टंकी में जहर डालने जा रहा था, उसे ही लोग मार रहे हैं । ठीक इसी समय पंडित कंधई राम को गाँव जानेवाली बस आती हुई दिखी और उन्होंने रिक्शेवाले से अगले चौराहे तक जल्दी-जल्दी रिक्शा बढ़ाने के लिए कहा । गाँव जानेवाली यह आखिरी बस थी । अगर उस बस के आने में तीन-चार मिनट की भी देरी हो जाती तो वे निश्चित ही वहाँ जाकर पिताजी को देखते और उन्हें पहचान लेते । राज्य परिवहन की वह बस हमेशा आधा-पौन घंटा लेट रहा करती थी, लेकिन उस दिन, संयोग से, वह बिलकुल सही समय पर आ रही थी ।

सतनाम सिंह का कहना था कि वह भीड़ नेशनल रेस्टोरेंट के सामने से तब हटी और लोग तितर-बितर हुए जब बड़ी देर तक पिताजी जमीन से उठे ही नहीं । ईंट का एक बड़ा-सा ढेला उनकी कनपटी पर आकर लगा था । उनके मुँह से खून आना शुरू हो गया था । सिर में भी चोटें थीं । सतनाम ने बताया कि जब पिताजी बहुत देर तक नहीं हिले-डुले तो लड़कों के झुंड में से किसी ने कहा कि लगता है यह मर गया । जब भीड़ छँटने के दस-पंद्रह मिनट बाद भी पिताजी नहीं हिले-डुले तो सतनाम सिंह ने सत्ते से कहा था कि वह उनके मुँह में पानी के छींटे मार कर देखे कि वे सिर्फ बेहोश हैं तो हो सकता है कि उठ जाएँ । लेकिन सत्ते पुलिस की वजह से डर रहा था । बाद में सतनाम सिंह ने खुद ही एक बाल्टी पानी उनके ऊपर डाला था । दूर से पानी डालने के कारण जमीन की मिट्टी गीली होकर पिताजी के शरीर से लिथड़ गई थी ।

सरदार सतनाम सिंह और सत्ते दोनों का कहना था कि लगभग पाँच बजे तक पिताजी उसी जगह पड़े हुए थे । तब तक पुलिस नहीं आई थी । फिर सतनाम सिंह ने सोचा कि कहीं उसे पंचनामा और गवाही वगैरह में न फँसना पड़ जाए इसलिए उसने ढाबा बंद कर दिया था और डिलाइट टाकीज में 'आन मिलो सजना' फिल्म देखने चला गया था ।

उस समय लगभग छह बजे थे जब सिविल लाइंस की सड़क की पटरियों पर एक कतार में बनी मोचियों की दुकानों में से एक मोची गनेशवा की गुमटी में पिताजी ने अपना सिर घुसेड़ा । उस समय तक उनके शरीर पर चड्डी भी नहीं रह गई थी, वे घुटनों के बल किसी चौपाये की तरह रेंग रहे थे । शरीर पर कालिख और कीचड़ लगी हुई थी और जगह-जगह चोटें थीं ।

गनेशवा हमारे गाँव के तालाब के पारवाले टोले का मोची है । उसने बताया कि मैं बहुत डर गया था और मास्टर साहब को पहचान ही नहीं पाया । उनका चेहरा डरावना हो गया था और चिन्हाई में नहीं आता था । मैं डर कर गुमटी से बाहर निकल आया और शोर मचाने लगा । दूसरे मोचियों के अलावा वहाँ कुछ और लोग भी इकट्ठा हो गए थे । लोगों ने जब गनेशवा की गुमटी के भीतर झाँका तो गुमटी के अंदर, उसके सबसे अंतरे-कोने में, टूटे-फूटे जूतों, चमड़ों के टुकड़ों, रबर और चिथड़ों के बीच पिताजी दुबके हुए थे । उनकी साँसें थोड़ी-बहुत चल रही थीं । उन्हें वहाँ से खींच कर, बाहर, पटरी पर निकाला गया । तभी गनेशवा ने उन्हें पहचान लिया । गनेशवा का कहना था कि उसने पिताजी के कान में कुछ आवाजें भी लगाईं लेकिन वे कुछ बोल नहीं पा रहे थे । बहुत देर बाद उन्होंने 'राम स्वारथ प्रसाद....' और 'बकेली' जैसा कुछ कहा था । फिर चुप हो गए थे ।

पिताजी की मृत्यु सवा छह बजे के आसपास हुई थी । तारीख थी 17 मई, 1972 । चौबीस घंटे

पहले लगभग इसी वक्त उन्हें जंगल में तिरिछ ने काटा था । चौबीस घंटे पहले क्या पिताजी इन घटनाओं और इस मृत्यु का अनुमान कर सकते थे ?

पिताजी का शव शहर के मुर्दाघर में पुलिस ने रखवा दिया था । पोस्टमार्टम में पता चला था कि उनकी हड्डियों में कई जगह फ्रैक्चर था, दाईं आँख पूरी तरह फूट चुकी थी, कॉलर बोन टूटा हुआ था। उनकी मृत्यु मानसिक सदमे और अधिक रक्तस्राव के कारण हुई थी । रिपोर्ट के अनुसार उनका अमाशय खाली था, पेट में कुछ नहीं था । इसका मतलब यही हुआ कि धतूरे के बीजों का काढ़ा उल्टियों द्वारा पहले ही निकल चुका था ।

हालाँकि थानू कहता है कि अब तो यह तय हो गया कि तिरिछ के जहर से कोई नहीं बच सकता। ठीक चौबीस घंटे बाद उसने अपना करिश्मा दिखाया और पिताजी की मृत्यु हुई । पंडित राम औतार भी यही कहते हैं । हो सकता है कि पंडित राम औतार इसलिए ऐसा कहते हों कि वे खुद को विश्वास दिलाना चाहते हों कि धतूरे के काढ़े का पिताजी की मृत्यु से कोई संबंध नहीं था ।

मैं सोचता हूँ, अंदाजा लगाने की कोशिश करता हूँ कि शायद अंत में, जब गनेशवा ने अपनी गुमटी के बाहर, पिताजी के कान में आवाज दी होगी तो पिताजी सपने से जाग गए होंगे । उन्होंने मुझे, माँ को और छोटी बहन को देखा होगा-फिर वे दातून लेकर नदी की तरफ चले गए होंगे । नदी के ठंढे पानी से उन्होंने अपना चेहरा धोया होगा, कुल्ला किया होगा और इस लंबे दु:स्वप्न को भूल गए होंगे । उन्होंने अदालत में जाने के बारे में सोचा होगा । हम लोगों के मकान की चिंता ने उन्हें परेशान किया होगा ।

लेकिन मैं अपने सपने के बारे में बताना चाहता हूँ, जो मुझे अक्सर आता है । वह यों है-कि मैं खेतों की मेंड़, गाँव की पगडंडी से होता हुआ जंगल में पहुँच गया हूँ । मैं रक्सा नाला, कीकर के पेड़ को देखता हूँ । वह भूरी चट्टान वहाँ उसी जगह है, जो सारी बारिश नाले के पानी में डूबी रहती है । मैं देखता हूँ कि तिरिछ की लाश उसके ऊपर पड़ी हुई है । मुझे एक बेतहाशा खुशी अपने घेरे में ले लेती है । आखिर वह मारा गया । मैं पत्थर लेकर तिरिछ को कुचलने लगता हूँ, जोर-जोर से उसे मारता हूँ । मेरे पास थानू मिट्टी का तेल और माचिस लिए खड़ा है । तभी, अचानक ही, मैं पाता हूँ कि मैं उस चट्टान पर नहीं हूँ । थानू भी वहाँ नहीं है, वहाँ कोई जंगल नहीं है बल्कि मैं दरअसल शहर में हूँ । मेरे कपड़े बहुत ही मैले, फटे और चिथड़ों जैसे हो गए हैं । मेरे गालों की हड्डियाँ निकली हैं । बाल बिखरे हैं । मुझे प्यास लगी है और मैं बोलने की कोशिश करता हूँ । शायद मैं बकेली, अपने घर जाने का रास्ता पूछना चाहता हूँ और तभी अचानक चारों ओर शोर उठता है....घंटियाँ बजने लगती हैं.....हजारों-हजारों घंटियाँ.... मैं भागता हूँ ।

मैं भागता हूँ......मेरा पूरा शरीर बेदम होने लगता है, फेफड़े फूल जाते हैं । मैं पास-पास कदम रखकर अचानक लंबी-लंबी छलाँगें लगाता हूँ, उड़ने की कोशिश करता हूँ । लेकिन भीड़ लगता है मेरे पास पहुँचने वाली होती है । एक अजीब सी गर्म और भारी हवा मुझे सुन्न कर देती है । अपनी हत्या की साँसें मुझे छूने लगती हैं.....और आखिरकार वह पल आ जाता है, जब मेरे जीवन का अंत होने वाला होता है...

मैं रोता हूँ....भागने की कोशिश करता हूँ । मेरा पूरा शरीर नींद में ही पसीने में डूब जाता है । मैं जोर-जोर से बोल कर जागने की कोशिश करता हूँ....मैं विश्वास करना चाहता हूँ कि यह सब सपना है....

और अभी आँख खोलते ही सब ठीक हो जाएगा....मैं सपने के भीतर अपनी आँखें फाड़ कर देखता हूँ...दूर तक....लेकिन वह पल आखिर आ ही जाता है....

माँ बाहर से मुझे देखती है । मेरा माथा सहलाकर वह मुझे रजाई से ढाँप देती है और मैं वहाँ अकेला छोड़ दिया जाता हूँ । अपनी मृत्यु से बचने की कोशिश में जूझता, बेदम होता, रोता, चीखता और भागता ।

माँ कहती है मुझे अभी भी नींद में बड़बड़ाने और चीखने की आदत है । लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ और यही सवाल मुझे हमेशा परेशान करता है कि मुझे आखिरकार अब तिरिछ का सपना क्यों नहीं आता ?

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. लेखक के पिता के चरित्र का वर्णन अपने शब्दों में करें ।
2. तिरिछ क्या है ? कहानी में यह किसका प्रतीक है ?
3. 'अगर तिरिछ को देखो तो उससे कभी आँख मत मिलाओ । आँख मिलते ही वह आदमी की गंध पहचान लेता है और फिर पीछे लग जाता है । फिर तो आदमी चाहे पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा ले, तिरिछ पीछे-पीछे आता है ।' क्या यहाँ तिरिछ केवल जानवर भर है ? यदि नहीं तो उससे आँख क्यों नहीं मिलाना चाहिए ?
4. तिरिछ लेखक के सपने में आता था और वह इतनी परिचित आँखों से देखता था कि लेखक अपने आपको रोक नहीं पाता था । यहाँ परिचित आँखों से क्या आशय है ?
5. व्याख्या करें –
   (क) वैसे, धीरे-धीरे मैंने अनुभवों से यह जान लिया था कि आवाज ही ऐसे मौके पर मेरा सबसे बड़ा अस्त्र है ।
   (ख) जैसे जब मेरी फीस की बात आई थी, उस समय हमारे पास का आखिरी गिलास भी गुम हो गया था और सब लोग लोटे में पानी पीते थे ।
   (ग) आश्चर्य था कि इतने लंबे अर्से से उसके अड्डे को इतनी अच्छी तरह से जानने के बावजूद कभी दिन में आकर मैंने उसे मारने की कोई कोशिश नहीं की थी ।
   (घ) मुझे यह सोचकर एक अजीब सी राहत मिलती है और मेरी फँसती हुई साँसें फिर से ठीक हो जाती हैं कि उस समय पिताजी को कोई दर्द महसूस नहीं होता रहा होगा ।
6. तिरिछ को जलाने गए लेखक को पूरा जंगल परिचित लगता है, क्यों ?
7. 'इस घटना का संबंध पिताजी से है । मेरे सपने से है और शहर से भी है । शहर के प्रति जो एक जन्मजात भय होता है, उससे भी है ।' यह भय क्यों है ?

8. कहानी में वर्णित 'शहर' के चरित्र से आप कितना सहमत हैं ?
9. लेखक के पिता के साथ एक दिक्कत यह भी थी कि गाँव या जंगल की पगडंडियाँ तो उन्हें याद रहती थीं, शहर की सड़कों को वे भूल जाते थे। इसके पीछे क्या कारण हो सकता है ? आप क्या सोचते हैं ? लिखें।
10. स्टेट बैंक के कैशियर अग्निहोत्री, नेपाली चौकीदार थापा, असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर मेहता, थाने के एस० एच० ओ० राघवेंद्र प्रताप सिंह के चरित्र का परिचय अपने शब्दों में दीजिए।
11. लेखक के पिता अपना परिचय हमेशा 'राम स्वारथ प्रसाद.....एक्स स्कूल हेडमास्टर.....एंड विलेज हेड ऑफ बकेली' के रूप में देते थे, ऐसा क्यों ? स्कूल और गाँव के बिना वे अपना परिचय क्यों नहीं देते ?
12. 'हालाँकि थानू कहता है कि अब तो यह तय हो गया कि तिरिछ के जहर से कोई नहीं बच सकता। ठीक चौबीस घंटे बाद उसने अपना करिश्मा दिखाया और पिताजी की मृत्यु हुई।' इस अवतरण का अभिप्राय स्पष्ट करें।
13. लेखक को अब तिरिछ का सपना नहीं आता, क्यों ?

## पाठ के आस-पास

1. 'तिरिछ' कहानी में जादुई यथार्थवाद है। पाठ-परिचय में जादुई यथार्थवाद का परिचय दिया गया है, अपने शिक्षक से इस संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त करें।
2. 'टेपचू', 'पॉल गोमरा का स्कूटर' जैसी कहानियों में भी जादुई यथार्थवाद है। हिंदी के ऐसे अन्य कथाकारों और उनकी कहानियों के नाम मालूम करें जिनमें जादुई यथार्थवाद का प्रयोग हुआ है।
3. स्वप्न क्या है ? क्या इसका संबंध हमारे दैनिक जीवन से है ? आपके सपनों में कैसी चीजें आती हैं ? डायरी में अपने किसी सपने को लिखें।

## भाषा की बात

1. निम्नलिखित पदों में कौन सा समास है –
   जन्मजात, भारी-भरकम, संवाददाता, बीचो-बीच, नीलकंठ, चौराहा, टेढ़ा-मेढ़ा, इधर-उधर, चुंगीनाका
2. कहानी से व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को चुनें।
3. कहानी के शिल्प पर अपने शिक्षक से चर्चा करें और एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
4. नीचे लिखे वाक्यों से संज्ञा एवं सर्वनाम चुनें –
   (क) लेकिन बहुत जल्द हमें वह नाला मिल गया।
   (ख) तिरिछ उसमें जल रहा था।
   (ग) मेरा अनुमान है कि उस समय पिताजी को बहुत प्यास लगी होगी।
   (घ) उसने घंटी भी बजा दी।

## शब्द निधि

जोखिम : खतरा
बुर्ज : किले के परकोटों पर लगनेवाले मंडप
अभेद्य : जिसे भेदा न जा सके
परकोटा : किले के चारों ओर की ऊँची दीवारें
खौफनाक : भयानक
यातनादायक : यातना देनेवाला, तकलीफदेह
भयाक्रांत : भयभीत
घाघ : भीतर ही भीतर सब कुछ समझने वाला, चतुर

# जे० कृष्णमूर्ति

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 12 मई 1895 । |
| निधन | : | 17 फरवरी 1986 ( ओजई, कैलिफोर्निया ) । |
| जन्म-स्थान | : | मदनपल्ली, चित्तूर, आंध्र प्रदेश । |
| पूरा नाम | : | जिद्दू कृष्णमूर्ति । |
| माता-पिता | : | संजीवम्मा एवं नारायणा जिद्दू । |
| बचपन | : | दस वर्ष की अवस्था में ही माँ की मृत्यु । स्कूल में शिक्षकों और घर पर पिता के द्वारा बहुत पीटे गए । बचपन से ही विलक्षण मानसिक अनुभव । |
| विशेष | : | मूलतः वक्ता, आरंभ में कुछ लेखन कार्य । व्याख्यान के विषय शिक्षा, दर्शन एवं अध्यात्म से जुड़े होते थे । परंपरित शिक्षा प्रणाली से असंतुष्ट । |
| संपर्क | : | किशोरावस्था में ही सी० डब्ल्यू० लीडबेटर एवं एनीबेसेंट से संपर्क एवं इनका संरक्षण । थियोसोफिकल सोसाइटी से जुड़े । लीडबेटर इनमें 'विश्व शिक्षक' का रूप देखते थे । 1938 में एल्डुअस हक्सले के संपर्क में आए । कई देशों की यात्राएँ । |
| कृतियाँ | : | द फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम, द ऑनली रिवॉल्यूशन और कृष्णमूर्तिज़ नोट बुक आदि । इसके अतिरिक्त व्याख्यानों के कई संग्रह । |

जे० कृष्णमूर्ति बीसवीं शती के महान भारतीय जीवनद्रष्टा, दार्शनिक, शिक्षामनीषी एवं संत थे । वे एक सार्वभौम तत्ववेत्ता और परम स्वाधीन आत्मविद् थे । वे भारत के प्राचीन स्वाधीनचेता ऋषियों की परंपरा की एक आधुनिक कड़ी थे जिनमें भारतीय प्रज्ञा और विवेक परंपरा नवीन विश्वबोध बनकर साकार हुई थी । अपने चिंतन में वे कहीं भी इतिहास, परंपरा, धर्म, ईश्वर, राष्ट्र, समाज, संस्कृति या जीवन प्रणाली के किसी विशिष्ट रूप को दृष्टिपथ में रखे बिना अथवा उसका समर्थन किए बिना केवल वर्तमान और वास्तविकता की अगाध चेतना के सहारे, सतत जागृत प्रज्ञा और विवेक के सहारे, आधुनिक मानव जीवन में सच्ची स्वतंत्रता की खोज की प्रस्तावना करते हैं । इसके लिए वे मनुष्य को अपने इर्द-गिर्द-भीतर और बाहर–के उन बंधनों और पराधीनताओं को देखने-समझने और पहचानने के लिए प्रेरित करते हैं । क्योंकि प्रतीतिमूलक सच्चा ज्ञान ही मुक्ति और स्वतंत्रता में परिणत हो सकता है । मानव आत्मा पर जब तक युगों से इकट्ठी, विरासत के रूप में प्राप्त, पराधीनताओं और बंधनों का बोझ रहेगा तब तक सच्चा सुख भी प्राप्त न हो सकेगा ।

कृष्णमूर्ति मानते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य भी यही है, मनुष्य को पूरी तरह भारहीन, स्वतंत्र और आत्मप्रज्ञानिर्भर बनाना । तभी उसमें सच्चा सहयोग, सद्भाव, प्रेम और करुणा, सच्चा दायित्व बोध और सर्जनात्मकता का विकास हो सकेगा । सच्ची शिक्षा हमारा विस्तार करती है, हमें गहरा बनाती है, व्यापकता देती है । वह हमें सीमाओं और संकीर्णताओं से उबारती है । शिक्षा का ध्येय पेशेवर दक्षता, आजीविका और महज कुछ कर्मकौशल ही नहीं है । उसका ध्येय हमारा

संपूर्ण उन्नयन है। कृष्णमूर्ति अपने शिक्षाविषयक प्रयोगधर्मी चिंतन में आज की सभी प्रचलित प्रणालियों का भीतर-बाहर से पर्यालोचन करते हैं; उनकी सीमाओं की प्रतीति कराते हैं और वास्तविकता के धरातल पर शिक्षा के नए क्षितिज उद्घाटित करते हैं।

प्रज्ञाजीवी आज के इस वैज्ञानिक युग में कृष्णमूर्ति के साहसपूर्ण क्रांतिकारी शिक्षा चिंतन द्वारा आज के मनुष्य का भला हो सकता है, जो अनेक तरह की संकीर्णताओं का स्वेच्छया वरण करते हुए अपने जीवन को जटिल, उथला और दुखमय बनाता चला जा रहा है। आज के मानवजीवन की रुक्षता, कुरूपता, बौनापन और स्वार्थपरता कृष्णमूर्ति के चिंतन पर ध्यान देने, उसपर अमल करने से बहुत कुछ दूर हो सकती है। कृष्णमूर्ति को देश-विदेश सर्वत्र गहरे सम्मान से देखा जाता रहा है। विश्व के अनेक गुणीजनों के बीच वे बीसवीं सदी में भारत के दूसरे बुद्ध के रूप में देखे जाते रहे हैं। एक महान अध्यात्मवेत्ता और ज्ञानी के रूप में उनकी सामान्य पहचान रही है, ऐसा आध्यात्मिक और ज्ञानी जो कोई ध्यान-साधना, कोई तंत्र-योग, कोई दीक्षा नहीं देता था; सिर्फ लोगों को अपनी प्रज्ञा पर आस्था और विश्वास करना सिखाता रहा।

कृष्णमूर्ति प्रायः लिखते नहीं थे। वे बोलते थे, संभाषण करते थे, प्रश्नकर्ताओं को उत्तर देते थे। यह शैली भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में अत्यंत प्राचीन है। उनके सभी संभाषण 'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन' द्वारा विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हैं। यहाँ उनका एक संभाषण प्रस्तुत है। इसमें शिक्षा विषयक उनके विचारों की एक बानगी मिलती है।

◆ ◆ ◆

> **“अपने लिए किसी भी सत्य की खोज व्यक्ति को स्वयं करनी है–किसी और के सहारे नहीं। अब तक हम पर गुरुओं, मार्गदर्शकों और मुक्तिदाताओं की सत्ता हावी रही है। लेकिन अगर आप सचमुच यह जानना चाहते हैं कि ध्यान क्या है तो आपको पूर्ण रूप से और समग्र रूप से समस्त सत्ता को अपने से अलग कर देना पड़ेगा।.... ध्यान मन के भीतर की वह ज्योति है जो क्रिया के मार्ग को आलोकित करती है। और इस ज्योति के बिना प्रेम का कोई अस्तित्व नहीं है।”**
>
> – जे० कृष्णमूर्ति

# शिक्षा

यदि आपने कभी अपने आपसे यह पूछा हो कि शिक्षा का अर्थ क्या है तो यह मेरे लिए सचमुच आश्चर्य की बात होगी । आप विद्यालय क्यों जाते हैं ? आप विविध विषय क्यों पढ़ते हैं ? क्यों आप परीक्षाएँ उत्तीर्ण करते हैं, और ऊँचा स्थान प्राप्त करने के लिए दूसरों के साथ स्पर्धा करते हैं ? आखिर क्या अर्थ है इस तथाकथित शिक्षा का ? यह सब कुछ क्या है ? यह सचमुच अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है--केवल विद्यार्थियों के लिए ही नहीं अपितु माता-पिता के लिए, शिक्षकों के लिए और उन समस्त व्यक्तियों के लिए जो इस वसुधा से प्रेम करते हैं । शिक्षित होने के लिए हम संघर्ष क्यों करते हैं ? हम कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लें, किसी उद्योग में लग जाएँ, क्या शिक्षा का बस इतना ही कार्य है अथवा शिक्षा का कार्य है कि वह हमें बचपन से ही जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया समझने में सहायता करे ? कुछ उद्योग करना और अपनी जीविका कमाना जरूरी है; लेकिन क्या यही सब कुछ है ? क्या हम केवल इसीलिए शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं ? निस्संदेह केवल उद्योग या कोई व्यवसाय ही जीवन नहीं है । जीवन बड़ा अद्भुत है, यह असीम और अगाध है, यह अनंत रहस्यों को लिए हुए है, यह एक विशाल साम्राज्य है जहाँ हम मानव कर्म करते हैं और यदि हम अपने आपको केवल आजीविका के लिए तैयार करते हैं तो हम जीवन का पूरा लक्ष्य ही खो देते हैं । कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेने और गणित, रसायनशास्त्र अथवा अन्य किसी विषय में प्रवीणता प्राप्त कर लेने की अपेक्षा जीवन को समझना कहीं ज्यादा कठिन है ।

अत: हम चाहे शिक्षक हों या विद्यार्थी, हमें अपने आपसे क्या यह पूछना आवश्यक नहीं है कि हम क्यों शिक्षित कर रहे हैं अथवा शिक्षित हो रहे हैं ? जीवन कितना विलक्षण है ! ये पक्षी, ये फूल, ये वैभवशाली वृक्ष, यह आसमान, ये सितारे, ये सरिताएँ, ये मत्स्य, यह सब हमारा जीवन है ! जीवन दीन है, जीवन अमीर भी ! जीवन समुदायों, जातियों और देशों का पारस्परिक सतत संघर्ष है, जीवन ध्यान है, जीवन धर्म भी ! जीवन गूढ़ है, जीवन मन की प्रच्छन्न वस्तुएँ हैं–ईर्ष्याएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ, वासनाएँ, भय, सफलताएँ, चिंताएँ । केवल इतना ही नहीं अपितु इससे कहीं ज्यादा जीवन है ! लेकिन बहुधा हम अपने आपको जीवन के केवल एक छोटे से कोने को समझने के लिए ही तैयार करते हैं । हम कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेते हैं, कोई उद्योग ढूँढ़ लेते हैं, हम विवाह कर लेते हैं, बच्चे पैदा कर लेते हैं और इस प्रकार अधिकाधिक यंत्रवत बन जाते हैं । हम सदैव जीवन से भयाकुल, चिंतित और भयभीत बने रहते हैं । अतएव शिक्षा का कार्य है कि वह संपूर्ण जीवन की प्रक्रिया को समझने में हमारी सहायता करे; न कि हमें केवल कुछ व्यवसाय या ऊँची नौकरी के योग्य बनाए ।

क्या होगा हम सबके साथ जब हम प्रौढ़ हो जाएँगे ? क्या आपने कभी सोचा भी है कि आप बड़े होने पर क्या करनेवाले हैं ? ज्यादा से ज्यादा संभावना तो यही है कि आप बड़े होने पर विवाह करेंगे और इससे पहले कि आप यह ज्ञात कर सकें कि आप कहाँ हैं, आप माता या पिता बन जाएँगे । तब आप किसी व्यवसाय अथवा रसोईघर से बँध जाएँगे और वहीं आप क्रमश: क्षीण होते रहेंगे ! क्या इसी प्रकार का होनेवाला है आपका जीवन ? क्या आपने स्वयं से यह कभी पूछा भी है ? क्या आपको यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए ? मानो आप एक सुसंपन्न परिवार के हैं, आपकी प्रतिष्ठा पहले से ही सुरक्षित है, आपके पिता आपको आरामदायक कार्य दे देंगे, आप बड़ी शान से विवाह कर लेंगे फिर भी तो आप क्षीण होंगे, नष्ट होंगे ! क्या आप यह देख रहे हैं ?

निश्चित रूप से शिक्षा व्यर्थ साबित होगी, यदि वह आपको, इस विशाल और विस्तीर्ण जीवन को, इसके समस्त रहस्यों को, इसकी अद्‌भुत रमणीयताओं को, इसके दुखों और हर्षों को समझने में सहायता न करे ! भले ही आप ढेरों उपाधियाँ प्राप्त कर लें और अपने नाम के आगे इनकी कतार लगा लें, चाहे बहुत ऊँचा व्यवसाय प्राप्त कर लें, लेकिन यह सब कुछ पा लेने के बाद क्या होगा ? यदि आपका मन ही इस पाने की प्रक्रिया में कुंठित, चिंतित और रुक्ष बन जाए तो फिर क्या अर्थ होगा इसे पाने का ? इसलिए आपको किशोरावस्था से ही खोजना होगा कि यह जीवन क्या है ? और शिक्षा का क्या यह प्रमुख कार्य नहीं कि वह आप में उस मेधा का उद्‌घाटन करे जिससे आप इन समस्त समस्याओं का हल खोज सकें । क्या आप यह जानते हैं कि यह मेधा क्या है ? निस्संदेह यह मेधा वह शक्ति है जिससे आप भय और सिद्धांतों की अनुपस्थिति में स्वतंत्रता के साथ सोचते हैं ताकि आप अपने लिए सत्य की, वास्तविकता की खोज कर सकें । यदि आप भयभीत हैं तो फिर आप कभी मेधावी नहीं हो सकेंगे । किसी भी प्रकार की महत्त्वाकांक्षा–फिर चाहे वह आध्यात्मिक हो या सांसारिक–चिंता और भय को जन्म देती है; अत: यह ऐसे मन का निर्माण करने में सहायता नहीं कर सकती जो सुस्पष्ट हो, सरल हो, सीधा हो और दूसरे शब्दों में मेधावी हो ।

आप जानते हैं कि बचपन से ही आपका एक ऐसे वातावरण में रहना अत्यंत आवश्यक है जो स्वतंत्रतापूर्ण हो । हममें से अधिकांश व्यक्ति ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं, त्यों-त्यों ज्यादा भयभीत होते जाते हैं, हम जीवन से भयभीत रहते हैं, नौकरी के छूटने से, परंपराओं से और इस बात से भयभीत रहते हैं कि पड़ोसी, पत्नी या पति क्या कहेंगे, हम मृत्यु से भयभीत रहते हैं । हममें से अधिकांश व्यक्ति, किसी न किसी रूप में भयभीत हैं और जहाँ भय है वहाँ मेधा नहीं है । क्या यह संभव नहीं है कि हम बचपन से ही एक ऐसे वातावरण में रहें जहाँ भय न हो, जहाँ स्वतंत्रता हो–मनचाहे कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं, अपितु एक ऐसी स्वतंत्रता जहाँ आप जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया समझ सकें । हमने जीवन को कितना कुरूप बना दिया है; सचमुच जीवन के इस ऐश्वर्य की, इसकी अनंत गहराई और इसके अद्‌भुत सौंदर्य की धन्यता तो तभी महसूस कर सकेंगे जब आप प्रत्येक वस्तु के खिलाफ विद्रोह करेंगे–संगठित धर्म के खिलाफ, परंपरा के खिलाफ और इस सड़े हुए समाज के खिलाफ ताकि आप एक मानव की भाँति अपने लिए सत्य की खोज कर सकें । अनुकरण करना शिक्षा नहीं है । क्या यह सत्य नहीं है ? आपके माता-पिता, आपके शिक्षक और आपके समाज ने जो कुछ कहा है उसे मान लेना बड़ा आसान है । यह जीवित रहने का सुरक्षित और आसान मार्ग है लेकिन ऐसा जीवन 'जीवन' नहीं है क्योंकि इसमें भय है, ह्रास है, मृत्यु है । जिंदगी

का अर्थ है अपने लिए सत्य की खोज और यह तभी संभव है जब स्वतंत्रता हो, जब आपके अंतर में सतत क्रांति की ज्वाला प्रकाशमान हो ।

परंतु आपको इसके लिए कोई प्रोत्साहित ही नहीं करता । कोई भी आपको यह नहीं कहता कि आप प्रश्न करें, स्वयं खोजकर देखें कि परमात्मा क्या है ? क्योंकि यदि आप इस प्रकार विद्रोह करेंगे तो आप समाज के लिए खतरा बन जाएँगे । आपके माता-पिता और आपका समाज चाहता है कि आप सुरक्षित रहें और आप स्वयं भी यही चाहते हैं । साधारणतया सुरक्षा में जीने का अर्थ है अनुकरण में जीना अर्थात भय में जीना । सचमुच शिक्षा का यह कार्य है कि वह हममें से प्रत्येक को स्वतंत्रतापूर्ण वातावरण के निर्माण के लिए प्रेरित करे ।

क्या आप यह जानते हैं कि इसका क्या अर्थ है ? यह निर्भयतापूर्ण वातावरण निर्माण करने का कार्य बड़ा ही कठिन है । लेकिन हमें यह करना ही होगा क्योंकि हम देखते हैं कि पूरा का पूरा विश्व ही अंतहीन युद्धों में जकड़ा हुआ है–और इसके मार्गदर्शक बने हैं वे राजनीतिज्ञ जो सतत शक्ति की खोज में लगे हैं । यह दुनिया वकीलों, सिपाहियों और सैनिकों की दुनिया है । यह उन महत्वाकांक्षी स्त्री-पुरुषों की दुनिया है जो प्रतिष्ठा के पीछे दौड़े जा रहे हैं और इसे पाने के लिए एक दूसरे के साथ संघर्षरत हैं । दूसरी ओर अपने-अपने अनुयायियों के साथ संन्यासी और धर्मगुरु हैं जो इस दुनिया में या दूसरी दुनिया में शक्ति और प्रतिष्ठा की चाह कर रहे हैं । यह विश्व ही पूरा पागल है, पूर्णतया भ्रांत । यहाँ एक ओर साम्यवादी पूँजीपति से लड़ रहा है तो दूसरी ओर समाजवादी दोनों का प्रतिरोध कर रहा है । यहाँ प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी के विरोध में खड़ा है और किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए, प्रतिष्ठा, सम्मान, शक्ति व आराम के लिए संघर्ष कर रहा है । यह संपूर्ण विश्व ही परस्पर विरोधी विश्वासों, विभिन्न वर्गों, जातियों, पृथक-पृथक विरोधी राष्ट्रीयताओं और हर प्रकार की मूढ़ता और क्रूरता में छिन्न-भिन्न होता जा रहा है और यह वही दुनिया है जिसमें रह सकने के लिए आप शिक्षित किए जा रहे हैं ! आपको इस अभागे समाज के ढाँचे के अनुकूल बनने के लिए उत्साहित किया जा रहा है ! आपके माता-पिता आप से यही चाहते हैं और आप स्वयं भी इसी में रहना चाहते हैं !

तब शिक्षा का कार्य क्या है ? क्या वह इस सड़े हुए समाज के ढाँचे के अनुकूल बनने में आपको सहायता करे या आपको स्वतंत्रता दे–पूर्ण स्वतंत्रता; कि आप एक भिन्न समाज का, एक नूतन विश्व का निर्माण कर सकें ? हमें ऐसी ही स्वतंत्रता की आवश्यकता है । सुदूर भविष्य में नहीं अपितु इसी क्षण, अन्यथा हम सभी नष्ट हो जाएँगे । हमें अविलंब एक स्वतंत्रतापूर्ण वातावरण तैयार करना होगा ताकि आप उसमें रहकर अपने लिए सत्य की खोज कर सकें, आप मेधावी बन सकें, ताकि आप अपने अंदर सतत एक गहरी मनोवैज्ञानिक विद्रोह की अवस्था में रह सकें । क्योंकि सत्य की खोज तो केवल वे ही कर सकते हैं जो सतत इस विद्रोह की अवस्था में रहते हैं, वे नहीं जो परंपराओं को स्वीकार करते हैं और उनका अनुकरण करते हैं । आप सत्य, परमात्मा अथवा प्रेम को तभी उपलब्ध हो सकते हैं जब आप अविच्छिन्न खोज करते हैं, सतत निरीक्षण करते हैं और निरंतर सीखते हैं । लेकिन आप भयभीत हैं, तब आप न तो खोज कर सकते हैं, न निरीक्षण कर सकते हैं, न सीख सकते हैं और न गहराई से जागरूक ही रह सकते हैं । अतः निर्विवाद रूप से शिक्षा का यह कार्य है कि वह इस आंतरिक और बाह्य भय का उच्छेदन करे–यह भय जो मानव के विचारों को, उसके संबंधों और उसके प्रेम को, नष्ट कर देता है ।

यह पूछा जाता है–यदि सभी व्यक्ति क्रांति करेंगे तो क्या विश्व में अराजकता नहीं फैल जाएगी? लेकिन क्या हमारा वर्तमान समाज इतना सुव्यवस्थित है कि यह प्रत्येक व्यक्ति द्वारा की गई क्रांति से अव्यवस्थित हो जाएगा ? क्या अभी अराजकता नहीं है ? क्या प्रत्येक वस्तु सुंदर है, पवित्र है ? क्या प्रत्येक व्यक्ति आनंद से, समृद्धि से, पूर्णता से जी पा रहा है ? क्या व्यक्ति-व्यक्ति में विरोध नहीं है ? क्या चारों ओर महत्त्वाकांक्षा और प्रतिस्पर्धा नहीं है ? अतः हमें सर्वप्रथम यह समझ लेना है कि विश्व में पहले से ही अराजकता है । आप कहीं इसे सुव्यवस्थित न समझ बैठें ! कहीं कुछ शब्दों से आप स्वयं को मोहित न कर लें ! चाहे भारत हो, चाहे यूरोप, चाहे अमेरिका हो, चाहे रूस–संपूर्ण विश्व ही नाश की ओर अग्रसर हो रहा है । यदि आप सचमुच इसका क्षय देखते हैं तो यह आपके लिए एक चुनौती है ! चुनौती है कि आप इस ज्वलंत समस्या का हल खोजें । आप इस चुनौती का उत्तर किस प्रकार देते हैं यह बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है । क्या नहीं है ? यदि आप इसका उत्तर एक हिंदू अथवा एक बौद्ध या एक ईसाई या एक साम्यवादी की भाँति देते हैं तब आप का यह प्रत्युत्तर ही नहीं होगा । आप इसका प्रत्युत्तर पूर्णता से तो तभी दे सकते हैं जब आप अभय हों, आप एक हिंदू या एक साम्यवादी या एक पूंजीपति की भाँति न सोचें अपितु एक समग्र मानव की भाँति इस समस्या का हल खोजने का प्रयत्न करें । आप इस समस्या का तब तक हल नहीं कर सकते जब तक कि आप स्वयं संपूर्ण समाज के खिलाफ क्रांति नहीं करते, इस महत्त्वाकांक्षा के खिलाफ विद्रोह नहीं करते, जिस पर संपूर्ण मानव समाज आधारित है । जब आप स्वयं महत्त्वाकांक्षी नहीं हैं, परिग्रही नहीं हैं एवं अपनी ही सुरक्षा से चिपके हुए नहीं हैं, तभी इस चुनौती का प्रत्युत्तर दे सकेंगे। तभी आप नूतन विश्व का निर्माण कर सकेंगे । क्रांति करना, सीखना और प्रेम करना–ये तीनों पृथक-पृथक प्रक्रियाएँ नहीं हैं ।

जब आप वास्तव में सीख रहे होते हैं तब पूरा जीवन ही सीखते हैं । तब आपके लिए कोई गुरु ही नहीं रह जाता है । तब प्रत्येक वस्तु आपको सिखाता है–एक सूखी पत्ती, एक उड़ती हुई चिड़िया, एक खुशबू, एक आँसू, एक धनी, वे गरीब जो चिल्ला रहे हैं, एक महिला की मुस्कराहट, किसी का अहंकार। आप प्रत्येक वस्तु से सीखते हैं, अतः कोई मार्गदर्शक नहीं, कोई दार्शनिक नहीं, कोई गुरु नहीं । तब आपका जीवन स्वयं आपका गुरु है और आप सतत सीखते रहते हैं ।

आप जिस विषय का अध्ययन कर रहे हैं उसमें आपकी दिलचस्पी नहीं है । अतः आपके शिक्षक आप को ध्यान देने के लिए मजबूर करते हैं । लेकिन ध्यान का यह अर्थ कदापि नहीं है। ध्यान का आगमन तो अपने आप होता है जब आप किसी वस्तु में गहरी दिलचस्पी रखते हैं, जब आप उसके संबंध में प्रेम से खोजते हैं ताकि उसे आप पूर्णतया समझ सकें, उस समय आपका संपूर्ण मन, आपकी समग्र सत्ता उसी में रहती है । ठीक इसी भाँति जिस क्षण आप गहराई से यह महसूस कर लेते हैं कि ''यदि हम महत्त्वाकांक्षी नहीं होंगे तो क्या हमारा ह्रास न होगा'' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।

महत्त्वाकांक्षा अच्छी है या बुरी यह न पूछते हुए हम सर्वप्रथम यह ज्ञात करें कि क्या महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति अपना ही नाश नहीं कर रहा है ? आप अपने आस-पास देखें और उन व्यक्तियों का निरीक्षण करें जो महत्त्वाकांक्षी हैं । जब आप महत्त्वाकांक्षी होते हैं तब क्या घटित होता है ? तब आप केवल अपने ही संबंध में सोचते हैं, क्या नहीं सोचते ? तब आप क्रूर बन जाते हैं और अन्य व्यक्तियों को एक ओर ढकेल देते हैं, क्योंकि आपको अपनी महत्त्वाकांक्षा जो पूरी करनी है ! आपको बड़ा व्यक्ति जो बनना है ! ऐसा

कर आप समाज में असफल और सफल व्यक्तियों के बीच में संघर्ष पैदा कर देते हैं । इस प्रकार आप में और उन व्यक्तियों में जो आपकी ही भाँति महत्त्वाकांक्षी हैं, निरंतर युद्ध चलता रहता है । क्या इस संघर्ष से जीवन सृजनशील बन सकता है ? क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं अथवा यह समझना आपके लिए बहुत कठिन है ?

क्या आप उस समय महत्त्वाकांक्षी रहते हैं जब आप सहज प्रेम से कोई कार्य सिर्फ कार्य के लिए करते हैं ? जब आप कोई कार्य अपनी समग्रता से करते हैं–इसलिए नहीं कि उससे आप कहीं पहुँचना चाहते हैं, कोई लाभ उठाना चाहते हैं अथवा कोई ऊँचा परिणाम प्राप्त करना चाहते हैं, परंतु इसलिए कि उसके करने में आप प्रेम अनुभव करते हैं–अत: यह महत्त्वाकांक्षा नहीं है, है क्या ? तब वहाँ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती है । तब आप प्रथम स्थान पाने के लिए संघर्ष नहीं करते हैं । अत: क्या शिक्षा का यह कार्य नहीं कि वह आपको यह खोजने में सहायता करे कि आप सचमुच कौन सा कार्य प्रेम से करना पसंद करते हैं ? ताकि आप प्रारंभ से अंत तक वही कार्य करें, जिसे आप बहुत अच्छा समझते हों और जो आपके लिए गंभीर अर्थ लिए हुए हो, अन्यथा आप अंत तक अपने आपको अभागा समझते रहेंगे ! सचमुच कौन सा कार्य आप प्रेम से करना चाहते हैं, यह नहीं समझकर यदि आप कोई कार्य महज आदतन किए जाते हैं तो उस कार्य से आपको केवल ऊब, ह्रास और मृत्यु प्राप्त होती है । अत: आपको बचपन से ही यह जान लेना अत्यंत आवश्यक है कि आप कौन सा कार्य सचमुच प्रेम से करना चाहते हैं । नूतन समाज के निर्माण के लिए यही एकमात्र मार्ग है ।

जब हम अपनी पूरी शक्ति के साथ एक नूतन विश्व के निर्माण करने की आवश्यकता महसूस करते हैं, जब हममें से प्रत्येक व्यक्ति पूर्णतया मानसिक और आध्यात्मिक क्रांति में होता है, तब हम अवश्य अपना हृदय, अपना मन और अपना समस्त जीवन इस प्रकार के विद्यालयों के निर्माण में लगा देते हैं, जहाँ न तो भय हो और न तो उससे लगा फँसाव हो ।

बहुत थोड़े व्यक्ति ही वास्तव में क्रांति के जनक होते हैं । वे खोजते हैं कि सत्य क्या है और उस सत्य के अनुसार आचरण करते हैं, परंतु सत्य की खोज के लिए परंपराओं से मुक्ति तो आवश्यक है, जिसका अर्थ है समस्त भयों से मुक्ति ।

❑❑❑

# अभ्यास

**पाठ के साथ**

1. शिक्षा का क्या अर्थ है एवं इसके क्या कार्य हैं ? स्पष्ट करें ।
2. 'जीवन क्या है ?' इसका परिचय लेखक ने किस रूप में दिया है ?
3. 'बचपन से ही आपका ऐसे वातावरण में रहना अत्यंत आवश्यक है जो स्वतंत्रतापूर्ण हो ।' क्यों ?
4. जहाँ भय है वहाँ मेधा नहीं हो सकती । क्यों ?
5. जीवन में विद्रोह का क्या स्थान है ?

6. व्याख्या करें –
यहाँ प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी के विरोध में खड़ा है और किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए प्रतिष्ठा, सम्मान, शक्ति व आराम के लिए निरंतर संघर्ष कर रहा है ।
7. नूतन विश्व का निर्माण कैसे हो सकता है ?
8. क्रांति करना, सीखना और प्रेम करना तीनों पृथक-पृथक प्रक्रियाएँ नहीं हैं, कैसे ?

## पाठ के आस-पास

1. भय हमारे व्यक्तित्व के विकास में बाधक हैं । आप किन चीजों से डरते हैं ? सोचिए । यह भी सोचिए कि यह डर क्यों है ?
2. जे० कृष्णमूर्ति एक ख्यातिलब्ध विचारक हैं । इनकी जीवनी उपलब्ध कर पढ़ें ।

## भाषा की बात

1. निम्नलिखित शब्दों के पर्यायवाची लिखें –
सरिता, वसुधा, मत्स्य, चिड़िया, मनुष्य, नूतन
2. निम्नलिखित वाक्यों से क्रिया पद और सर्वनाम चुनें -
   (क) आप विद्यालय क्यों जाते हैं ?
   (ख) हम कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेते हैं ।
   (ग) कोई भी आपको यह नहीं कहता कि आप प्रश्न करें, स्वयं सोचकर देखें कि परमात्मा क्या है ?
   (घ) तभी आप नूतन विश्व का निर्माण कर सकेंगे ।
   (ङ) आप अपने आस-पास देखें और उन व्यक्तियों का निरीक्षण करें ।
   (च) जब आप वास्तव में सीख रहे होते हैं तब पूरा जीवन ही सीखते हैं ।
3. वाक्य प्रयोग द्वारा लिंग-निर्णय करें –
परंपरा, प्रयत्न, चुनौती, विश्व, प्रतिष्ठा, शक्ति, जीवन, स्वतंत्रता, शिक्षा, महत्त्वाकांक्षा
4. विपरीतार्थक शब्द लिखें -
प्रोत्साहन, स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा, संन्यासी, संपन्न, भय, समस्या, विद्रोह, सम्मान, परिग्रह ।

## शब्द निधि

प्रवीणता : दक्षता, निपुणता
सरिता : नदी
बहुधा : प्रायः
रमणीयता : सुंदरता
रुक्ष : रूखा
परिग्रही : संग्रह करनेवाला
अविच्छिन्न : जुड़ा हुआ, लगा हुआ
उच्छेदन : जड़ से उखाड़ना